VIDYA UNIVERSITY PRESS
TOUCH n PASS
सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

राजनीतिशास्त्र

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान

SYLLABUS

UNIT-I

Genesis Growth and the Politico-Cultural Trends in the Indian National Movement.

UNIT-II

Stages of Constitutional Development, Making of the Constitution, Citizenship.

UNIT-III

Fundamental Rights, Fundamental Duties, Directive Principles of State Policy.

UNIT-IV

Relation between Fundamental Rights and Directive Principles, Process of Amendment.

UNIT-V

Union Legislature and Executive : Parliament, Speaker, President, Prime Minister.

UNIT-VI

State Legislature and Executive : Legislative Assembly, Governor, Chief Minister.

UNIT-VII

Judiciary : Supreme Court, High Court, Writs, Judicial, Review, PIL, Judicial Reforms.

UNIT-VIII

Federalism in India, Centre-State Relations : Administrative, Legislative and Financial, Election Commission.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, बागपत रोड, टी०पी० नगर,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ...3
UNIT-II : संवैधानिक विकास एवं नागरिकता ...18
UNIT-III : मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निदेशक तत्त्व ...38
UNIT-IV : मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों के मध्य संघर्ष का इतिहास ...55
UNIT-V : संघीय विधायिका एवं कार्यपालिका ...65
UNIT-VI : राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका ...88
UNIT-VII : न्यायपालिका ...106
UNIT-VIII : संघ-राज्य सम्बन्ध एवं निर्वाचन आयोग ...125
◉ मॉडल पेपर ...144

UNIT-I

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना कब की गई थी?

उत्तर 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना 31 दिसम्बर, 1600 ई० को की गई थी।

प्र.2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता किसने की?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता व्योमेश चन्द्र बनर्जी ने की।

प्र.3. कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कौन थी?

उत्तर कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली थी।

प्र.4. जॉर्ज यूले ने प्रारम्भिक कांग्रेस के किस अधिवेशन की अध्यक्षता की?

उत्तर जॉर्ज यूले ने प्रारम्भिक कांगेस के चौथे अधिवेशन की अध्यक्षता की।

प्र.5. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का कोई एक उद्देश्य लिखिए।

उत्तर सभी देशवासियों में धर्म, प्रान्त एवं वंश सम्बन्धी अनैतिकता को समाप्त करके राष्ट्रीय एकता की भावना को पोषित एवं परिवर्तित करना।

प्र.6. कांग्रेस के उदारवादी दो नेताओं के नाम बताइए।

उत्तर 1. दादाभाई नौरोजी, 2. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी।

प्र.7. 'बाल-लाल-पाल' कौन थे?

उत्तर बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल (बाल-लाल-पाल) थे।

प्र.8. स्वदेशी आन्दोलन कब-से-कब तक चला?

उत्तर स्वदेशी आन्दोलन 1905 से 1908 तक चला।

प्र.9. भारत में 'होम रूल आन्दोलन' की स्थापना किसने की?

उत्तर भारत में 'होम रूल आन्दोलन' की स्थापना बाल गंगाधर तिलक ने की थी।

प्र.10. श्रीमति एनी बेसेन्ट कौन थी?

उत्तर श्रीमति एनी बेसेन्ट आयरलैण्ड की निवासी थी, जिन्होंने 1917 में आयरलैण्ड में 'होम रूल आन्दोलन' को शिखर तक पहुँचाया।

प्र.11. कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन कब हुआ?

उत्तर कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन सन् 1920 ई० में हुआ।

प्र.12. मोतीलाल नेहरू ने किस दल की स्थापना की?

उत्तर मोतीलाल नेहरू ने स्वराज दल की स्थापना की।

प्र.13. काकोरी काण्ड कब हुआ था?

उत्तर 9 अगस्त, 1925 में।

TOUCH 'n PASS

प्र.14. 'स्वेत कमीशन' किसे कहा गया?

उत्तर साइमन कमीशन को ही 'स्वेत कमीशन' कहा गया।

प्र.15. बारदौली सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व किसने किया?

उत्तर बारदौली सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व सरदार वल्लभ भाई पटेल ने किया।

प्र.16. प्रथम गोलमेज सम्मेलन कहाँ और कब आयोजित किया गया था?

उत्तर लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर, 1930 को आयोजित किया गया था।

प्र.17. दूसरा गोलमेज सम्मेलन कब प्रारम्भ हुआ?

उत्तर 7 सितम्बर, 1931 को दूसरा गोलमेज सम्मेलन प्रारम्भ हुआ।

प्र.18. असहयोग आन्दोलन कब और क्यों वापस किया गया?

उत्तर असहयोग आन्दोलन गांधी जी ने चौरी-चौरा कांड से दु:खी होकर 12 फरवरी, 1922 को वापस ले लिया।

प्र.19. वेवेल योजना के दो प्रमुख सुझाव बताइए।

उत्तर 1. इस परिषद में भारत के प्रमुख सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व होगा।
2. परिषद में मुस्लिम और हिन्दू सवर्ण संख्या को समानुपात में रखा गया।

प्र.20. भारत का अन्तिम वायसराय कौन था?

उत्तर लॉर्ड माउंटबेटन भारत का अन्तिम वायसराय था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत छोड़ो आन्दोलन के कोई तीन प्रमुख कारण बताइए।

उत्तर भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **क्रिप्स मिशन की असफलता और निराशा एवं व्यग्रता का वातावरण**—क्रिप्स प्रस्तावों को एकदम वापस लिए जाने और सर क्रिप्स को एकदम इंगलैण्ड बुलाये जाने से भारत में घोर निराशा के वातावरण और इस विचार को जन्म मिला कि क्रिप्स मिशन से सम्बन्धित सम्पूर्ण क्रियाकलाप एक राजनीतिक धूर्तता मात्र थी, जिसका उद्देश्य अपने युद्ध सहयोगियों—अमरीका और चीन—को सन्तुष्ट करना और पूर्व अनुमानित असफलता का उत्तरदायित्व भारतीय जनता पर डाल देना था। यह स्वाभाविक ही था कि क्रिप्स मिशन की असफलता का भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ता। आजाद के शब्दों में, **''मिशन का एकमात्र कार्य भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों पर अत्यधिक तीव्र आघात था।''**
2. **बर्मा में भारतीयों के प्रति अमानवीय व्यवहार**—बर्मा पर जापान की विजय के बाद बर्मा से जो भारतीय शरणार्थी आ रहे थे, उन्होंने भारत आकर अपनी दु:खभरी कहानियाँ सुनायी। अंग्रेजों और भारतीयों को बर्मा से भारत आने के लिए अलग-अलग मार्ग दिये गये थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य **मि० अणे** और **पं० हृदयनाथ कुंजरू मि० डाम** के साथ बर्मा में भारतीयों की स्थिति देखने के लिए गये। उन्होंने बाद में एक वक्तव्य में कहा कि, **''भारतीय शरणार्थियों से ऐसा अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है, जैसे वे किसी घटिया जाति से सम्बन्धित हों।''**
3. **जापानी आक्रमण का भय और ब्रिटिश रक्षा व्यवस्था में भारतीयों का अविश्वास**—जापान के द्वारा सिंगापुर, मलाया और वर्मा में अंग्रेजों को पराजित कर दिया गया था और प्रतिक्षण भारत पर जापानी आक्रमण का भय था। महात्मा गांधी और अन्य भारतीय नेताओं का विचार था कि अंग्रेज भारत की रक्षा करने में असमर्थ हैं। इसके साथ ही वे यह सोचते थे कि अंग्रेज शासक के रूप में भारत छोड़कर चले जाएँ, तो शायद जापान का आक्रमण न हो। 'हरिजन' में अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था, **''भारत के लिए उसके परिणाम कुछ भी क्यों न हों, भारत और ब्रिटेन की वास्तविक सुरक्षा, समय रहते इंग्लैण्ड के भारत छोड़ देने में ही है।**

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. मुस्लिम लीग की स्थापना एवं उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

मुस्लिम लीग की स्थापना
(Establishment of Muslim League)

भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय वहाबी आन्दोलन के प्रभाव, सर सैय्यद अहमद खाँ के प्रयत्नों एवं अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति के परिणामस्वरूप हुआ। इस साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। मुस्लिम लीग की स्थापना ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को ठोस तन्त्र प्रदान किया।

मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसम्बर 1906 में ढाका में हुई। लीग का गठन कांग्रेस के विरोध में मुसलमानों द्वारा किया गया था। भारत के अभिजात मुस्लिम लोगों को राजनीति में प्रवेश करने का अवसर वायसराय लॉर्ड मिन्टो के निमन्त्रण से प्राप्त हुआ। इस अवसर से वे पूर्णत: राजनीतिज्ञ बनकर शिमला लौटे। अलीगढ़ की राजनीति पूरे देश में छा गई। 1 अक्टूबर 1906 को लॉर्ड मिन्टो से यह दल मिला। मुसलमानों ने वायसराय से अनुरोध किया कि मुस्लिम लोगों के लिए प्रान्तीय, केन्द्रीय व स्थानीय निर्वाचन हेतु अलग साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था की जाए। मिन्टो ने इनकी माँगों का पूर्ण समर्थन किया। इसी का परिणाम था कि सलीमुल्ला के नेतृत्व में मुस्लिम नेताओं द्वारा 30 दिसम्बर 1906 को **'मुस्लिम लीग'** का गठन हुआ।

मुस्लिम लीग के उद्देश्य

मुस्लिम लीग के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना में वृद्धि करना और यदि सरकार के किसी कानून द्वारा मुस्लिम जनता में कोई गलत धारणा फैली हो, तो उसे दूर करना।
2. भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों व हितों की देखभाल व उनमें वृद्धि करना। मुसलमानों की इच्छाओं व आवश्यकताओं को सरकार के सामने प्रस्तुत करना।
3. उपर्युक्त उद्देश्यों के अन्तर्गत ही यदि सम्भव हो सके तो भारत की अन्य जातियों के साथ मित्रता स्थापित करना।

मुस्लिम लीग की नीति में बदलाव

मुस्लिम लीग का गठन कट्टरवादी मुस्लिमों द्वारा की गयी थी। इस संस्था को राष्ट्रवादी मुस्लिमों का समर्थन कभी नहीं प्राप्त हुआ। राष्ट्रवादी मुस्लिमों की स्वयं की संस्था 'जमीयत उल-उलमाए हिन्द' की स्थापना का ही परिणाम था कि सन् 1912 के आस-पास मुस्लिम लीग में परिवर्तन होने लगा। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप सन् 1916 में लीग एवं कांग्रेस में समझौता हो गया। सन् 1916 में हुए लखनऊ अधिवेशन में दोनों ने एक समान योजना निर्धारित की। जिसे **'लखनऊ समझौता'** या **'कांग्रेस लीग'** कहा जाता है। इस योजना के दो भाग थे। पहला-मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्या समाधान से जुड़ा था तथा दूसरा-प्रस्तावित सुधार से। परन्तु इस समझौते से अनजाने में ही पाकिस्तान की नींव पड़ गयी तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त को अपनाने के कारण कांग्रेस उनका विरोध भी नहीं कर सकती थी। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू-मुस्लिम समझौते के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक भाग को स्वीकार कर लिया किन्तु संवैधानिक सुधार योजना को नहीं स्वीकार किया।

प्र.3. चौरी-चौरा काण्ड का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर चौरी-चौरा काण्ड—5 फरवरी, 1922 को गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा नामक ग्राम में पुलिस के बल प्रयोग से जनता ने उत्तेजित होकर थाने में आग लगा दी, जिसके फलस्वरूप थानेदार और 21 सिपाही जलकर मर गये। अहिंसावादी गांधी हिंसा के इस क्रूर प्रयोग को सहन नहीं कर सके, उन्होंने चित्तरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय और सुभाषचन्द्र बोस आदि सभी नेताओं द्वारा मना किए जाने पर भी 11 फरवरी, 1922 को आन्दोलन स्थगित कर दिया। 10 मार्च, 1922 को गांधीजी गिरफ्तार कर लिए गए तथा उन पर मुकदमा चलाकर 6 वर्ष की सजा दे दी गयी।

आन्दोलन के आकस्मिक स्थगन का अन्य नेताओं द्वारा तीव्र विरोध किया जाना नितान्त स्वाभाविक था। मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल से ही लम्बे पत्र लिखकर गांधीजी को "किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया।" सुभाष बोस ने सामान्य भावना को व्यक्त करते हुए कहा, "ठीक उस समय जबकि जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, वापस लौटने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम न था।" बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेसियों और जनता के एक भाग द्वारा आन्दोलन के स्थगन को राष्ट्रीय अपमान समझा गया। आन्दोलन के स्थगित होने से हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा।

प्र.4. लॉर्ड इरविन की घोषणा और पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव की विवेचना कीजिए।

उत्तर लॉर्ड इरविन की घोषणा और पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव की विवेचना निम्न प्रकार हैं—

लॉर्ड इरविन की घोषणा—इंग्लैण्ड से लौटकर लॉर्ड इरविन ने 31 अक्टूबर, 1929 को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार ने मुझे यह घोषित करने का अधिकार दिया है कि 1917 की घोषणा में यह बात अन्तर्निहित है कि भारत को अन्त में औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार एक गोलमेज सम्मेलन बुलाएगी, जिसमें ब्रिटिश भारत व देशी रियासतों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार से मिलेंगे और भारत के लिए नवीन संविधान के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे।

1929 का लाहौर अधिवेशन और पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव—ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण से भारतीय नेताओं को यह निश्चय हो गया कि ब्रिटिश सरकार उस समय तक स्वराज्य न देगी, जब तक कि वह इसके लिए मजबूर न हो जाए। अत: भारी क्षोभ व निराशा के वातावरण में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर 1929 को लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ हआ। अधिवेशन में 31 दिसम्बर की रात्रि को 12 बजे रावी नदी के तट पर भारत का तिरंगा झण्डा फहराकर पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया गया और प्रतिवर्ष 26 जनवरी का दिन '**स्वाधीनता दिवस**' के रूप में मनाने का निश्चय किया।

प्र.5. भारत छोड़ो आन्दोलन की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

भारत छोड़ो आन्दोलन की मुख्य घटनाएँ
(Main Events of the Quit India Movement)

भारत छोड़ो आन्दोलन की मुख्य घटनाएँ निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. **बर्मा में भारतीयों पर अत्याचार**—बर्मा में भारतीयों के साथ हुए अमानवीय व्यवहार ने उनके मन में आन्दोलन करने की तीव्र भावना उत्पन्न की। बर्मा में हुए व्यवहार के विषय में **मि० अणे** और **पं० हृदयनाथ कुंजरू** ने एक वक्तव्य में कहा कि, "भारतीय शरणार्थियों से ऐसा अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है, जैसे वे किसी घटिया जाति से सम्बन्धित हो।" इस जानकारी से गाँधी जी अत्यन्त दु:खी हुए।
2. **जापानी आक्रमण का भय**—जापान की सेना द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सिंगापुर, मलाया एवं बर्मा में अंग्रेजों को पराजित किया गया। जापानी सेना रंगून तक पहुंच चुकी थी। इससे महात्मा गाँधी व अन्य भारतीयों को भय था, कि अंग्रेज भारत की रक्षा करने में असमर्थ हैं। इसके साथ ही उनका यह विचार था कि अंग्रेज शासक के रूप में यदि भारत को छोड़ दें, तो सम्भवत: जापान का आक्रमण न हो।
3. **क्रिप्स मिशन की असफलता**—भारतीयों का यह विचार था कि क्रिप्स मिशन अंग्रेजों की एक चाल थी। भारत में सर क्रिप्स को अचानक इंग्लैण्ड बुलाने व क्रिप्स प्रस्तावों को वापस लिए जाने से यहाँ अत्यन्त निराशापूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया। कांग्रेस भारतीय समस्या का समाधान चाहती थी और वह समाधान देश की स्वतन्त्रता था। परन्तु क्रिप्स के इस कथन से कि, "स्वीकार करो या छोड़ दो" से भारतीयों को यह अनुभव हुआ कि यह केवल दिखावा कर रही है। यह मिशन चीन तथा अमेरिका के दबाव के कारण भेजा गया था और ब्रिटिश सरकार भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर नहीं करना चाहती है। इसके अतिरिक्त मिशन की असफलता का उत्तरदायित्त्व भी कांगेस पर डाला गया। अत: लोगों में निराशा फैल जाने के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा और तीव्र हो गई थी।
4. **आर्थिक दुर्दशा**—अंग्रेजी सरकार की नीतियों के कारण भारत की आर्थिक स्थिति खराब हो चुकी थी। क्योंकि आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी। इससे भारतीयों में ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष उत्पन्न हो गया। वस्तुओं के बढ़ते मूल्य के कारण लोगों का कागज के नोटों के प्रति विश्वास समाप्त हो रहा था। देश में चारों ओर बढ़ रहे असन्तोष के परिणामस्वरूप गाँधी, भारत छोड़ों आन्दोलन करने के लिए विवश हो गए थे।
5. **पूर्वी बंगाल में आतंक का राज्य**—इस दौरान पूर्वी बंगाल में भय एवं आतंक व्याप्त था। सरकार ने वहाँ सैनिक उद्देश्य हेतु अनेक किसानों की भूमि पर स्वयं का कब्जा कर लिया था। इसी भाँति अनेक देशी नावों को समाप्त कर दिया गया जिससे विभिन्न परिवारों का पालन-पोषण होता था। सरकार को इस प्रकार की नीतियों से जनता में आक्रोश बढ़ने लगा। इन नीतियों से मुक्त होने के लिए गाँधी जी ने स्वयं का अन्तिम अस्त्र भारत छोड़ो आन्दोलन को प्रयोग में लाने का निश्चय किया।

प्र.6. काकोरी काण्ड का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर काकोरी काण्ड—काकोरी काण्ड भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों द्वारा ब्रिटिश राज के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की मंशा से हथियार खरीदने के लिए ब्रिटिश सरकार का ही खजाना लूट लेने की एक ऐतिहासिक घटना थी जो 9 अगस्त, 1925 को घटी। इस ट्रेन डकैती में जर्मनी के बने चार माउजर पिस्तौल काम में लाए गए थे। इन पिस्तौलों की विशेषता यह थी कि इनमें बट के पीछे लकड़ी का बना एक और कुन्दा लगाकर रायफल की तरह उपयोग किया जा सकता था। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन के केवल दस सदस्यों ने इस पूरी घटना को अंजाम दिया था।

इसके साथ ही क्रान्तिकारियों द्वारा चलाए जा रहे आजादी के आन्दोलन को गति देने के लिए धन की तत्काल व्यवस्था की जरूरत के मद्देनजर शाहजहाँपुर में हुई बैठक के दौरान **रामप्रसाद बिस्मिल** ने अंग्रेजी सरकार का खजाना लूटने की योजना बनायी थी। इस योजनानुसार दल के ही एक प्रमुख सदस्य **राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी** ने **9 अगस्त, 1925** को लखनऊ जिले के काकोरी रेलवे स्टेशन से छूटी "आठ डाउन सहारनपुर-लखनऊ पैसेन्जर ट्रेन" को चेन खींचकर रोका और क्रान्तिकारी **पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल** के नेतृत्व में **अशफाक उल्ला खाँ, पण्डित चन्द्रशेखर आजाद** व 6 अन्य सहयोगियों की मदद से समूची ट्रेन पर आक्रमण बोलते हुए सरकारी खजाना लूट लिया। बाद में अंग्रेजी हुकूमत ने उनकी पार्टी हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन के कुल 40 क्रान्तिकारियों पर सम्राट के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध छेड़ने, सरकारी खजाना लूटने व मुसाफिरों की हत्या करने का मुकदमा चलाया जिसमें राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ तथा ठाकुर रोशन सिंह को मृत्यु-दण्ड (फाँसी की सजा) सुनायी गयी। इस मुकदमें में 16 अन्य क्रान्तिकारियों को कम से कम 4 वर्ष की सजा से लेकर अधिकतम काला पानी (आजीवन कारावास) तक का दण्ड दिया गया था। क्रान्तिकारियों के विरुद्ध दर्ज FIR के अनुसार काकोरी काण्ड में लूटा गया धन **चार हजार छह सौ एक रुपया, पन्द्रह आने, छह पाई** (4601/15/6) था। रामप्रसाद बिस्मिल ने **'काकोरी के शहीद'** नामक आत्मकथा पुस्तक लिखी।

प्र.7. साइमन कमीशन की सिफारिशों की विवेचना कीजिए।

उत्तर साइमन कमीशन की सिफारिशें—साइमन कमीशन ने 27 मई, 1930 ई. को अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसकी सिफारिशें निम्न प्रकार थीं—

1. 1919 ई. के 'भारत सरकार अधिनियम' के तहत लागू की गई द्वैध शासन व्यवस्था को समाप्त कर उत्तरदायी शासन की स्थापना हो।
2. भारत के लिए संघीय संविधान होना चाहिए।
3. केन्द्र में कोई भी उत्तरदायित्व न प्रदान किया जाए।
4. उच्च न्यायालय को भारत सरकार के नियन्त्रण में कर दिया जाए।
5. बर्मा (वर्तमान म्यांमार) को भारत से विलग किया जाए तथा उड़ीसा एवं सिंध को अलग प्रदेश का दर्जा दिया जाए।
6. प्रान्तीय विधानमण्डलों में सदस्यों की संख्या को बढ़ाया जाए।
7. गवर्नर व गवर्नर-जनरल अल्पसंख्यक जातियों के हितों के प्रति विशेष ध्यान रखें।
8. प्रत्येक 10 वर्ष बाद पुनरीक्षण के लिए एक संविधान आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाए तथा भारत के लिए एक ऐसा लचीला संविधान बनाया जाए जो स्वयं से विकसित हो।

'साइमन कमीशन की नियुक्ति से' भारतीय दलों में व्याप्त की स्थिति से उबरने एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को उत्साहित करने में सहयोग मिला। यद्यपि इस आयोग की भारत में कड़ी आलोचना की गई, फिर भी उसकी अनेक बातों को 1935 ई. के 'भारत सरकार अधिनियम' में स्वीकार किया गया। **सर शिवस्वामी अय्यर** ने आयोग की सिफारिशों को 'रद्दी की टोकरी' में फेंकने के लायक बताया।

प्र.8. गांधी-इरविन समझौते पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

गांधी-इरविन समझौता
(Gandhi-Irwin Pact)

25 जनवरी 1931 को गांधी जी तथा कांग्रेस के अन्य सभी प्रमुख नेता बिना शर्त कारावास से रिहा कर दिए गए। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने गांधीजी को वायसराय से चर्चा करने के लिए अधिकृत किया। तत्पश्चात् 17 फरवरी 1931 को गांधीजी ने भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इरविन से भेंट की और उनकी बातचीत 15 दिनों तक चली। इसके परिणामस्वरूप 13 मार्च

1931 को एक समझौता हुआ, जिसे गांधी-इरविन समझौता कहा जाता है। इस समझौते ने कांग्रेस की स्थिति को सरकार के बराबर कर दिया। इस समझौते में सरकार की ओर से लॉर्ड इरविन इस बात पर सहमत हुए कि—

1. हिंसात्मक अपराधियों के अतिरिक्त सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए जाएंगे।
2. अपहरण की सम्पत्ति वापस कर दी जाएगी।
3. विभिन्न प्रकार के जुर्मानों की वसूली को स्थगित कर दिया जाएगा।
4. सरकारी सेवाओं से त्यागपत्र दे चुके भारतीयों के मसले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार-विमर्श किया जाएगा।
5. समुद्र तट की एक निश्चित सीमा के भीतर नमक तैयार करने की अनुमति दी जाएगी।
6. मदिरा, अफीम और विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सम्मुख शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की आज्ञा दी जाएगी।
7. आपातकालीन अध्यादेशों को वापस ले लिया जाएगा।

किन्तु वायसराय ने गांधीजी की निम्न दो माँगें अस्वीकार कर दी—

1. पुलिस ज्यादतियों की जाँच करायी जाए।
2. भगत सिंह तथा उनके साथियों की फाँसी की सजा माफ कर दी जाए।

कांग्रेस की ओर से गांधीजी ने आश्वासन दिया कि—

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जाएगा। तथा
2. कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इस शर्त पर भाग लेगी कि सम्मेलन में संवैधानिक प्रश्नों के मुद्दे पर विचार करते समय परिसंघ, भारतीय उत्तरदायित्व तथा भारतीय हितों के संरक्षण एवं सुरक्षा के लिए अपरिहार्य मुद्दों पर विचार किया जाएगा। (इसके अन्तर्गत् रक्षा, विदेशी मामले, अल्पसंख्यकों की स्थिति तथा भारत की वित्तीय साख जैसे मुद्दे शामिल होंगे)।

अप्रैल सन् 1931 ई० में लॉर्ड इरविन त्याग पत्र देकर चले गए और उनके स्थान पर लॉर्ड विलिंगडन वायसराय होकर भारत आए।

प्र.9. भारत छोड़ो आन्दोलन में गांधीजी के प्रभाव का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

गांधी जी का प्रभाव
(Influence of Gandhi ji)

'भारत छोड़ो आन्दोलन' मूल रूप से एक जनांदोलन था, जिसमें भारत का हर जाति वर्ग का व्यक्ति शामिल था। इस आन्दोलन ने युवाओं को एक बहुत बड़ी संख्या में अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। युवाओं ने अपने कॉलेज छोड़ दिए और वे जेल का रास्ता अपनाने लगे। जिस दौरान कांग्रेस के नेता जेल में थे, ठीक इसी समय **मोहम्मद अली जिन्ना** तथा मुस्लिम लीग के उनके साथी अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाने में लग गए। इसी वर्ष में मुस्लिम लीग को पंजाब और सिंध में अपनी पहचान बनाने का मौका मिला, जहाँ पर उसकी अभी तक कोई विशेष पहचान नहीं थी। जून 1944 ई. में जब विश्वयुद्ध समाप्ति की ओर था, गांधी जी को जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से निकलने के बाद उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच फासले को पाटने के लिए जिन्ना के साथ कई बार मुलाकात की और उन्हें समझाने का प्रयत्न किया। इसी समय 1945 ई. में ब्रिटेन में 'लेबर पार्टी' की सरकार बन गई। यह सरकार पूरी तरह से भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में थी। उसी समय वायसराय लॉर्ड वेवेल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बीच कई बैठकों का आयोजन किया।

प्र.10. भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता के क्या कारण थे?

उत्तर भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. **आन्दोलन की योजना एवं संगठन**—गाँधी जी द्वारा आन्दोलन की रूपरेखा एवं कार्यक्रम स्पष्ट नहीं किया गया था क्योंकि गाँधी जी को यह आशा थी कि वायसराय/सरकार से कोई समझौता हो जाए जिससे आन्दोलन की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं होगी। ऐसा सोचना गाँधी जी की सबसे बड़ी भूल थी क्योंकि कुछ समय में ही सरकार ने दमन कार्य की पहल शुरू कर दी। जिसमें कई आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिए गए इससे आन्दोलन नेतृत्त्वहीन हो गया।
2. **आन्दोलन की हिंसात्मकता**—यह आन्दोलन स्वयं के प्रारम्भिक दौर में अहिंसात्मक ही रहा परन्तु कुछ समय पश्चात् आन्दोलन में हिंसा उत्पन्न हो गई। इस देश के विभिन्न भागों में कई हिंसात्मक गतिविधियाँ हुई। यह आन्दोलन की असफलता का एक कारण बन गया।
3. **उच्च वर्गों या सरकारी कर्मचारियों की सरकार के प्रति वफादारी**—आन्दोलन के समय सरकारी कर्मचारी या उच्च वर्ग के लोगों में सरकार के प्रति वफादारी की भावना बनी रही। जिसके कारण सरकारी कार्य बिना किसी समस्या के पूर्ण होता रहा। यह भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता का प्रमुख कारण रहा है।

4. **शासन की अधिक शक्ति एवं कठोरता**—भारत छोड़ो आन्दोलन के असफल होने का यह भी विशेष कारण था कि आन्दोलनकारियों के पास कोई गुप्तचर नहीं थे और न ही उनके पास पर्याप्त साधन थे। जबकि ब्रिटिश शासन आन्दोलनकारियों के अपेक्षाकृत अधिक मजबूत था तथा उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी।
5. **अनेक वर्गों का आन्दोलन विरोधी व्यवहार**—भारत छोडो आन्दोलन का अनेक राजनीतिक दलों; जैसे—मुस्लिम लीग आदि ने सहयोग के स्थान पर विरोध किया। हिन्दू महासभा तथा समाज के कुछ उच्च एवं दलित वर्गों का आन्दोलन के प्रति असहयोगपूर्ण ही व्यवहार रहा। अत: भारत छोड़ो आन्दोलन असफल रहा।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए और इसकी भूमिका पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना
(Foundation of Indian National Congress)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय आन्दोलन की सर्वप्रथम घटनाओं में से एक है। इसकी स्थापना से सम्पूर्ण भारत की एक राजनीतिक संगठन की स्थापना की इच्छा पूर्ण हुई। इसके जन्म के साथ भारतीय आन्दोलन को संगठित करने, उसका विकास करने तथा भारत को स्वतंत्रता दिलाने वाली संस्था का जन्म हुआ। 19वीं शताब्दी के छठे दशक से ही राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ता एक अखिल भारतीय संगठन के निर्माण में प्रयासरत थे। इस विचार को मूर्त एवं व्यावहारिक रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज अधिकारी **ए०ओ० ह्यूम** को जाता है। ए०ओ० ह्यूम ने 1883 से ही भारत के प्रमुख नेताओं से एक अखिल भारतीय संगठन के निर्माण के लिए विचार-विमर्श प्रारम्भ कर दिया था और इसकी अन्तिम परिणति 28 दिसम्बर 1885 में अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज के भवन में की। ए०ओ० ह्यूम के अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस कांग्रेस के प्रमुख वास्तुविद् माने जाते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता **व्योमेश चन्द्र बनर्जी** (W.C. Banerji) ने की तथा इसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इनमें 38 प्रतिनिधि बम्बई प्रेसीडेंसी, 21 मद्रास प्रेसीडेंसी, 3 बंगाल प्रेसीडेंसी, 6 उत्तर-पश्चिम प्रदेश व अवध से और 3 पंजाब से थे। ये अधिवेशन बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय के भवन में हुआ था। प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित हुए प्रतिनिधियों को यदि देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि कांग्रेस को उसी समय से राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त होने लगा था। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष देश के अलग-अलग हिस्सों में सम्मेलन होना, सभी सम्प्रदाय के लोगों का सम्मिलित होना तथा अध्यक्ष पद के लिए सभी को अवसर प्रदान करना तथा राष्ट्रीय, सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दे पर चर्चा करना कांग्रेस का मुख्य कार्य था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशन को हम निम्न तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं

प्रारम्भिक कांग्रेस अधिवेशन

क्र०सं०	वर्ष	स्थान	अध्यक्ष	विशेषता
पहला	1885	मुम्बई	व्योमेश चन्द्र बनर्जी	मात्र 72 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया
दूसरा	1886	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी	संख्या बढ़कर 436 हुई
तीसरा	1887	मद्रास	बदरुद्दीन तैय्यबजी	प्रथम मुस्लिम अध्यक्ष
चौथा	1888	इलाहाबाद	जॉर्ज यूले	प्रथम अंग्रेज अध्यक्ष

अन्तत: 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि आन्दोलन का काम किया। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुँच गयी। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक एवं जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुँचा दी गयी थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक ऐसी धारा थी जिसमें राष्ट्रवाद ही नहीं महिलाएँ भी आगे बढ़ीं। प्रांतीय सम्मेलन एवं स्थानीय समितियों तथा राष्ट्रवादी समाचार पत्र भी बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आन्दोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। विशेषरूप से प्रेस भी राष्ट्रवादी विचारों तथा राष्ट्रवादी आन्दोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था।

कांग्रेस के पूर्ववर्ती संगठन

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भारत में अनेक राजनीतिक संगठनों की स्थापना की गयी थी; जैसे—1851 ई० में कलकत्ता में ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना, इण्डिया लीग 1875 ई. एवं इण्डियन एसोसिएशन 1876 ई. में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में गठित हआ। मद्रास में महाजन सभा 1884 ई. तथा 1885 ई. में बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन की स्थापना हुई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. सभी देशवासियों में धर्म, प्रान्त एवं वंश सम्बन्धी अनैतिकता को समाप्त करके राष्ट्रीय एकता की भावना को पोषित एवं परिवर्तित करना।
2. महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक विषयों पर शिक्षित वर्ग की पूर्ण सहमति से विचार-विमर्श करना।
3. देशहित के लिए प्रयत्नशील भारतीयों को परस्पर संगठित करना एवं मित्रता बढ़ाना।
4. यह निश्चित करना कि भारत के राजनीतिज्ञ जन कल्याण हेतु किस दिशा में एवं किस आधार पर कार्य करें।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका निम्न प्रकार थी—

1. **राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करना-प्रो. कूपलैण्ड के अनुसार,** कांग्रेस की स्थापना भारतीयों में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने के लिए की गई थी। उनके अनुसार, "भारतीय राष्ट्रीयता, ब्रिटिश राज्य की शिशु थी और ब्रिटिश अधिकारियों ने उसके पालने को आशीर्वाद दिया।" लेकिन यह अनुचित है, हम व उनके साथियों का उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रीयता की चेतना उत्पन्न करके भारतीयों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करना कभी नहीं हो सकता था। ह्यूम ने ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हेतु कांग्रेस की स्थापना एक अभयदीप के रूप में की थी। ह्यूम उदारवादी थे। उन्होंने कांग्रेस की स्थापना भारतीयों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए किया था।
2. **अभयदीप की स्थापना करना**—कांग्रेस का गठन ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हेतु एक अभयदीप धारणा के रूप में हुआ था। इसका निर्माण स्वयं अंग्रेजों ने किया था जिसका नाम राष्ट्रीय कांग्रेस दिया गया। अभयदीप का निर्माण भारतीयों में व्याप्त ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष को कम करने हेतु किया गया था। **लाला लाजपत राय के अनुसार,** "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन का मुख्य उद्देश्य यह था कि इस संस्था के संस्थापक ब्रिटिश साम्राज्य की संकटों से रक्षा करना और उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाना चाहते थे।" **रजनी पामदत्त के अनुसार,** "कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश सरकार की एक पूर्व-निश्चित गुप्त योजना के अनुसार की गई थी।" इस प्रकार कांग्रेस ने ह्यूम एवं उन ब्रिटिश अधिकारियों की आशाओं को पूर्ण किया जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में योगदान दिया था। अन्त में जो राष्ट्रीय असन्तोष को व्यक्त करने का शान्तिमय साधन बन गई।
3. **वास्तविक स्थिति**—कांग्रेस की स्थापना का सही वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि इसकी स्थापना में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की भावना तो विद्यमान थी लेकिन साथ ही भारतीयों के हित एवं भारतीयता की भावना भी विद्यमान थी। उस समय में भारतीय राजनीति में दो प्रमुख धाराएँ प्रचलित थीं। प्रथम विचारधारा के लोग हिंसा के द्वारा ब्रिटिश राज्य को समाप्त कर देना चाहते थे। द्वितीय विचारधारा के लोग ब्रिटिश राज्य का तत्काल अन्त नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि ब्रिटिश ताज के अन्तर्गत भारतीय जनता स्वशासन प्राप्त कर लें। मि. ह्यूम और कांग्रेस की स्थापना में सहायक लोग इस भारतीय राजनीति की द्वितीय विचारधारा से जुड़े थे। देश को वैधानिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए ही कांग्रेस की स्थापना की गई।
4. **कांग्रेस एक राष्ट्रीय संगठन**—एक अखिल भारतीय स्तर के राजनैतिक संगठन के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 ई० में की गई थी। इसका उद्देश्य बिना किसी भेदभाव (जाति, धर्म या वर्ण), के सभी भारतीयों का प्रतिनिधित्व करना था। कांग्रेस का इसी से राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट होता है कि इसके अध्यक्ष क्रमश: व्योमेश चन्द्र बनर्जी (हिन्दू), दादा भाई नौरोजी (पारसी), बदरुद्दीन तैय्यब (मुसलमान) तथा चौथे एवं पाँचवें अध्यक्ष जॉर्ज यूले तथा सर विलियम वेडरबर्न (अंग्रेज) आदि सभी विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित होते हुए भी संगठन ने एक साथ थे।

TOUCH 'n PASS

प्र.2. कांग्रेस के उदारवादी युग की विचारधारा, कार्यपद्धति एवं संगठन तथा उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

कांग्रेस के उदारवादी युग की विचारधारा
(Ideology of the Liberal Era of Congress)

राष्ट्रीय आंदोलन का पहला चरण उदारपंथी राष्ट्रीयता युग या वैधानिक युग कहलाता है। यह कांग्रेस की 'शैशवकाल' अवस्था मानी जाती है। कांग्रेस पर 1885 से 1905 ई० तक उदारपंथियों का एकाधित्य था। भारतीय शासन में कांग्रेस का इस दौरान लक्ष्य छोटे-मोटे सुधार प्राप्त करना था। वे नरम नीति को अपनाते थे। इस प्रकार वे उदारवादी कहलाए। उदारपंथी लोगों का कार्यक्रम **राजनीतिक भिक्षावृत्ति** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समय के उदारपंथी नेता दादा भाई नौरोजी, उमेश चन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोज शाह मेहता, लालमोहन घोष, रासबिहारी घोष, गोपालकृष्ण गोखले आदि थे।

उदारवादियों की कार्य पद्धति एवं संगठन
(Methodology and Organisation of Liberals)

आधुनिक राजनीतिक दल के समान उदारवादी संगठित नहीं थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर प्रतिवर्ष वे एकत्रित होते थे तथा अपने में से किसी एक को कांग्रेस का अध्यक्ष चुन लेते थे। अध्यक्ष ही उनके कार्यक्रम का मसौदा तैयार करता था तथा उदारवादी आन्दोलन को दिशा-निर्देश प्रदान करता था। उसे निर्वाचित सचिव सहयोग प्रदान करते थे। कांग्रेस का कोई लिखित संविधान नहीं था। उदारवादी संवैधानिक तरीकों में विश्वास रखते थे। इसलिए वे प्रार्थना-पत्रों, स्मृति-पत्रों एवं प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे। 1906 ई० में उदारवादियों ने इंग्लैण्ड की जनता एवं राजनीतिज्ञों को प्रभावित करने के लिए एक प्रतिनिधिमण्डल भी भेजा था। वहाँ की जनता को भारतीय समस्याओं से अवगत कराने के लिए, 'इण्डिया' नामक एक समाचार-पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया।

उदारवादी प्रतिवर्ष अपनी माँगों के समर्थन में प्रस्ताव पारित करते थे। उनके औचित्य को वे तर्क द्वारा सिद्ध करते थे, ताकि ब्रिटिश सरकार उन्हें स्वीकार कर ले। उनके कार्यक्रम में जन-आन्दोलन का कोई स्थान नहीं था। उन्हें भय था कि जन-आन्दोलन के कारण अराजकता पैदा हो जाएगी। अंग्रेजों पर उनका अटूट विश्वास था। ये अंग्रेजों को भारतीयों की दयनीय स्थिति से अवगत कराना चाहते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अन्य उपनिवेशों की भाँति अंग्रेज भारत को भी स्वशासन प्रदान कर देंगे। उनमें असीम धैर्य था। वे जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना चाहते थे। समाचार-पत्रों एवं भाषणों द्वारा वे सरकार की नीति की आलोचना करते थे और उस पर दबाव डालते थे।

कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश अधिकारी वर्ग का दृष्टिकोण—प्रारम्भ में ब्रिटिश सरकार का रुख कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। वह इसे एक सरकार विरोधी संस्था नहीं मानती थी। रूसी आक्रमण के भय के कारण वह भारतीयों का अधिकाधिक समर्थन प्राप्त करना चाहती थी। इसलिए शासकीय कर्मचारियों पर इसके अधिवेशनों एवं कार्यवाही में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, परन्तु धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार की नीति में परिवर्तन हुआ। उसने कांग्रेस को सरकार विरोधी संस्था घोषित कर दिया तथा यह प्रयास किया कि भारतीय मुसलमान इस संस्था में सम्मिलित न हो।

उदारवादियों की उपलब्धियाँ
(Achievements of Liberals)

उदारवादियों को कोई विशिष्ट सफलता तो प्राप्त नहीं हुई। फिर भी उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित किए। वे कांग्रेस के जन्म के प्रथम 20 वर्षों तक उसकी नीतियों का निर्धारण करते रहे। उनकी निम्नलिखित उपलब्धियाँ थी—

1. **व्यावहारिक तथा यथार्थवादी नीति का अनुसरण**—तत्कालीन परिस्थितियों में उनके उद्देश्य एवं सिद्धान्त व्यावहारिक तथा यथार्थवादी थे। अपने शैशवकाल में कांग्रेस इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि ब्रिटिश सरकार से सीधी टक्कर ले सके। इसलिए उदारवादियों ने मिन्नतों और प्रार्थनाओं का मार्ग अपनाया ।
2. **भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना**—कांग्रेस के प्रारम्भिक कार्यकर्ता भारतीय राष्ट्रवाद के महान पोषक थे। उन्होंने भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की तथा जनसेवा का एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। कांग्रेस ने शिक्षित भारतीयों को देश की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए एक मंच प्रदान किया तथा उन्हें अधिकारों की प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

   गुरुमुख निहाल सिंह ने ठीक ही लिखा है कि, "उदारवादियों ने उन दिनों राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक शिक्षा, भारतीयों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने तथा उनमें राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने के लिए कठिन परिश्रम किया।"

उदारवादियों के योगदान के सम्बन्ध में **डॉ. ईश्वरी प्रसाद** ने यह विचार अभिव्यक्त किया है, "उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए आवश्यक मानवीय शक्ति एवं साधनों की व्यवस्था की।" इस युग को हम **'भारतीय राष्ट्रवाद के बीजारोपण का युग'** कह सकते हैं।

3. **ब्रिटिश शासन के दोषों को उजागर करना**—उदारवादियों ने सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन की त्रुटियों की ओर भारतीय जनता का ध्यान आकर्षित कराया। उन्होंने भारत की दुर्दशा के लिए विदेशियों को जिम्मेदार ठहराया। वे भारतीयों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रेरित करते रहे। दादाभाई नौरोजी ने भारतीयों को 'धन-निष्कासन' के कुप्रभाव से अवगत कराया।
4. **समाज का पुनर्निर्माण**—उदारवादी केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को उजागर करके उसे दूर करने का प्रयास किया तथा सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को अपनाने के लिए भारतीयों को प्रेरित किया।
5. **1892 ई. का भारतीय काउन्सिल अधिनियम**—उदारवादियों की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता यह थी कि उनके प्रभाव एवं माँगों को ध्यान में रखकर ही ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई. अधिनियम को पारित किया। इसके अनुसार केन्द्रीय काउन्सिल के अतिरिक्त सदस्यों का निर्वाचन होने लगा। फलस्वरूप गोपालकृष्ण गोखले तथा फिरोजशाह मेहता जैसे उदारवादी नेताओं को केन्द्रीय काउन्सिल के अधिवेशन में भाग लेने का अवसर मिला। उदारवादियों के प्रयत्नों का परिणाम था कि भारतीयों को नागरिक सेवा में आयु सीमा की छूट प्रदान की गयीं। वास्तव में यह युग भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का शैशवकाल था।

प्र.3. उग्रवादी आन्दोलन के उदय के क्या कारण थे? भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों की भूमिका एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

उग्रवाद के उदय (उत्पत्ति) के कारण
(Reasons for the Rise of Extremism)

उग्रवाद के उदय (उत्पत्ति) के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **अंग्रेजों की शोषण नीति का पर्दाफाश**—उग्रपन्थी आन्दोलन के प्रारंभ होने का एक कारण अंग्रेजों की शोषण नीति का सामने आना था। इसमें विभिन्न लेखों एवं पुस्तकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसका श्रेय दादाभाई नौरोजी, दिनशा वाचा, गोपाल कृष्ण गोखले एवं मदन मोहन मालवीय आदि को जाता है।
2. **आर्थिक असंतोष**—कांग्रेस की आवेदन-निवेदन नीति की असफलता के कारण देश के अंदर और स्वयं कांग्रेस के अंदर असंतोष उत्पन्न हो गया था। हथकरघा उद्योग समाप्त हो गया था, श्रमिक बेरोजगार हो गए थे, जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी थी।
3. **बंगाल का विभाजन तथा स्वदेशी आंदोलन**—उग्रपन्थ के उदय का कारण सन् 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन भी रहा। लॉर्ड कर्जन के समय बंगाल एक बहुत बड़ा प्रान्त था। लॉर्ड कर्जन का उददेश्य शासन सुविधा के लिए बंगाल को बाँटना व हिन्दू तथा मुसलमानों में फूट डालकर राष्ट्रीय एकता को तोड़ना था। गोखले ने भारत सचिव से बंगाल का विभाजन रद्द करने हेतु सिफारिश की परन्तु भारत सचिव लॉर्ड मॉर्ले ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। इसके फलस्वरूप उदारवादियों की नीतियों से लोगों में विश्वास समाप्त हो गया। जिससे उग्रवाद को प्रोत्साहन मिला।
4. **उदारवादियों की नीतियों के प्रति असन्तोष**—उदारवादियों की ज्ञापन, प्रार्थना एवं विरोध की नीति से उग्रपन्थी सन्तुष्ट नहीं थे। इंग्लैंड में उदारवादियों द्वारा भारतीयों की समस्याओं के प्रचार-प्रसार में अपनाई गयी नीति से उदारवादियों में असन्तोष था।
5. **प्राकृतिक प्रकोप**—1876 से 1900 ई. के बीच में लगभग अठारह बार अकाल आना एवं सरकार द्वारा इनकी ओर अधिक ध्यान न दिया जाना उग्रवाद के उदय का प्रमुख कारण था। भारत 1876 से 1900 ई. के मध्य अकाल तथा 1897-98 में (बंबई) प्लेग से ग्रस्त था। जिसमें अकाल के कारण 2 करोड़ लोग और प्लेग के कारण 1 लाख 75 हजार लोग मृत्यु व कुपोषण के शिकार हो गए थे। सरकार ने इसे रोकने के लिए कोई भी प्रयास नही किया। ऐसी घटनाओं ने उग्र राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन दिया।

6. **भारतीयों के साथ विदेश में अपमानजनक व्यवहार**—विदेशों में भारतीयों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार नही किया जाता था। अंग्रेज भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ एवं सभ्य जाति का मानते थे। अंग्रेजी समाचार पत्र जातिभेद का तीव्र प्रचार कर रहे थे। भारतीयों को राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया था तथा उनके साथ तिरस्कारपूर्ण एवं दुर्व्यवहार किया जाता था।
7. **पाश्चात्य क्रांतिकारी सिद्धान्तों का प्रभाव**—पश्चिमी देशों के क्रांतिकारी सिद्धान्त, भारतीय नवयुवकों के विचार एवं दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। फ्रांस, इटली, जर्मनी और अमरीका में हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों में क्रांतिकारी विचारों को उत्पन्न किया तथा यहाँ (फ्रांस, इटली, जर्मनी) स्वतंत्रता संग्राम की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि संवैधानिक माँग से ही केवल साम्राज्यवाद से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों की भूमिका एवं महत्त्व

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों की भूमिका एवं महत्त्व निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. उग्रवादियों द्वारा उपयोग किए गए साधनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाया।
2. इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रबलधारा को मध्यम वर्गों एवं जनसाधारण तक पहुँचाने में सहायता की।
3. उग्रवादियों की नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सामाजिक आधार में व्यापकता आयी।
4. उग्रवादी राजनीति के कार्यक्रमों के बुनियाद पर ही परवर्ती गांधीवादी कार्यक्रम की शुरुआत हुई।
5. उग्रवादी लोगों द्वारा बनायी गयी एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली नवयुवकों में राष्ट्रीयता का संचार करने में महत्त्वपूर्ण रही।
6. 1909 में हुए मार्ले-मिण्टो सुधार, जो ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उग्रपन्थियों के हाथ में आ जाने से रोकने के लिए पारित किया, वह उग्रपन्थी आन्दोलन के प्रभाव का ही साक्ष्य है।
7. इनके द्वारा प्रयोग किए गए शब्द; जैसे- स्वराज्य, भारतमाता और भारत राष्ट्र ने भारतीयों में देशभक्ति की भावना उत्पन्न की।

प्र.4. निम्नलिखित को संक्षेप में समझाइए—

1. बंगाल विभाजन
2. 20 अगस्त, 1917 की घोषणा
3. असहयोग आन्दोलन
4. कैबिनेट मिशन

उत्तर

(1) बंगाल विभाजन, 1905
(Partition of Bengal, 1905)

लॉर्ड कर्जन का सबसे बड़ा मूर्खतापूर्ण कार्य 16 अक्टूबर 1905 को किया गया बंगाल का विभाजन था। यद्यपि इस विभाजन के पक्ष में सरकार का तर्क था कि बंगाल जैसे बड़े प्रान्त पर एक ही केन्द्र से शासन नहीं किया जा सकता और सुशासन के हित में उसका विभाजन आवश्यक है लेकिन वास्तव में, जैसा कि **जकारिया** लिखते हैं, "उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से बंगाल के विभाजन का कार्य नितान्त धूर्ततापूर्ण था। वास्तव में बंगाल का यह विभाजन '**फूट डालो और राज करो**' की नीति के अनुरूप किया गया था। बंगाल के विभाजन का विरोध करने के लिए बंगाल में तीव्र आन्दोलन शुरू हो गया जो शीघ्र ही लगभग सम्पूर्ण भारत में फैल गया। यद्यपि बंगाल के विभाजन में कर्जन का उद्देश्य बंगाल में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना को कुचल देना था, लेकिन व्यवहार में इस कार्य के परिणामस्वरूप न केवल बंगाल वरन् सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की अभूतपूर्व भावना को जन्म मिला।
उपर्युक्त सभी कारणों के परिणामस्वरूप भारत में उग्र राष्ट्रवाद और कांग्रेस में उग्र राष्ट्रवादी पक्ष का उदय नितान्त स्वाभाविक ही था।

(2) माण्टेग्यू की घोषणा 20 अगस्त, 1917
(Montague's Declaration August 20, 1917)

1916 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो जाने, काग्रेस में एकता स्थापित होने और कांग्रेस में उग्रदल का प्रभूत्व स्थापित हो जाने, भारतीयों द्वारा संयुक्त रूप से होमरूल की मांग की जाने और अन्तिम रूप में मेसोपोटेमिया आयोग की रिपोर्ट ने ब्रिटिश सरकार को इस बात के लिए विवश कर दिया कि उसके द्वारा भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए जाने की घोषणा की जाए। नये भारत मन्त्री मि. माण्टेग्यू प्रगतिवादी दृष्टिकोण के थे। अत: उन्होंने उपर्युक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 20 अगस्त 1917 को घोषणा की—

1. ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है।
2. उत्तरदायी शासन की स्थापना क्रमिक विकास द्वारा ही सम्भव है।
3. उत्तरदायी शासन की दिशा में प्रगति के प्रत्येक चरण का निर्णय ब्रिटिश सरकार तथा भारत सरकार ही कर सकती है, जिस पर भारतीय जनता की समृद्धि और उन्नति का उत्तरदायित्व है।
4. ब्रिटिश सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में निर्णय भारतीय व्यक्तियों द्वारा दिये गये सहयोग और उनके द्वारा दिये गये उत्तरदायित्व के परिचय के आधार पर किया जाएगा।

घोषणा पत्र में जहाँ एक ओर यह उत्साहवर्धक बात थी कि भारत में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य उत्तरदायी शासन की स्थापना है, वहाँ इसके साथ ही यह निराशाजनक बात भी जोड़ दी गयी थी कि उत्तरदायी शासन की स्थापना क्रमिक रूप में ही हो सकेगी और प्रत्येक नवीन चरण की प्रकृति और समय का निर्णय ब्रिटिश सरकार द्वारा ही किया जाएगा। इसके अतिरिक्त यह कहकर कि भविष्य का विकास भारतीयों के सहयोग और उनके द्वारा प्रदर्शित सहयोग की भावना पर निर्भर करता है, भारतीयों को असहयोग के विरुद्ध एक अस्पष्ट धमकी भी दे दी गयी थी।

किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 1917 की घोषणा से भारतीय शासन में विकास के एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ। अगस्त 1917 के पूर्व ब्रिटिश शासन द्वारा भारत के सम्बन्ध में कुछ उदार घोषणाएँ तो की गयी थीं, किन्तु यह कभी भी नहीं बताया था कि ब्रिटिश नीति भारत को किस निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर ले जा रही थी। यह कमी 1917 की घोषणा ने पूरी कर दी। 1917 में ब्रिटिश सरकार ने स्पष्टतया इस बात की घोषणा की कि वह भारत में भारतीयों का शासन, उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित करना चाहती थी। **श्री राम शर्मा** के अनुसार—**''घोषणा पत्र भारत के संवैधानिक इतिहास में एक अध्याय समाप्त करता है और दूसरा अध्याय प्रारम्भ करता है।''** अनेक भारतीयों द्वारा इस घोषणा को 'भारतीय मैग्नाकार्टा' के नाम से पुकारा गया है। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने लिखा—"आंग्ल भारतीय इतिहास के पृष्ठ टूटी हुई प्रतिज्ञाओं के खण्डों से भरे पड़े हैं, परन्तु अब शायद एक नूतन अध्याय प्रारम्भ होने को था।''

अगस्त 1917 की योजना को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाए, इस सम्बन्ध में भारतीय नेताओं से परामर्श करने के लिए भारत मन्त्री माण्टेग्यू भारत आये। उन्होंने गर्वनर जनरल लॉर्ड चैम्सफोर्ड के साथ मिलकर सुधार योजना तैयार की, जिसे **'माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार योजना'** कहते हैं। इसी योजना के आधार पर 1919 का **भारतीय शासन-अधिनियम** (Government of India Act, 1919) पारित हुआ।

(3) असहयोग आन्दोलन
(Non-Cooperation Movement)

जनता में घोर निराशा और असन्तोष—युद्धकाल में भारत राष्ट्र ने ब्रिटेन को जन और धन से भरपूर सहायता दी थी और युद्ध से भारतीय राष्ट्रवाद को अपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। अब भारतीय जनता स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के स्वप्न सँजोने लगी थी लेकिन कुछ घटनाओं ने जनता की आशा को निराशा और घोर असन्तोष में बदल दिया।

शासन के द्वारा युद्ध व्यय के रूप में जोर-जबरदस्ती से और भारी मात्रा में धन की वसूली और आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में असाधारण वृद्धि के कारण जनता का प्रत्येक वर्ग आर्थिक कष्ट से गुजर रहा था और इस स्थिति के लिए ब्रिटिश सरकार को उत्तरदायी समझ रहा था। प्लेग, इन्फ्लुएन्जा और अकाल की स्थिति में शासन की उदासीनता से घोर असन्तोष था। दुःखदायी बात यह थी कि युद्ध के प्रारम्भिक चरण में जितनी तेजी और जोर-जबरदस्ती से सेना में भर्ती की गयी, अन्तिम चरण में उतनी ही तेजी से छँटनी प्रारम्भ कर दी गयी। इससे हजारों लोग बेरोजगार हो गये और जनता ने अनुभव किया कि यह सरकार घोर स्वार्थी है।

(4) कैबिनेट मिशन
(Cabinet Mission)

द्वितीय युद्ध की समाप्ति के पश्चात् स्वशासन हेतु भारत के लोगों (पुलिस, सेना, कर्मचारी आदि) द्वारा विद्रोह शुरू हो गया। अधिक समय तक इन पर नियन्त्रण करना ब्रिटिश सरकार के लिए असम्भव होता जा रहा था। इस समस्या का निदान करने के लिए ब्रिटिश संसद ने Lord Wavell तथा भारतीय नेताओं से मिलकर 16 मई, सन 1946 में एक योजना प्रस्तुत की, जिसे ''कैबिनेट मिशन'' के नाम से जाना जाता है, इसका मुख्य उद्देश्य भारत में पूर्ण स्वराज्य स्थापित करना था। इस मिशन के तहत भारत के लिए एक नया संविधान तथा एक अस्थायी सरकार बनाने का लक्ष्य रखा गया था। सन् 1946 में भारत में इंग्लैण्ड की

संसद द्वारा एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में पूर्ण स्वराज्य लाना था। इसके अतिरिक्त भारतीय नेताओं को यह विश्वास दिलाना था कि सरकार शीघ्र ही संवैधानिक मामले पर समझौता करने को तैयार है। परन्तु ब्रिटिश शासन एवं भारतीयों के मध्य निर्णायक चरण मार्च 1946 ई. में आया। इसमें ब्रिटिश कैबिनेट के तीन सदस्य सम्मिलित थे—

1. लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स (भारत मन्त्री),
2. सर स्टैफर्ड क्रिप्स (बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष) तथा
3. ए. वी. एलेक्जेंडर (नौ सेना मन्त्री)

24 मार्च 1946 को कैबिनेट मिशन के भारत आने के पश्चात् यहाँ सर्वप्रथम इन्होंने वायसराय एवं प्रान्तों के गवर्नरों का सम्मेलन बुलाया तथा उनके विचारों से परिचित हुए। इसके पश्चात् कांग्रेस, मुस्लिम लीग एवं अन्य दलों के सदस्यों से मिशन ने बातचीत की। इस सम्मेलन के पश्चात् मिशन ने यह परिणाम निकाला कि संविधान सभा के गठन, भारत की संवैधानिक रूपरेखा व अन्तरिम सरकार के प्रश्न पर भारतीयों के विचारों में भिन्नता है। इसके लिए 5 मई से 11 मई 1946 को शिमला में विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाया गया। इसमें पण्डित नेहरू, सरदार पटेल, मो. अली जिन्ना, नवाब इस्माइल खाँ और लियाकत अली खाँ ने भाग लिया। इसमें भी कांग्रेस और मुस्लिम लीग किसी एक योजना पर सहमत नहीं हो सकी। अत: 12 मई 1946 को यह सम्मेलन असफल घोषित कर दिया गया। मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस में समझौता न हो पाने के कारण स्वयं मिशन ने ही स्वयं की ओर से एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना का नाम ही कैबिनेट मिशन योजना रखा गया। यह योजना 16 मई 1946 को प्रकाशित की गयी।

प्र.5. सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पृष्ठभूमि व कारणों की विवेचना कीजिए एवं उसके कार्यक्रम और नीतियों का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर

सविनय अवज्ञा आन्दोलन
(Civil Disobedience Movement)

सविनय अवज्ञा आन्दोलन, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाए गए जन आन्दोलन में से एक था। 1929 ई. तक भारत को ब्रिटेन के इरादे पर शक होने लगा कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की अपनी घोषणा पर अमल करेगा कि नहीं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन (1929 ई.) में घोषणा कर दी कि उसका लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। महात्मा गांधी ने अपनी इस माँग पर जोर देने के लिए 6 अप्रैल, 1930 ई. को सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ा। जिसका उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रकार के गैर-कानूनी कार्य सामूहिक रूप से करके ब्रिटेन सरकार को झुका देना था।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारण

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. ब्रिटिश सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत किया जाना भारतीयों के लिए संघर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं छोड़ा।
2. 1929-30 की विश्व आर्थिक मन्दी से भारत भी प्रभावित था। एक ओर विश्व की महान आर्थिक मंदी ने, तो दूसरी ओर सोवियत संघ की समाजवादी सफलता और चीन की क्रान्ति के प्रभाव ने विश्व के कई देशों में क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। किसानों एवं मजदूरों की स्थिति बहुत ही निम्न हो गयी थी। इससे देश का वातावरण तीव्रता से ब्रिटिश सरकार का विरोधी हो गया। गांधीजी ने इस विरोध को सविनय अवज्ञा आन्दोलन की ओर मोड़ दिया।
3. साइमन आयोग के गठन में भारतीयों की अवहेलना होने से वे (भारतीय) अत्यन्त निराश हुए। यह आन्दोलन के उदय का एक कारण रहा।
4. भारत की उपद्रवकारी स्थिति ने भी आन्दालेन को शुरू करने को प्रेरित किया। आंतकवादी गतिविधियाँ अधिक होने लगी थीं। 'मेरठ षड्यंत्र केस' और 'लाहौर षडयंत्र केस' ने यहाँ के लोगों के विचारों को उग्र बना दिया जो कि सरकार विरोधी थे। किसानों, मजदूरों और आंतकवादियों के बीच समान विचार उत्पन्न हो रहे थे। कारणवश हिंसा और भय का वातावरण हो गया। हिंसात्मक संघर्ष की संभावना अधिक हो गयी थी।
5. राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना से सरकार त्रस्त हो चुकी थी। इसलिए वह प्रतिदिन दमन के नए-नए उपाय अपनाती थी। इसी सदंर्भ में सरकार ने 'काला काननू' पेश किया, जिसे विधानमंडल पहले ही अस्वीकार कर चुका था। जनता में इससे असंतोष फैल गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का कार्यक्रम

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत चलाए जाने वाले कार्यक्रम निम्नलिखित थे—

1. नमक कानून का उल्लंघन कर स्वयं ही नमक बनाया जाना।
2. सरकारी सेवाओं, शिक्षा केन्द्रों एवं उपाधियों का बहिष्कार किया जाना।
3. महिलाएँ स्वयं शराब, अफीम एवं विदेशी कपड़े की दुकानों पर जाकर धरना दें।
4. समस्त विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए उन्हें जला दिया जाए।
5. कर अदायगी को रोका जाए।

कानून तोड़ने की नीति

कानूनों को जानबूझकर तोड़ने की इस नीति का कार्यान्वयन औपचारिक रूप से उस समय हुआ, जब 12 मार्च सन् 1930 ई. को उनकी ऐतिहासिक डाण्डी यात्रा साबरमती आश्रम से 79 अनुयायियों के साथ आरम्भ हुई। गांधी जी ने 5 अप्रैल को समुद्र तट पर स्थित डाण्डी नामक स्थान पर पहुँचकर 6 अप्रैल को नमक का कानून तोड़ दिया। लिबरलों और मुसलमानों के बहुत बड़े वर्ग ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया। किन्तु देश का सामान्य जन इस आन्दोलन में कूद पड़ा। हजारों नर-नारी और वृद्ध कानूनों को तोड़ने के लिए सड़कों पर आ गए। सम्पूर्ण देश गम्भीर रूप से आन्दोलित हो उठा। ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए सख्त कदम उठाए और गांधी जी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं व उनके समर्थकों को जेल में डाल दिया। आन्दोलनकारियों और सरकारी सिपाहियों के बीच जगह-जगह जबरदस्त संघर्ष हए। शोलापुर जैसे स्थानों पर औद्योगिक उपद्रव और कानपुर जैसे नगरों में साम्प्रदायिक दंगे भडक उठे। हिंसा के इस विस्फोट से गांधी जी चिन्तित हो उठे। वे आन्दोलन को बिल्कुल अहिंसक ढंग से चलाना चाहते थे।

प्र.6. निम्नलिखित को संक्षिप्त में समझाइए—

1. रौलट एक्ट
2. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड व हण्टर कमेटी रिपोर्ट
3. खिलाफत आन्दोलन
4. क्रिप्स मिशन

उत्तर

(1) रौलट एक्ट
(Rowlatt Act)

ब्रिटिश सरकार यद्धकाल के बाद भी, आतंकवादी तत्वों पर नियन्त्रण के नाम पर दमनात्मक शक्तियाँ अपने हाथ में बनाये रखना चाहती थी। अत: भारत के सभी वर्गों के विरोध के बावजूद रौलट कमेटी की रिपोर्ट को कानूनी रूप देते हुए 'रौलट एक्ट' बनाया गया, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर उसे मनमाने समय तक नजरबन्द रखा जा सकता था। 18 मार्च, 1919 को रौलट एक्ट पारित हुआ जिसने मोतीलाल नेहरू के शब्दों में, "अपील, वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त कर दिया।"

(2) जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड
(Jaliwala Bagh Massacre)

महात्माजी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध 'सत्याग्रह' प्रारम्भ करने का निश्चय किया। सत्याग्रह का प्रारम्भ सार्वजनिक हड़ताल के माध्यम से करते हुए 30 मार्च, 1919 को सम्पूर्ण देश में हड़ताल करने का निश्चय किया गया, किन्तु बाद में तिथि बदलकर 6 अप्रैल कर दी गयी। 6 अप्रैल को सारे देश में शहरों और गाँवों में पूर्ण और अधिकांशतया शान्तिपूर्ण हड़ताल हुई। सरकार ने कुछ स्थानों की हिंसात्मक घटनाओं को आधार बनाकर दमनचक्र प्रारम्भ करते हुए 7 अप्रैल को महात्माजी को गिरफ्तार कर लिया। पंजाब में ब्रिटिश सरकार का विरोध करने के लिए विशेष उत्साह था और पंजाब के गवर्नर **माइकल ओ डायर** जनता पर शक्ति-प्रयोग करने के लिए बेचैन हो रहे थे। 10 अप्रैल को प्रात: अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने किसी कारण से पंजाब के दो प्रसिद्ध नेताओं **सत्यपाल** और **डॉ. किचलू** को धर्मशाला में नजरबन्द कर अमृतसर से निष्कासन के आदेश दे दिए। जनता ने इसका विरोध किया और स्थिति तनावपूर्ण हो गयी। रौलट एक्ट और सरकार के इन कार्यों का विरोध करने के लिए 13 अप्रैल, 1919, को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा में सैनिक शासन के प्रमुख जनरल डायर के द्वारा अनावश्यक और अन्धाधुन्ध गोली वर्षा की गयी, जिसके परिणामस्वरूप कम से कम 800 व्यक्ति मरे और 2,000 घायल

हुए। इस हत्याकाण्ड का उद्देश्य सारे पंजाब को आतंकित करना था। इसके बाद भी सैनिक शासन घोषित कर अमानवीय व्यवहार और दमन जारी रखा गया। मनमानी गिरफ्तारियाँ, कोडों की मार और मई की तपती दोपहरी में विद्यार्थियों को 16-16 मील तक मार्च कराना दमनकारी शासन के अंग थे।

प्रभाव—इस दुर्घटना का राष्ट्र के मन और मस्तिष्क पर व्यापक प्रभाव पड़ा। **कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर** ने अपना "सर" का खिताब छोड़ दिया और वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य **शंकरन नायर** ने मार्शल लॉ जारी रखने के विरोध में कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। हत्याकाण्ड के प्रभाव के सम्बन्ध में **थोम्पसन और गैरट** लिखते हैं, "अमृतसर दुर्घटना भारत-ब्रिटिश सम्बन्धों में युगान्तरकारी घटना थी, लगभग वैसी ही महत्वपूर्ण जैसा कि 1857 का विद्रोह।"

हण्टर कमेटी की रिपोर्ट
(Hunter Committee Report)

हत्याकाण्ड की जाँच करने के लिए हण्टर कमेटी की नियुक्ति की गयी, लेकिन इस कमेटी ने हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी जनरल डायर को दण्ड देने की सिफारिश करने के स्थान पर उनके कार्य को "कर्तव्य से सत्यनिष्ठ, लेकिन गलत धारणा पर आधारित" बतलाते हुए उसका परोक्ष समर्थन किया। ब्रिटिश लॉर्ड सभा और आंग्ल भारतीय प्रेस ने जनरल डायर को "ब्रिटिश साम्राज्य का रक्षक" कहा। यह सब कुछ भारतीयों के जले पर नमक छिड़कना था और इससे उदार भारतीयों को असहनीय ठेस पहुँची।

(3) खिलाफत आन्दोलन
(Khilafat Movement)

महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार ने भारत के मुसलमानों को टर्की के सुल्तान की स्थिति बनाये रखने के सम्बन्ध में कुछ आश्वासन दिए थे, लेकिन युद्ध के बाद ब्रिटिश ने टर्की के साथ जो "सेवर्स की सन्धि" की, उसके द्वारा इन आश्वासनों को भंग कर दिया गया। इस सन्धि के द्वारा टर्की के सुल्तान के अधिकार छीन लिए गए। इससे टर्की के सुल्तान को अपना "खलीफा" (धर्मगुरू) मानने वाले भारतीय मुसलमान ब्रिटिश शासन के बहुत अधिक विरुद्ध हो गये और उन्होंने "खिलाफत आन्दोलन" (खलीफा की सत्ता की पुनर्स्थापना का आन्दोलन) शुरू कर दिया। महात्मा गांधी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया और हिन्दू-मस्लिम एकता के आधार पर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय किया।

(4) क्रिप्स मिशन
(Cripps Mission)

22 मार्च 1942 में ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल ने ब्रिटिश संसद सदस्य तथा मजदूर नेता **सर स्टैफर्ड क्रिप्स** के नेतृत्व में एक मिशन भारत भेजा। इसका उद्देश्य भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करना था। हालाँकि मिशन का वास्तविक उद्देश्य युद्ध में भारतीयों को सहयोग प्रदान करने के बहाने उन्हें बहलाना था। सर क्रिप्स द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सक्रियतापूर्ण समर्थन किया गया था। क्रिप्स मिशन के परीक्षण एवं विचार विमर्श हेतु कांग्रेस की ओर से **जवाहर लाल नेहरू** तथा **मौलाना अबुल कलाम आजाद** को अधिकृत किया गया था। क्रिप्स मिशन के दो भाग थे- प्रथम भाग के अन्तर्गत द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत में अधिराज्य (Domonion) स्थापित करने की योजना थी। इसमें युद्ध की समाप्ति पर एक निर्वाचित (Elected) संविधान सभा के द्वारा नवीन संविधान की रूपरेखा तैयार करने को कहा गया। अत: इंग्लैण्ड की सरकार, इस रचित नवीन संविधान को इस शर्त पर स्वीकार करेगी कि यदि कोई प्रान्त पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहता है तो सरकार को उसमें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।

संविधान सभा व इंग्लैण्ड में एक सन्धि होगी जिसमें धार्मिक व जातीय अल्पसंख्यकों को अंग्रेजी सरकार द्वारा दिए गए सन्धि आश्वासनों का वर्णन होगा। इसके अतिरिक्त उस भारतीय राज्य को अंग्रेजों के साथ एक नवीन संधि करनी होगी जो राज्य भारतीय नवीन संविधान को अपनाना चाहता है। क्रिप्स की योजना के द्वितीय भाग में युद्धकालीन व्यवस्था का वर्णन किया गया था। सन् 1935 के संविधान में परिवर्तन नहीं किया गया था। यह स्वीकार्य था कि भारत के भौतिक, नैतिक एवं सैनिक साधनों को संगठित करने के कार्य का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर था। इन कार्यों को वह भारतीयों के सहयोग से पूर्ण करेगा। इस प्रकार इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा भारतीय नेताओं को देश विषयक मशविरा हेतु आमन्त्रित किया जाना था।

❑

UNIT-II

संवैधानिक विकास एवं नागरिकता

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सन् 1919 ई० के अधिनियम की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर 1. प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना तथा 2. केन्द्रीय व्यवस्थापिका में दो सदनों की व्यवस्था।

प्र.2. सन् 1919 ई० के अधिनियम के अनुसार वायसराय के कार्य क्या थे?

उत्तर वायसराय के तीन कार्य थे—

1. क्राउन का प्रतिनिधित्व करना।
2. गृह शासन का संचालन करना।
3. प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी के पद का निर्वहन करना।

प्र.3. सन् 1935 ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधान सभा में कितने सदस्य थे?

उत्तर सन् 1935 ई० के अधिनियम के अनुसार, संघीय विधान सभा में दो सदन 'विधान सभा' एवं 'राज्य परिषद्' थे।

प्र.4. भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम कब स्वीकृत किया गया।

उत्तर 18 जुलाई, 1944 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम स्वीकृत किया गया।

प्र.5. 1858 ई० के अधिनियम के महत्त्व को बताइए।

उत्तर 1858 ई० के अधिनियम के महत्त्व निम्नलिखित हैं—

(i) भारत में दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था की समाप्ति हुई।
(ii) भारतीय विषय ब्रिटिश संसद में बहस के स्पष्ट मुद्दे बन गए।
(iii) भारत सचिव व उसकी परिषद की स्थापना किए जाने से भारतीय प्रशासन की सुचारुता में वृद्धि हुई क्योंकि इनको भारत की विस्तृत जानकारी रहती थी।
(iv) भारतीय रियासतों व ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों में मधुरता आई क्योंकि अब उन्हें अपने राज्य छिनने का भय न रहा।
(v) ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अत्याचारी शासन समाप्त होने से भारतीयों में इस आशा का संचार हुआ कि अब उनकी स्थिति सुधरेगी।

प्र.6. मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम कब पारित हुआ?

उत्तर 1909 ई० में।

प्र.7. साइमन कमीशन भारत में कब से कब तक रहा?

उत्तर साइमन कमीशन 3 फरवरी, 1928 से 31 मार्च, 1928 ई० तक भारत में रहा।

प्र.8. भारतीय संविधान का निर्माण-वर्ष बताइए।

उत्तर भारतीय संविधान का निर्माण-वर्ष 1949 ई० है।

प्र.9. संविधान सभा के अध्यक्ष कौन थे?

उत्तर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद।

प्र.10. संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष का नाम लिखिए।

उत्तर संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ० भीमराव अम्बेडकर थे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.11. भारत के संविधान की चार विशेषताएँ बताइए।

उत्तर भारतीय संविधान की विशेषताएँ—

(i) एकात्मक और संघात्मक संविधान।
(ii) धर्म निरपेक्ष संविधान।
(iii) कठोर और लचीले संविधान का मिश्रण।
(iv) नागरिकों के मूल अधिकारों एवं मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था।

प्र.12. भारतीय संविधान में कितने अनुच्छेद तथा अनुसूचियाँ हैं?

उत्तर भारतीय संविधान में 448 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं।

प्र.13. प्रारूप समिति का गठन कब किया गया?

उत्तर 29 अगस्त, 1948 को प्रारूप समिति का गठन किया गया।

प्र.14. संविधान सभा के उद्देश्य का प्रस्ताव किसने प्रस्तुत किया?

उत्तर संविधान सभा के उद्देश्य का प्रस्ताव पं० जवाहर लाल नेहरू ने प्रस्तुत किया।

प्र.15. किस अनुच्छेद में यह वर्णित है कि राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा?

उत्तर अनुच्छेद 45।

प्र.16. संविधान के किस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोक सभा में स्थानों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है?

उत्तर अनुच्छेद 330।

प्र.17. मॉण्टेग्यू कौन थे? उन्होंने अपनी घोषणा कब प्रकाशित की?

उत्तर मॉण्टेग्यू भारत मन्त्री थे। उन्होंने 20 अगस्त, 1919 को अपनी घोषणा प्रकाशित की।

प्र.18. नागरिकता के प्रकार बताइए।

उत्तर नागरिकता सामान्य रूप से दो प्रकार की होती है—

1. इकहरी नागरिकता
2. दोहरी नागरिकता

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1919 के अधिनियम के चार प्रमुख प्रावधान बताइए।

उत्तर 1919 के अधिनियम के चार प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

1. **प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन**—इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन किया गया। उनकी संख्या में वृद्धि करते हुए बड़े प्रान्तों की परिषदों में अधिक-से-अधिक 140 और छोटे प्रान्तों में कम-से-कम 60 सदस्य रखने की व्यवस्था की गयी। इन सदस्यों में कम से कम 80 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होने जरूरी थे, सरकारी सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी और शेष 10 प्रतिशत गैर-सरकारी सदस्य होते थे, जिन्हें गवर्नर मनोनीत करता था। इस प्रकार विधान सभाओं का स्वरूप अधिक लोकतन्त्रात्मक बनाया गया, उनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया तथा उसके अधिकारों में वृद्धि की गयी।
2. **द्वि-सदनात्मक केन्द्रीय विधानसभा का निर्णय**—इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय क्षेत्र में एक-सदनात्मक व्यवस्थापिका के स्थान पर द्वि-सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी। इन दोनों सदनों के नाम केन्द्रीय विधानसभा तथा राज्यपरिषद् रखे गये। केन्द्रीय विधानसभा में 143 सदस्य होते थे, जिनमें से 103 का चुनाव होता था व शेष मनोनीत होते थे। मनोनीत सदस्यों में 25 सरकारी तथा 15 गैर-सरकारी होते थे। 103 निर्वाचित सदस्यों में से 51 सामान्य निर्वाचन

TOUCH 'n' PASS

क्षेत्रों से, 32 साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्रों से (30 मुसलमानों तथा 2 सिखों के द्वारा) तथा 20 विशेष चुनाव क्षेत्रों (7 जमींदारों, 9 यूरोपियनों तथा 4 व्यापार मण्डलों के द्वारा) से चुने जाते थे। राज्यपरिषद् में 60 सदस्य होते थे, जिनमें से 33 का चुनाव होता था और 27 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे।

3. **भारत परिषद् में परिवर्तन**—इस अधिनियम के अन्तर्गत भारत परिषद को समाप्त करने की भारतीय माँग तो स्वीकार नहीं की गयी लेकिन भारत परिषद के गठन में परिवर्तन किये गये। इसमें कम-से-कम 8 और अधिक-से-अधिक 12 सदस्य नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। इन सदस्यों में कम से कम आधे ऐसे सदस्य होने जरूरी थे, जो नियुक्ति की तिथि के समय से पूर्व भारत में कम-से-कम 10 वर्ष रह चुके हों और इस देश को अपनी नियुक्ति की तिथि के 5 वर्ष से अधिक पूर्व न छोड़ा हो। इस परिषद का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया, लेकिन प्रत्येक सदस्य की आय बढ़ाकर 1,000 पौंड से 1,200 पौंड कर दी गयी और भारतीय सदस्य के लिए 600 पौंड के अतिरिक्त भत्ते की व्यवस्था की गयी। भारतीय परिषद के कार्य-संचालन के नियमों में भी परिवर्तन किये गये।
4. **संक्रमणकालीन उपाय**—1919 का अधिनियम स्पष्टत: एक प्रयोग व संक्रमणकालीन उपाय था। यह केवल एक अल्पकालीन उपाय था तथा इसके अनुसार, जैसा कि **लॉर्ड मैस्टन** ने कहा था, **''स्वेच्छाचारी शासन तथा लोकतन्त्र उस समय तक साथ-साथ हाथ मिलाकर चलने को बाध्य थे, जब तक लोकतन्त्र स्वयं चलना न सीख ले और अकेला चलने के विश्वास योग्य न हो जाय।''** ब्रिटिश संसद में भाषण देते हुए स्वयं **मि. मॉण्टेग्यू** ने कहा था कि **''यह तो अन्तरकालीन उपाय है। भारत पर ब्रिटिश संसद द्वारा शासन और भारतीय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन के बीच में यह एक प्रकार का पुल है।''** अधिनियम की संक्रमणकालीनता इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि अधिनियम के द्वारा 10 वर्ष बाद एक **'रॉयल कमीशन'** की नियुक्ति का विधान किया गया था, जो माण्टफोर्ड सुधारों की योजना के अधीन की गयी उन्नति का अध्ययन कर पूर्ण उत्तरदायी शासन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए उचित कदमों का निर्देश करे।

प्र.2. नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव लिखिए।

उत्तर नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं—

1. रिपोर्ट में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग नहीं की गयी थी। अधिराज्य (डोमिनियन स्टेट्स) को भविष्य की नहीं अपितु तात्कालिक आवश्यकता कहा गया।
2. भावी भारत में संघ (Federation) की व्यवस्था की अपेक्षा की गयी तथा प्रान्तों की स्वायत्तता पर विशेष जोर दिया गया।
3. मुसलमान सम्प्रदाय की माँगों को ध्यान में रखते हुए बम्बई प्रान्त से सिन्ध को अलग किया गया तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को अन्य प्रान्तों के समान माना गया।
4. संयुक्त चुनाव पद्धति लागू करने व साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को समाप्त करना प्रस्तावित किया गया।
5. सरकार की समस्त शक्तियाँ संसद में निहित की गयीं। संसद का निर्माण सम्राट, सीनेट और प्रतिनिधि सभा सभी के द्वारा किया जाना था। 500 सदस्यों वाली प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों का चुनाव बालिग व्यक्तियों द्वारा होना था।
6. यह भी कहा गया कि भारत में कोई राजधर्म नहीं होगा।
7. भारत की कार्यकारिणी शक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट के पास रहेगी जिसका प्रयोग संविधान के अनुसार गवर्नर-जनरल सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में करेगा। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में एक प्रधानमन्त्री व 6 अन्य मन्त्रियों का भी प्रावधान किया गया।
8. भारतीय सेना के विषय में निर्णयों के लिए एक प्रतिरक्षा समिति बनाने की सिफारिश की गयी, जिसके सदस्य प्रधानमन्त्री, रक्षामन्त्री, प्रधान सेनापति, वायुसेना व जल सेना के सेनापति, दो सैनिक विशेषज्ञ तथा जनरल-स्टाफ के अध्यक्ष होने थे।
9. संविधान की व्याख्या करने के लिए उच्चतम न्यायालय स्थापित किया जाए तथा प्रिवी कौंसिल को अपीलें बन्द करने के लिए कहा जाएगा।
10. भारतीय रियासतों के विषय में इस रिपोर्ट में कहा गया कि अधिराज्य प्राप्त होने पर केन्द्रीय सरकार के रियासतों पर वही अधिकार रहेंगे जो इस रिपोर्ट की प्रस्तुति के समय प्राप्त हैं।

प्र.3. क्रिप्स के युद्ध के बाद लागू होने वाले सुझाव या दीर्घकालीन सुझाव लिखिए।

उत्तर क्रिप्स के युद्ध के बाद लागू होने वाले सुझावों (दीर्घकालीन सुझाव) का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **अधिराज्य की स्थापना**—मसविदे में कहा गया, "भारत के साथ की गयी प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड और भारत में जो चिन्ताएँ प्रकट की गयी हैं, उनको ध्यान में रखते हुए सम्राट की सरकार ने भारत में शीघ्र स्वशासन के विकास के लिए निश्चित कदम उठाने का निश्चय किया है। ब्रिटिश सरकार एक ऐसे भारतीय संघ की स्थापना करना चाहती है, जो एक ऐसा उपनिवेश या अधिराज्य होगा कि ब्रिटिश मुकुट के प्रति अपनी भक्ति के कारण ब्रिटेन तथा उपनिवेशों से अपना सम्बन्ध रखेगा। प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि वह उपनिवेश हर दृष्टि से अन्य उपनिवेशों के बिल्कुल समान होगा और आन्तरिक तथा बाहरी मामलों में किसी के अधीन न होगा। इसे ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेद करने की भी स्वतन्त्रता होगी।
2. **संविधान सभा की स्थापना**—युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद भारत में एक संविधान सभा की स्थापना की जाएगी, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों दोनों के प्रतिनिधि होंगे और जिनका कार्य भारत के लिए संविधान का निर्माण करना होगा।
3. **संविधान सभा की रचना**—युद्ध की समाप्ति के पूर्व यदि भारत के सम्प्रदायों और हितों के मुख्य नेता किसी अन्य व्यवस्था पर सहमत न हों, तो संविधान सभा का निर्माण निम्न प्रकार होगा—
   "युद्ध के समाप्त होते ही प्रान्तीय विधानमण्डलों के चुनाव होंगे और प्रान्तीय विधानमण्डलों के निम्न सदन अर्थात् विधान-सभाएँ आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार संविधान सभा का चुनाव करेंगे। निर्वाचक-मण्डल में जितने सदस्य होंगे, उसके 10 प्रतिशत इस संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य होंगे। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति उनकी जनसंख्या के अनुपात में रियासतों के नरेशों द्वारा की जाएगी और ब्रिटिश प्रान्तों तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की शक्तियाँ बराबर होंगी।
4. **प्रान्तों या देशी रियासतों को पृथक् रहने का अधिकार**—मसविदे में कहा गया कि सम्राट की सरकार इस प्रकार बनाए गए संविधान को स्वीकार करने तथा क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी लेती है, परन्तु शर्त यह है कि ब्रिटिश भारत के जिन प्रान्तों या देशी रियासतों को यह नवीन संविधान पसन्द न होगा, वे अपनी वर्तमान संवैधानिक स्थिति बनाये रख सकेंगे। जो प्रान्त भारत के नये संविधान को मानने और भारतीय संघ में शामिल होने के लिए तैयार नहीं होंगे, उन्हें भी अपने लिए एक संविधान बनाने का अधिकार होगा तथा इनकी स्थिति भी भारतीय संघ के समान ही होगी।
5. **सन्धि**—संविधान सभा द्वारा निर्मित विधान को स्वीकार करने में एक शर्त यह भी थी कि संविधान सभा तथा सम्राट की सरकार के बीच एक सन्धि होगी जिसमें उन सभी मामलों का उल्लेख होगा, जो ब्रिटेन से भारत को शक्ति का पूर्ण हस्तान्तरण करने के कारण उत्पन्न होंगे। इस सन्धि में जातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए प्रबन्ध रहेगा, परन्तु उसमें कोई ऐसा प्रतिबन्ध न रखा जाएगा, जिसके कारण भारतीय संघ के ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों से अपने भावी सम्बन्ध निश्चित करने के अधिकार में कमी हो।
6. **देशी रियासतें**—चाहे देशी रियासत नवीन संविधान अपनाना चाहें या नहीं, परन्तु उनके साथ हुई पुरानी सन्धि को नये संविधान की आवश्यकता के अनुसार दोहराना पड़ेगा।

प्र.4. वेवेल योजना की प्रमुख शर्तें क्या थीं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर वेवेल योजना की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

1. ब्रिटिश सरकार भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करना व उसे स्वशासन की ओर अग्रसर करना चाहती थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की एक नयी सूची तैयार की जाए, जिसमें वायसराय और प्रधान सेनापति को छोड़कर (जो युद्ध मन्त्री बना रहेगा) अन्य सभी सदस्य भारत के राजनीतिक नेता हों।
2. वैदेशिक मामलों का विभाग (सीमान्त ओर कबायली मामलों को छोड़कर) परिषद् के भारतीय सदस्य के हाथ में होगा।
3. परिषद् में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर रखते हुए भारत के सभी प्रमुख सम्प्रदायों को सन्तुलित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।
4. कार्यकारिणी परिषद् एक प्रकार की अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी और गवर्नर जनरल निषेधाधिकार का प्रयोग अकारण नहीं होगा।

5. भारतीय प्रशासन में भारतमन्त्री का हस्तक्षेप कम से कम होगा और इसका प्रयोग भारतीय हितों में ही किया जाएगा।
6. दूसरे अधिराज्यों के समान ही भारत में भी ब्रिटेन के व्यापारिक और अन्य हितों की देखभाल के लिए 'ब्रिटिश हाई कमिश्नर' की नियुक्ति की जाएगी।
7. युद्धोपरान्त भारतीय संविधान का निर्माण स्वयं भारतीय करेंगे तथा इन प्रस्तावों से भारत के भावी स्थायी संविधान अथवा संविधानों के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।
8. भारतीय नेताओं द्वारा इस योजना को स्वीकार कर लेने पर प्रान्तों में धारा 93 रद्द कर दी जाएगी और सामान्य संवैधानिक सरकारों की फिर से स्थापना की जाएगी।

यह घोषणा की गयी है कि उपर्युक्त प्रस्तावों पर विचार के लिए शीघ्र ही शिमला में सम्मेलन किया जाएगा।

प्र.5. माउण्टबेटन योजना समझाइए।

उत्तर

माउण्टबेटन योजना
(Mountbaten Plan)

लॉर्ड माउण्टबेटन ने 23 मार्च, 1947 को भारत के वायसराय के पद का कार्यभार संभाला और शीघ्र ही उत्साहपूर्वक अपने कार्य में संलग्न हो गए। सर्वप्रथम उन्होंने गांधीजी से और इसके बाद अन्य भारतीय नेताओं से बातचीत की। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वर्तमान परिस्थितियों में भारतीय समस्या का एकमात्र सम्भव हल पाकिस्तान की स्थापना को स्वीकार कर लेना ही है। कांग्रेस ने भी परिस्थितियों के दबाव से भारतीय समस्या के इस दुखद हल को स्वीकार कर लिया था। समस्त स्थिति का अध्ययन कर तथा दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण समझकर लॉर्ड माउण्टबेटन 18 मई, 1947 को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से परामर्श करने के उद्देश्य से लन्दन गए।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से परामर्श करने के उपरान्त लॉर्ड माउण्टबेटन भारत आए और उन्होंने 3 जून, 1947 को एक योजना प्रस्तावित की, जो उनके नाम पर ही **'माउण्टबेटन योजना'** (Mountbaten Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना की मुख्य बातें निम्न हैं—

1. ब्रिटिश सरकार की यह इच्छा है कि वह भारत का शासन शीघ्र ही ऐसी सरकार को सौंप दें, जिसका निर्माण जनता की इच्छानुसार हुआ हो। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश सरकार सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए 1948 तक प्रतीक्षा नहीं करेगी, वरन् वह 1947 में ही इस कार्य को विधिवत् समाप्त कर देना चाहती है।
2. योजना के अन्तर्गत भारतीय समस्या के हल के रूप में पाकिस्तान की स्थापना को स्वीकार किया गया, किन्तु लीग की माँग के अनुसार सम्पूर्ण बंगाल और पंजाब पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं किए गए। यह निश्चित किया गया कि यूरोपियन सदस्यों को छोड़कर पंजाब और बंगाल की विधानसभाओं में अधिवेशन दो भागों में किए जाएँगे। एक भाग उन जिलों के प्रतिनिधियों का होगा, जिसमें मुसलमानों का बहुमत है और दूसरा भाग उन जिलों के प्रतिनिधियों का होगा, जिसमें मुसलमानों का बहुमत नहीं है। योजना में बहुमत वाले जिलों के नाम गिनाए गए। प्रत्येक भाग को साधारण बहुमत से यह निश्चित करना था कि उसके प्रान्त का विभाजन किया जाए या नहीं। यदि दोनों में से एक भाग ने भी विभाजन का पक्ष लिया, तो विभाजन किया। यदि मत विभाजन के पक्ष में आए, तो उनको यह निर्णय करना होगा कि वे वर्तमान संविधान सभा में सम्मिलित होना चाहते हैं अथवा एक पृथक् संविधान सभा का निर्माण करना चाहते हैं।
3. सिन्ध की विधानसभा को भी अपनी एक विशेष बैठक में सिन्ध के भाग्य के निर्णय का अवसर प्रदान किया जाएगा।
4. असम के मुस्लिम बहुमत वाले सिलहट जिले में इस बात का निर्णय जनमत संग्रह द्वारा किया जाएगा कि वहाँ की जनता असम के अन्तर्गत रहना चाहती है या पूर्वी बंगाल में सम्मिलित होना चाहती है।
5. गवर्नर जनरल के निर्देशन में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में इस बात का निर्णय करने के लिए जनमत संग्रह किया जाएगा कि सीमाप्रान्त को भारत में सम्मिलित किया जाए या पाकिस्तान में।
6. बलूचिस्तान को भारतीय संघ में रहने या अलग होने के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार होगा। बलूचिस्तान की सभी प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की संयुक्त बैठक में इस बात का निर्णय किया जाएगा।
7. यदि उपर्युक्त योजना के अनुसार बंगाल, पंजाब और असम के द्वारा विभाजन का समर्थन किया गया, तो भारत और पाकिस्तान की सीमा का निर्धारण करने के लिए कमीशन की नियुक्ति की जाएगी।

8. भारत और पाकिस्तान के अधिराज्यों के बीच लेनदारियों और देनदारियों (Liabilities and Assets) को विभाजित करने के लिए समझौता होगा।
9. देशी रियासतों को भारत या पाकिस्तान में अपनी इच्छानुसार सम्मिलित होने की छूट होगी।
10. भारत और पाकिस्तान को राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के त्याग का अधिकार होगा।

प्र.6. संवैधानिक विकास के चरण को चार्ट के माध्यम से समझाइए।

उत्तर संवैधानिक विकास के चरण को निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से भी समझा जा सकता है—

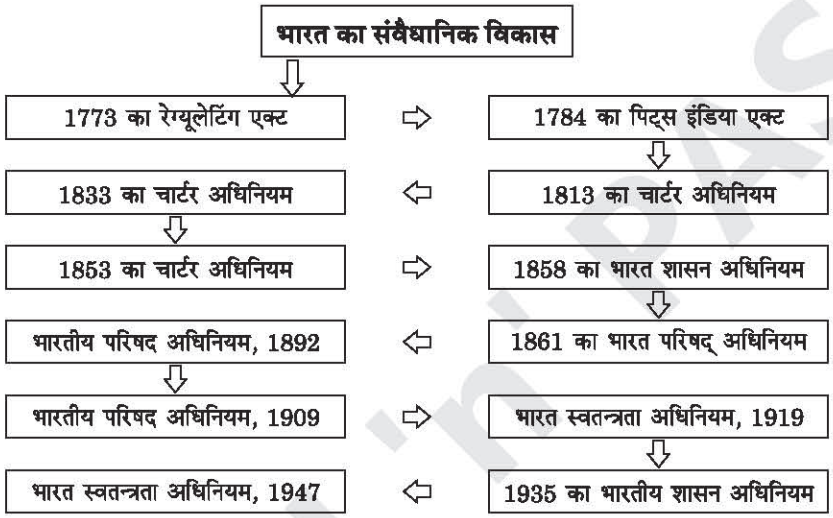

प्र.7. संविधान का प्रारूप एवं स्वीकृति को समझाइए।

उत्तर

संविधान का प्रारूप एवं स्वीकृति
(Draft of the Constitution and its Acceptance)

प्रारूप समिति ने संविधान का प्रारूप 21 फरवरी, 1948 को तैयार किया। इस प्रारूप के मूल संविधान में 395 अनुच्छेद तथा आठ अनुसूचियाँ थीं। इसके पश्चात् इस प्रारूप को संविधान सभा, प्रान्तीय परिषदों, विधिवेत्ताओं एवं जन साधारण के सामने प्रस्तुत किया गया। इसके तीन वाचन हुए जो निम्नलिखित थे—

1. **प्रथम वाचन**—4 नवम्बर, 1948 से 9 नवम्बर, 1948 तक प्रारूप संविधान के प्रकाशन के बाद संविधान में संशोधन के लिए अनेक सुझाव प्राप्त हुए तथा विशिष्ट संस्करण प्रकाशित हुआ।
2. **द्वितीय वाचन**—15 नवम्बर, 1948 से इस पर खण्डवार विचार विमर्श शुरू हुआ। यह कार्य 17 अक्टूबर, 1949 तक चला, इस समयावधि में 7653 संशोधन प्रस्ताव आए जिनमें से 2473 पर ही सभा में चर्चा हुई। संविधान सभा के इतिहास का यह सबसे लम्बा अधिवेशन था। संविधान सभा के सदस्यों को प्रत्येक अनुच्छेद एवं अनुसूची पर संशोधन एवं वाद-विवाद करने का अधिकार दिया गया था।
3. **तृतीय वाचन**—14 नवम्बर, 1949 से विचार शूरू हुआ। यह 26 नवम्बर, 1949 तक चला।

तीन वाचनों की प्रक्रिया से गुजरते हुए 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित एवं आत्मार्पित किया। संविधान सभा के 11 अधिवेशन एवं 165 बैठक संविधान को बनाने के लिए किए गए थे। इसमें विश्व के लगभग 60 देशों के संविधानों का अवलोकन हुआ और इनके प्रारूप पर 114 दिनों तक विचार किया गया। संविधान सभा ने अपने छठे अधिवेशन नवम्बर 1948 में प्रारूप पर विचार विमर्श आरम्भ किया। यह प्रारूप एक प्रकार का विधेयक था और यह इसका प्रथम चरण था। यह अधिवेशन लगभग एक सप्ताह चला। संविधान सभा का सातवाँ एवं द्वितीय चरण नवम्बर, 1948 से अक्टूबर 1949 तक चला। प्रारूप समिति का तीसरा वाचन 14 नवम्बर से 26 नवम्बर 1949 तक चला। 26 नवम्बर को ही संविधान सभा के अध्यक्ष **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद** ने संविधान के अन्तिम प्रारूप पर अपने हस्ताक्षर किए।

प्र.8. भारतीय संविधान के निर्माण में विभिन्न देशों के संविधान से लिए गए प्रावधानों को समझाइए।

उत्तर भारतीय संविधान के निर्माण में निम्नलिखित देशों के संविधान से सहायता ली गई है—

1. **अमेरिकी संविधान से लिए गए प्रावधान**—संविधान की प्रस्तावना का विचार, मौलिक अधिकार, न्यायिक सर्वोच्चता, न्यायिक पुनरावलोकन, उपराष्ट्रपति का पद, महाभियोग की प्रक्रिया, लोकतन्त्र, न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया, वित्तीय आपातकाल (विशेष), संघात्मक शासन के प्रावधान, देश का कार्यपालिका प्रमुख जिसे राष्ट्रपति कहा जाता है और वह सैन्य बलों का सर्वोच्च कमांडर होगा।
2. **ब्रिटेन के संविधान से लिए गए प्रावधान**—इकहरी (एकल) नागरिकता, विधि का शासन, कानून निर्माण की प्रक्रिया, संसदीय शासन प्रणाली, राष्ट्रपति पद की औपचारिक स्थिति, मन्त्रिमण्डलीय शासन, मन्त्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पद का प्रावधान, सांसदों एवं विधायकों के विशेषाधिकार, राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति, कार्यपालिका का विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायित्व।
3. **ऑस्ट्रेलिया के संविधान से लिए गए प्रावधान**—समवर्ती सूची का प्रावधान-केन्द्र एवं राज्य के मध्य सम्बन्ध तथा शक्तियों का विभाजन, प्रस्तावना की भाषा, संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान, संसदीय विशेषाधिकार, व्यापार, वाणिज्य व समागम की स्वतंत्रता सम्बन्धी प्रावधान।
4. **दक्षिणी अफ्रीका के संविधान से लिए गए प्रावधान**—संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया, राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन।
5. **कनाडा के संविधान से लिए गए प्रावधान**—संघीय शासन व्यवस्था के प्रावधान, यूनियन ऑफ स्टेट्स शब्द की अवधारणा, राष्ट्रपति का सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श प्राप्त करना, केन्द्र द्वारा राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति, विधानमण्डल के उच्च सदन के संगठन का रूप, केन्द्र व राज्यों के बीच शक्ति वितरण सम्बन्धी प्रावधान जिसमें सशक्त केन्द्र वाली संघीय व्यवस्था तथा अतिविशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के अधीन रखी गई है।
6. **आयरलैंड के संविधान से लिए गए प्रावधान**—नीति-निर्देशक सिद्धान्त, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल की व्यवस्था, राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में साहित्य, कला, विज्ञान तथा समाज सेवा इत्यादि के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त 12 व्यक्तियों का मनोनयन।
7. **पूर्व सोवियत संघ (रूस) के संविधान से लिए गए प्रावधान**—मौलिक कर्तव्य, पंचवर्षीय योजनाएँ, संविधान की प्रस्तावना में न्याय, सामाजिक, आर्थिक एवं समाजवाद।
8. **जर्मनी के संविधान से लिए गए प्रावधान**—आपातकाल के प्रवर्तन के दौरान राष्ट्रपति को मौलिक अधिकार संबधी शक्तियाँ (मूल अधिकारों का स्थगन)।

प्र.9. नागरिकता सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान का वर्णन कीजिए।

उत्तर भारतीय नागरिकता सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान अनुच्छेद 5 से 11 में निम्न प्रकार से वर्णित किए गए हैं—

1. **संविधान के प्रारम्भ में नागरिकता—अनुच्छेद-5** के आधार पर भारतीय संविधान के प्रारम्भ में विभिन्न प्रावधान किए गए जो कि निम्नलिखित हैं—
   (i) उस व्यक्ति का भारत में अधिवास हो।
   (ii) वह भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा हो।
   (iii) वह संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले कम-से-कम 5 वर्ष भारत का निवासी रहा हो, उसे भारत का नागरिक माना जाएगा।
2. **भारतीय नागरिकता—अनुच्छेद-6** के अनुसार, पाकिस्तान से भारत आने वाले व्यक्ति को भारतीय नागरिक माना जाएगा यदि—
   (i) वह या उसके माता-पिता के पक्ष का कोई भी पूर्वज भारत में जन्मा हो।
   (ii) वह 19 जुलाई, 1948 से भारत में रहा हो या भारत का निवासी हो।
   (iii) वह जुलाई, 1948 के बाद भारत सरकार के द्वारा यहाँ के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर लिया गया हो।
3. **पाकिस्तान को आव्रजन करने वालों की नागरिकता**—संविधान के **अनुच्छेद-7** में यह उपलब्ध है कि अनुच्छेद-5 या 6 में किसी बात के होते हुए भी जो व्यक्ति 1 मार्च, 1947 के बाद भारत से पाकिस्तान का आव्रजन कर गया है, वह व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा।

4. **भारत के बाहर भारतीय मूल वाले व्यक्ति की नागरिकता**—संविधान का **अनुच्छेद-8** भारत में जन्मे परन्तु विदेश में रहने वाले कुछ व्यक्तियों को कुछ शर्तों को पूरा करने पर नागरिकता का अधिकार प्रदान करता है। वे शर्तें निम्न प्रकार हैं—
   (i) उसे भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत किया गया हो।
   (ii) यह पंजीकरण आवेदन संविधान लागू होने के पहले या बाद में किया गया हो।
5. **विदेशी नागरिकता अर्जित करने पर भारत की नागरिकता की समाप्ति—अनुच्छेद-9** में यह उपलब्ध है कि यदि कोई व्यक्ति इच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता अर्जित कर लेता है तब उस व्यक्ति की भारतीय नागरिकता स्वत: समाप्त हो जाएगी। वह अनुच्छेद-5, 6 या 8 के आधार पर नागरिकता का दावा नहीं कर सकेगा।

प्र.10. भारतीय नागरिकता के महत्त्व एवं विशेष अधिकार को समझाइए।

उत्तर

नागरिकता का महत्त्व एवं विशेषाधिकार
(Importance and Privilages of Citizenship)

संविधान में केवल नागरिकों को ही मूल अधिकार व कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं जो कि निम्न हैं—

1. अनुच्छेद 15 के अनुसार, राज्य नागरिकों के बीच केवल मूल वंश, जाति या लिंग एवं जन्मस्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।
2. अनुच्छेद 16 के अनुसार, राज्य द्वारा प्रदत्त नौकरियों के विषय में अवसर की समानता का अधिकार या लोकनियोजन के विषय में समता का अधिकार।
3. अनुच्छेद 19 के अनुसार, मूल स्वतन्त्रता; जैसे—भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास व व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता।
4. अनुच्छेद 29 एवं 30 के आधार पर सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार। केन्द्रीय विधान मण्डल एवं राज्य विधानमण्डल के प्रतिनिधियों के चुनाव का मताधिकार एवं इन संस्थाओं का सदस्य बनने का अधिकार।
5. सार्वजनिक पदों; जैसे—राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, राज्यों के राज्यपाल, महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की योग्यता रखने का अधिकार।
6. संसद एवं राज्य विधान मण्डल की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1858 ई० के अधिनियम के पारित होने के प्रमुख कारणों व उसकी प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

भारतीय शासन अधिनियम, 1858
(Government of India Act, 1858)

1858 ई० के भारतीय अधिनियम का भारत के संवैधानिक एवं राजनीतिक इतिहास में अत्यधिक महत्व है क्योंकि यही वह अधिनियम था जिसके द्वारा भारतीय शासन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से छीनकर ब्रिटिश ताज (Crown) के अधीन कर दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम के पारित होने से भारत पर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया। वास्तव में, 1784 ई० के **पिट्स इण्डिया एक्ट** के पश्चात् से ही कम्पनी की संवैधानिक शक्ति घटने लगी थी क्योंकि दोहरे शासन (Dual rule) से प्रशासन प्रभावित हो रहा था। उस समय भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में इतना भ्रष्टाचार था कि इंग्लैण्ड से लोग यहाँ आकर अपनी जेबें भरने के लिए, अखबारों में विज्ञापन देते थे कि उन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी दिलाने वाले को पुरस्कृत किया जाएगा। इस प्रकार 1857 ई० तक आते-आते ईस्ट इण्डिया कम्पनी में भ्रष्टाचार तथा भारतीयों पर अत्याचार इतना अधिक बढ़ गया कि भारतीय अब और अधिक सहने की स्थिति में न थे। इसी का परिणाम 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में देखने को मिला।

1857 ई० में इंग्लैण्ड में आम चुनाव (General Elections) हुए तथा प्रधानमन्त्री के पद पर **लॉर्ड पामर्स्टन** बैठे। पामर्स्टन के लिए कहा जाता है कि वे **'गृह नीति में अनुदार तथा विदेश नीति में उदार'** थे। पामर्स्टन ने तत्कालीन भारतीय स्थिति का

अवलोकन किया व वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत को अब सीधे अंग्रेजी ताज के अधीन लेना आवश्यक है। पामर्स्टन द्वारा यह निर्णय लेने के प्रमुखतया **तीन** कारण थे—

(i) प्रशासनिक क्षमता

पामर्स्टन का मानना था कि तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त असुविधाजनक है जिससे प्रशासनिक क्षमता घटती है। पामर्स्टन के अनुसार भारतीय प्रशासन का उत्तरदायित्व निदेशकों (Directors), नियन्त्रण मण्डल (Board of Control), तथा गवर्नर-जनरल (Governor-General) में बँटा होने के कारण उचित प्रशासन का अभाव भारत में है। उसने कहा, **''दोहरी शासन-व्यवस्था असुविधाजनक, फूहड़ तथा जटिल है।''** अत: इस व्यवस्था को परिवर्तित कर एक सुचारु एवं सुदृढ़ शासन-व्यवस्था की भारत में स्थापना करना आवश्यक था।

(ii) प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त

पामर्स्टन का विचार था कि क्योंकि इंग्लैण्ड एक प्रजातान्त्रिक देश है, अत: भारत में भी शासन ऐसी संस्था के द्वारा होना चाहिए जो कि इंग्लैण्ड की संसद के प्रति उत्तरदाई हो। उसने कहा, **''भारतीय शासन की बागडोर एक ऐसी संस्था के हाथ में है जो न तो संसद के प्रति उत्तरदायी है और न ही ताज के द्वारा नियुक्त।''** पामर्स्टन का विचार था भारत में शासन ऐसी संस्था के द्वारा होना चाहिए जो इंग्लैण्ड की संसद के प्रति उत्तरदायी हो।

(iii) 1885 ई० का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम

1857 ई० के प्रथम स्वतनत्रता संग्राम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशासनिक कमजोरियों को स्पष्ट कर दिया। इस घटना ने इंग्लैण्ड की सरकार की आँखें खोल दीं तथा उनको यह स्पष्ट हो गया कि यदि भारत के सम्बन्ध में शीघ्र ही कोई निर्णय नहीं लिया गया तो भारत उनके हाथ से निकल सकता है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पामर्स्टन ने 12 फरवरी, 1858 ई० को इंग्लैण्ड की संसद में एक बिल प्रस्तुत किया, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को भारत से समाप्त कर भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन करने का प्रस्ताव किया गया था। पामर्स्टन ने इस बिल को संसद में प्रस्तुत करते समय संसद में महत्वपूर्ण भाषण दिया जिसमें उसने इस बिल को पारित करने की आवश्यकता पर बल दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस बिल का घोर विरोध किया तथा इसके विरोध में तथा अपना शासन भारत में जारी रखने के पक्ष में इंग्लैण्ड की संसद में **'विरोध पत्र'** (Grand Petition) प्रस्तुत किया।

पामर्स्टन के प्रयासों के पश्चात् भी यह बिल उसके शासनकाल में पारित न हो सका। कुछ समय पश्चात् स्टैनली ने **कामन सभा** (इंग्लैण्ड की संसद का निचला सदन) में चौदह प्रस्ताव प्रस्तुत किए जिन्हें संसद ने स्वीकार कर दिया। इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर 1858 ई० के भारत सरकार अधिनियम की रूप-रेखा तैयार की गई। अन्तत: 30 अप्रैल, 1858 ई० को यह बिल पारित कर दिया गया तथा 2 अगस्त, 1858 ई० को इसे महारानी विक्टोरिया के द्वारा अपनी स्वीकृति प्रदान की गई। इस प्रकार यह बिल अधिनियम बन गया। इसी के आधार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों (Directors) की अन्तिम बैठक हुई तथा कार्यभार ब्रिटिश ताज को सौंप दिया गया।

मुख्य धाराएँ

1858 ई० के भारतीय अधिनियम की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित थीं—

1. इस अधिनियम के द्वारा भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को पूर्णत: समाप्त कर दिया गया तथा भारतीय प्रशासन सम्बन्धी सभी अधिकार पूर्णत: अंग्रेजी ताज को सौप दिए गए। कम्पनी की सेना को भी इंग्लैण्ड के प्रशासन के अधीन कर दिया गया तथा इस बात की स्पष्ट घोषणा की गई कि अब भारत पर प्रशासन साम्राज्ञी के नाम से किया जाएगा।
2. भारत में सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी **'गवर्नर-जनरल'** होता था उसका पदनाम अब **'गवर्नर-जनरल तथा वायसराय'** (Governor-General & Viceroy) कर दिया गया क्योंकि अब वह भारत में अंग्रेजी ताज के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। 'गवर्नर-जनरल तथा वायसराय' की नियुक्ति अंग्रेजी ताज के द्वारा की जानी थी। प्रान्तीय गवर्नरों को गवर्नर-जनरल नियुक्त कर सकता था, किन्तु इसके लिए अंग्रेजी ताज की स्वीकृति लेना अनिवार्य कर दिया गया।

3. नियन्त्रण मण्डल (Board of Control) तथा निदेशकों (Directors) के पदों को समाप्त कर दिया गया तथा उसके स्थान पर **भारत सचिव** के पद का सृजन किया गया। भारत सचिव (Secretary of State of India) कैबिनेट स्तर का मन्त्री होता था जो कि संसद के प्रति उत्तरदायी था। उसके पास वे समस्त अधिकार थे जो पहले नियन्त्रण मण्डल तथा निदेशकों में निहित थे। भारत सचिव का कार्यालय लन्दन में ही स्थित था।
4. भारत सचिव की सहायतार्थ एक परिषद (Council) की स्थापना की गई, जिसमें 15 सदस्य थे जिनमें से आठ सदस्य साम्राज्ञी के द्वारा नियुक्त (मनोनीत) किए जाते थे।
5. भारत में शासन के निरीक्षण, निर्देशन का उत्तरदायित्व भारत-सचिव पर ही था।
6. भारत सचिव तथा उसके कार्यालय का समस्त खर्चा भारतीय राजस्व से वसूल किया जाना था, अर्थात् उसका खर्चा भारतीयों को वहन करना था।
7. भारत सचिव के लिए भारतीय प्रगति का लेखा-जोखा प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड की संसद में प्रस्तुत करना आवश्यक था।
8. किसी बाह्य आक्रमण का सामना करने के अतिरिक्त किसी भी युद्ध के लिए (भारत की सीमा के बाहर) इंग्लैण्ड की संसद से अनुमति लेना आवश्यक था। भारत में भी कोई युद्ध होने पर भारत सचिव का यह दायित्व था कि वह इस युद्ध के विषय में अंग्रेजी संसद को तत्काल सूचित करे।
9. भारत में लोक सेवाओं में नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा किए जाने का निर्णय किया गया। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही करने के अधिकार भारत मन्त्री को दिए गए। जिससे यह अपेक्षा की गई कि वह लोक सेवा आयोग के सदस्यों से विचार-विमर्श कर इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाए।
10. ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्वीकार की गई सभी सन्धियाँ अंग्रेजी ताज को मान्य होंगी।

प्र.2. 1909 के सुधार कानून के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर 1909 के सुधार कानून के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधायी परिषदों का विस्तार—

(क) गवर्नर-जनरल की विधान परिषद् के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 16 से 60 कर दी गई।

(ख) प्रानतीय विधान परिषदों में मद्रास, बंगाल और मुम्बई के सदस्यों की संख्या 20 से 50, संयुक्त प्रान्त की 15 से 60 और पंजाब, असम तथा बर्मा की विधान परिषदों की अधिकतम संख्या 30 निश्चित की गयी।

(ग) 1912 में प्रान्तों की सीमाओं में भी कुछ परिवर्तन होने पर अन्य प्रान्तों की विधान परिषदों की सदस्य संख्या में भी कुछ परिवर्तन किए गये।

2. विधायी परिषदों के अधिकारों में वृद्धि—केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधायी परिषदों के अधिकारों में भी वृद्धि की गयी।

(क) सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया गया परन्तु साथ में यह प्रतिबन्ध था कि पूरक प्रश्न वही सदस्य पूछ सकता था, जिसने मुख्य प्रश्न पूछा हो।

(ख) विधान परिषद् के सदसयों को बजट पर बहस करने और प्रस्ताव पेश करने का भी अधिकार दिया गया।

(ग) कानून द्वारा उपरोक्त अधिकारों को सीमित भी कर दिया गया था तथा इनका प्रयोग कुछ विशेष नियमों के अनुसार ही किया जा सकता था।

3. केन्द्रीय विधान परिषद् में सरकारी बहुमत—केन्द्रीय विधान परिषद् के 69 सदस्यों में से 37 सरकारी थे, 5 नामजद गैर-सरकारी और 27 निर्वाचित। सदस्यता की अवधि 3 वर्ष थी।

4. प्रान्तीय विधान परिषद् में गैर-सरकारी बहुमत—गैर-सरकारी बहुमत का तात्पर्य निर्वाचित बहुमत से नहीं था। सरकारी सदस्य और सरकार द्वारा नामजद गैर-सरकारी सदस्य दोनों मिलकर निर्वाचित सदस्यों से निश्चित रूप से अधिक हो जाते थे। प्राय: प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधान परिषदों से अपनी इच्छानुसार कानून बनवाने में कठिनाई नहीं होती थी। क्योंकि गैर-सरकारी सदस्य सरकार का पक्ष लेते थे और चुने हुए सदस्य विभिन्न हितों के प्रतिनिधि होने के कारण आपस में नहीं मिल सकते थे।

5. कार्यकारिणी परिषदों में भारतीयों की नियुक्ति एवं कार्यकारिणी परिषदों का विस्तार—इस कानून द्वारा यह घोषणा की गयी कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् और प्रान्तीय गवर्नरों की कार्यकारिणी परिषदों में भारतीयों को

नियुक्त किया जा सकता है। इस आधार पर **लॉर्ड सिन्हा** को गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी का **'प्रथम भारतीय विधि सदस्य'** नियुक्त किया गया।

6. **साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का प्रारम्भ**—कानून के द्वारा मुसलमानों को पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को साम्राज्य के प्रति उनकी विशेष सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए संख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।
7. **सीमित तथा भेदभाव पर आधारित मताधिकार**—अधिनियम द्वारा जो मताधिकार दिया गया वह अत्यन्त सीमित और अनेक प्रकार के भेदभावों पर आधारित था। इतना ही नहीं मुस्लिम एवं गैर-मुस्लिम व्यक्तियों के मताधिकार की योग्यताएँ भी बहुत भिन्न थीं।
8. **उम्मीदवारों के लिए अनावश्यक रूप से कठोर एवं भेदभावपूर्ण योग्यताएँ**—कानून का एक लक्षण और दोष था—उम्मीदवारों के लिए अनावश्यक रूप से कठोर और भेदभावपूर्ण योग्यताएँ। उदाहरण के लिए, प्रान्तीय परिषदों के लिए सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यताएँ भी निश्चित की गईं। सबसे त्रुटिपूर्ण बात यह थी कि विनियमों द्वारा शासन को किसी भी व्यक्ति को उम्मीदवार बनने से रोकने का अधिकार दिया गया।
9. **भारत के कुछ भागों को प्रतिनिधित्व से वंचित रखना**—उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त कुर्ग, अजमेर, मेरवाड़ा आदि ब्रिटिश भारत के कुछ क्षेत्र सीधे गवर्नर-जनरल के आधिपत्य में थे। इनका एक भी गैर-सरकारी सदस्य केन्द्रीय विधान परिषद् में सम्मिलित नहीं किया गया था और न ही इन प्रदेशों को चुनाव क्षेत्र बनाया गया था।

प्र.3. भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

भारतीय शासन अधिनियम, 1935
(Government of India Act, 1935)

1930, 31 और 32 के गोलमेज सम्मेलनों में किए गए विचार के आधार पर मार्च 1933 ई० में भावी सुधार योजना के सम्बन्ध में एक 'श्वेत पत्र' (White Paper) प्रकाशित किया गया, जिसमें प्रान्तों में उत्तरदायी शासन व्यवस्था और केन्द्र में अधिक उत्तरदायी शासन की स्थापना का सुझाव दिया गया था। 'श्वेत पत्र' के सुझावों को स्वीकार करते हुए ही ब्रिटिश संसद द्वारा 1935 ई० के **'भारतीय शासन अधिनियम'** का निर्माण किया गया।

1935 के भारतीय शासन अधिनियम की विशेषताएँ

1935 का भारतीय शासन अधिनियम बहुत लम्बा और जटिल था। अधिनियम में 451 धाराएँ और 15 परिशिष्ट थे। अधिनियम के इतने अधिक लम्बे और पेचीदा होने का मूल कारण यह था कि एक ओर तो भारत में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता के कारण भारत के लोगों को सत्ता का पर्याप्त हस्तान्तरण आवश्यक हो गया था, दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार शक्ति हस्तान्तरण के साथ-साथ अपने हितों की रक्षा की पूरी व्यवस्था कर लेना चाहती थी। अधिनियम की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **अखिल भारतीय संघ**—1935 के अधिनियम द्वारा यह निर्णय किया गया कि केन्द्र में ब्रिटिश प्रान्तों और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ स्थापित किया जाए। यह संघ 11 ब्रिटिश प्रान्तों, 6 चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों और उन देशी रियासतों से मिलकर बनना था, जो स्वेच्छा से संघ में सम्मिलित हों। अधिनियम के अनुसार प्रान्तों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य, परन्तु देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। संघ में सम्मिलित होने की इच्छुक प्रत्येक देशी रियासत को एक **'प्रवेश प्रपत्र'** (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर करने होते थे। इस प्रपत्र में शर्तों का उल्लेख किया जाता था, जिन पर वह संघ में शामिल होना चाहती थी। संघ की इकाइयों को अपने आन्तरिक मामलों में स्वशासन प्राप्त था। मंच और उसकी इकाइयों के विवादों का निर्णय करने के लिए एक 'संघीय न्यायालय' की स्थापना की गयी। केन्द्र में एक संघीय कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी।

   संघ की स्थापना की पूर्व शर्त यह थी कि कम से कम समस्त देशी रियासतों की कुल जनसंख्या की आधी जनसंख्या वाली देशी रियासतें (संघीय व्यवस्थापिका के उच्च सदन में देशी रियासतों के लिए निर्धारित 104 स्थानों में से कम से कम 52 की पूर्ति करने वाली देशी रियासतें) संघ में सम्मिलित होने की इच्छा प्रगट करती। इस शर्त के पूरा हो जाने पर सम्राट द्वारा

संघ की स्थापना की घोषणा की जाती। परन्तु देशी रियासतें संघ में सम्मिलित न हुई और इस प्रकार प्रस्तावित संघ की स्थापना सम्बन्धी घोषणा-पत्र जारी करने का अवसर ही नहीं आया।

2. **प्रान्तीय स्वायत्तता**—1935 के अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण और सम्भवतया एकमात्र सन्तोषजनक व्यवस्था प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना थी। इस अधिनियम के द्वारा 1919 के अधिनियम की **'प्रान्तों में द्वैध शासन-व्यवस्था'** का अन्त कर उन्हें स्वतन्त्र और स्वशासित संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। सम्पूर्ण प्रान्तीय शासन लोकप्रिय मन्त्रियों के नियन्त्रण में कर दिया गया और गवर्नर से यह आशा की गयी कि उसके द्वारा मन्त्रियों की सलाह के आधार पर प्रशासन का संचालन किया जाएगा। उसे यह भी निर्देश दिया गया कि उसके द्वारा प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण प्रान्तीय व्यवस्थापिका के बहुमत दल के नेता की सहमति से किया जाना चाहिए। मन्त्रियों को प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया और यह निश्चय किया गया कि उसके द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर कार्य किया जाएगा। इस प्रकार 1935 का अधिनियम प्रान्तीय स्वायत्तता की दिशा में एक निश्चित सुधार था। लेकिन गवर्नरों के हाथ में विशेष उत्तरदायित्वों के रूप में कुछ महत्वपूर्ण शक्तियाँ बनी रहीं।
3. **केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना**—1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में जिस द्वैध शासन का अन्त किया गया, उसी द्वैध शासन की स्थापना केन्द्र में कर दी गयी। कुछ संघीय विषयों (सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, धार्मिक मामले तथा कबायली क्षेत्रों की व्यवस्था) को गवर्नर जनरल के हाथ में सुरक्षित रखा गया, ताकि वह अपने विवेक के अनुसार उनकी समुचित व्यवस्था कर सके। इन विभागों के प्रबन्ध के लिए वह अधिक से अधिक तीन परामर्शदाताओं की नियुक्ति कर सकता था। अन्य संघीय विषयों की व्यवस्था के लिए गवर्नर जनरल को सहायता तथा परामर्श देने हेतु एक मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गयी थी, जिसमें मन्त्रियों की संख्या 10 से अधिक नहीं हो सकती थी। संघीय मन्त्रिमण्डल को उक्त सुरक्षित विभागों के अतिरिक्त अन्य सभी संघीय विभागों की व्यवस्था करनी होती थी और इस मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी रहते हुए सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर कार्य करना था।
4. **संरक्षण और आरक्षण**—ब्रिटिश शासन का विचार था कि भारतीयों द्वारा उत्तरदायी शासन का संचालन करने में गम्भीर त्रुटियाँ की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, वे अनेक अल्पमत वर्गों के हितों की रक्षा के लिए भी पहले से ही समुचित व्यवस्था कर लेना चाहते थे। अत: अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को विभिन्न परिस्थितियों में केन्द्र एवं प्रान्त के उत्तरदायी शासन में हस्तक्षेप करने के व्यापक अधिकार प्रदान किए गए। गवर्नर जनरल और गवर्नरों के ये व्यापक अधिकार ही अधिनियम के संरक्षण एवं आरक्षण थे। **कुन्ते** और **सालेटोर** के शब्दों में, "ये संरक्षण जनतन्त्रात्मक भावना के विरोधी थे और इनकी व्यापकता के कारण वास्तविक स्वशासन की आशा नहीं की जा सकती थी।"
5. **विधानमण्डलों और मताधिकार का विस्तार**—अधिनियम के द्वारा संघीय व्यवस्थापिका के दो सदनों की व्यवस्था की गयी जिनमें से एक संघीय विधान सभा और दूसरी राज्य परिषद थी। केन्द्र में विधान सभा के सदस्यों की संख्या 375 और राज्य परिषद के सदस्यों की संख्या 260 निर्धारित की गयी। प्रान्तों में 11 में से 6 विधान मण्डलों को दो सदनों वाला बनाया गया। अधिनियम के द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया और प्रान्तों के लिए 10 प्रतिशत से कुछ अधिक जनता को मताधिकार प्रदान किया गया। संघीय व्यवस्थापिका के संगठन के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह थी कि अन्य संघीय व्यवस्था वाले देशों के विपरीत निम्न सदन के निर्माण हेतु अप्रत्यक्ष और उच्च सदन के निर्माण हेतु प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति को अपनाया गया था।
6. **शक्ति विभाजन**—यह घोषित किया गया था कि अधिनियम द्वारा भारत में एक संघीय शासन की स्थापना की जानी है अत: इस दृष्टि से केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्रों को स्पष्ट किया गया। इस सम्बन्ध में तीन विस्तृत सूचियों की व्यवस्था की गयी—संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची। संघीय सूची में अखिल भारतीय महत्व के 59 विषय सम्मिलित थे, जिनमें मुख्य थे जल, स्थल तथा वायु सेना, वैदेशिक विभाग, डाक, तार, मुद्रा तथा टंकण, संघीय लोक सेवाएँ, संचार, बीमा तथा बैंक आदि। प्रान्तीय सूची में प्रान्तीय और स्थानीय महत्व के 54 विषय थे, जिनमें शान्ति, न्याय, न्यायालय, प्रान्तीय लोक सेवाएँ, स्थानीय स्वशासन, अस्पताल तथा जनस्वास्थ्य, नहरें, कृषि, जंगल, शिक्षा और सड़क आदि मुख्य थे। समवर्ती सूची में 36 विषय थे जिसमें दीवानी तथा फौजदारी, विधि, विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, दत्तक ग्रहण, ट्रस्ट, कारखाने तथा श्रम कल्याण आदि मुख्य थे।

संघीय सूची के विषयों पर संघीय व्यवस्थापिका और प्रान्तीय सूची के विषयों पर प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त थी। समवर्ती सूची के विषयों पर संघीय तथा प्रान्तीय दोनों ही व्यवस्थापिकाएँ कानून का निर्माण कर सकती थीं, लेकिन पारस्परिक विरोध की स्थिति में संघीय व्यवस्थापिका का कानून ही मान्य होता। एक विशेष बात यह थी कि अवशेष शक्तियाँ संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को प्रदान न कर गवर्नर जनरल को प्रदान की गयी थी और उसे यह अधिकार था कि किसी भी सूची में उल्लेख न किए गए विषय पर संघीय या प्रान्तीय किसी भी व्यवस्थापिका को कानून बनाने का अधिकार दे सकता था।

7. **संघीय न्यायालय**—अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था भी की गयी, जिसका अधिकार क्षेत्र, प्रान्तों तथा रियासतों तक विस्तृत था। न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा दो अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी थी। न्यायालय को मौलिक तथा अपील सम्बन्धी अधिकार दिए गए। संघीय न्यायालय का कर्तव्य था कि वह संविधान की व्याख्या करे तथा इस बात का ध्यान रखे कि प्रान्तीय तथा संघीय सरकारें एक-दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण न करें, तथापि इस सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति लन्दन स्थित प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थी।
8. **ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता**—अधिनियम के द्वारा भारतीय शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। अधिनियम में किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने का अधिकार प्रान्तीय विधानमण्डलों और संघीय व्यवस्थापिका को नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में शक्ति ब्रिटिश संसद के पास ही बनी रही। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिकाएँ कुछ विशेष सीमाओं में रहते हुए अधिनियम में संशोधन की सिफारिश कर सकती थीं। इस प्रकार भारतीय भाग्य के निर्णय की अन्तिम सत्ता ब्रिटिश संसद के पास बनी रही।
9. **प्रस्तावना का अभाव**—इस अधिनियम की अपनी कोई प्रस्तावना नहीं थी जिससे कि अधिनियम के निर्दिष्ट ध्येय या उद्देश्य का ज्ञान हो सकता। ब्रिटिश संसद के कुछ सदस्यों ने जब इस आधार पर अधिनियम की आलोचना की तो ब्रिटिश सरकार ने 1919 के भारतीय शासन अधिनियम की प्रस्तावना को इसमें भी जोड़ने का निश्चय किया। यह इसलिए किया गया था ताकि भारतीयों को यह पता रहे कि ब्रिटिश सरकार का अन्तिम लक्ष्य भारत में 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की स्थापना करना है।
10. **भारत परिषद का अन्त**—भारत परिषद के भारत विरोधी दृष्टिकोण के कारण भारतीय जनता द्वारा इस परिषद के अन्त की माँग की जा रही थी। अत: 1935 के अधिनियम द्वारा इस परिषद का अन्त कर दिया गया। भारत-मन्त्री के लिए कुछ परामर्शदाता नियुक्त किए गए, जिनसे परामर्श लेना अथवा न लेना उसकी इच्छा पर निर्भर करता था लेकिन सेवाओं के सम्बन्ध में भारत-मन्त्री के लिए इन परामर्शदाताओं का परामर्श मानना आवश्यक था। इसके साथ ही अधिनियम द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में किए गए परिवर्तनों के अनुरूप भारतीय शासन पर भारत-मन्त्री की शक्ति में भी कुछ कमी हो गयी।
11. **साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का विस्तार**—यद्यपि यह बात नितान्त स्पष्ट हो गयी थी कि साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति भारत के हित में नहीं है लेकिन अंग्रेजों ने भारतीयों में फूट डालने की अपनी नीति के अनुसार संघीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में विभिन्न सम्प्रदायों और विशेष हितों को प्रतिनिधित्व देने के लिए इस पद्धति को न केवल जारी रखा वरन् आंग्ल भारतीयों, भारतीय ईसाइयों, यूरोपियनों और हरिजनों के लिए भी इस पद्धति का विस्तार कर दिया। संघीय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों में मुसलमानों को एक-तिहाई स्थान प्रदान किए गए।
12. **बर्मा, बरार और अदन**—इस अधिनियम के द्वारा बर्मा को भारत से पृथक कर दिया गया और अदन को भारत सरकार के नियन्त्रण से मुक्त करके 1 अप्रैल, 1937 को इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक कार्यालय के अधीन कर दिया गया। यद्यपि बरार के ऊपर निजाम हैदराबाद की नाममात्र की सत्ता स्वीकार कर ली गयी, परन्तु उसको शासन की दृष्टि से मध्य प्रान्त का अंग बना दिया गया।

प्र.4. 'भारतीय स्वतन्त्रता आधनियम, 1947' की प्रमुख बातें सूत्र रूप में बताइए।

उत्तर

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947
(India Independence Act, 1947)

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में 4 जुलाई, 1947 को **'भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम'** प्रस्तावित किया गया, जो शीघ्र ही 18 जुलाई, 1947 को स्वीकृत हो गया। **भारत मन्त्री** ने अधिनियम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था, **"हमारे देश के विधान निर्माण**

के इतिहास में यह अधिनियम अद्वितीय है। इससे पूर्व कभी भी संसार की आबादी के इतने बड़े भाग ने केवल एक विधान द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की।'' इस अधिनियम में कुल 20 धाराएँ थीं, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. **दो अधिराज्यों की स्थापना**—इस अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन कर पाकिस्तान की स्थापना कर दी गयी। यह निश्चय किया गया कि 15 अगस्त, 1947 को भारत और पाकिस्तान नामक दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे और उनको ब्रिटिश सरकार सत्ता सौंप देगी।
2. **संविधान सभाओं को सत्ता सौंपना**—यह व्यवस्था की गयी कि ब्रिटिश सरकार दोनों अधिराज्यों की संविधान सभाओं को सत्ता का उत्तरदायित्व सौंप देगी। उनको अपनी इच्छानुसार संविधान का निर्माण करने की स्वतन्त्रता होगी। इस प्रकार संविधान सभाएँ सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न होंगी।
3. **दोनों के लिए अलग-अलग गवर्नर जनरल**—भारत और पाकिस्तान दोनों अधि-राज्यों में एक-एक गवर्नर जनरल होगा, जिनकी नियुक्ति उनके मन्त्रिमण्डल की सलाह से की जायेगी। गवर्नर जनरल और प्रान्तों के गवर्नर भविष्य में केवल वैधानिक शासक होंगे।
4. **संविधान सभा का विधानमण्डल के रूप में कार्य करना**—जिस समय तक संविधान सभाएँ संविधान का निर्माण नहीं कर लेती हैं, उस समय तक वे विधानमण्डल के रूप में भी कार्य करती रहेंगी और उनकी विधायिनी शक्तियों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होगा। 15 अगस्त, 1947 के उपरान्त ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कोई अधिनियम इन अधिराज्यों पर उनके विधानमण्डलों की स्वीकृति के बिना लागू नहीं होगा।
5. **प्रान्तीय विधानमण्डल**—जिस समय तक नवीन विधान के अनुसार प्रान्तों में निर्वाचन नहीं होते हैं, उस समय तक प्रान्तों में इस समय के विधानमण्डल ही कार्य करते रहेंगे।
6. **भारत मन्त्री के पद का अन्त**—भारत मन्त्री का पद समाप्त कर दिया जायगा, क्योंकि 15 अगस्त, 1947 के उपरान्त ब्रिटिश संसद का भारत और पाकिस्तान पर कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा।
7. **1935 के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा शासन**—जिस समय तक वर्तमान संविधान सभा द्वारा नया संविधान बनाकर तैयार नहीं किया जाता है, उस समय तक 1935 के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा ही शासन होगा, पर परिवर्तित परिस्थितियों के कारण उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये। अधिनियम में ऐसे परिवर्तन किये गये कि अन्तरिम काल में इन दोनों राज्यों का शासन लोकतन्त्रीय पद्धति के आधार पर किया जा सके।
8. **देशी रियासतों पर 'सर्वोपरिता' का अन्त**—जहाँ तक देशी रियासतों का प्रश्न है, उन पर ब्रिटेन की सर्वोपरिता का अन्त कर दिया गया और उनको किसी भी अधिराज्य में सम्मिलित होने व अपने भावी सम्बन्धों का निश्चय करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी।

   1947 का भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम वास्तव में अंग्रेजों की एक भव्य और गौरवपूर्ण विदाई थी। **डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था, ''भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व का काल आज समाप्त होता है और अब ब्रिटेन के साथ हमारा अपना सम्बन्ध समानता, पारस्परिक सद्भावना और पारस्परिक लाभ के आधार पर रहेगा।''**

   15 अगस्त, 1947 को **'भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम'** के अनुसार भारतीय महाद्वीप पर ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ, भारत व पाकिस्तान—दो स्वतन्त्र अधिराज्य अस्तित्व में आये। कांग्रेस चाहती थी कि दोनों के गवर्नर जनरल एक ही रहें, ताकि संक्रमण काल (Transitional period) की समाप्ति शान्तिमय ढंग से हो सके लेकिन पाकिस्तान द्वारा इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार न किये जाने के कारण भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्टबेटन तथा पाकिस्तान के गवर्नर जनरल जिन्ना बने।

प्र.5. संविधान की अवधारणा एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

संविधान की अवधारणा एवं परिभाषाएँ
(Concept and Definitions of Constitution)

संविधान एक ऐसा विधिक दस्तावेज होता है जिसके अनुसार किसी भी देश की शासन व्यवस्था चलती है। दूसरे शब्दों में, संविधान उन आधारभूत नियमों और कानूनों का संग्रह है जिनके आधार पर किसी देश की शासन व्यवस्था चलाई जाती है। प्रत्येक देश अपने संविधान को आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखता है। यह एक मौलिक कानून है जिसके द्वारा सरकार के प्रमुख अंगों एवं कार्यक्षेत्र को सुनिश्चित किया जाता है। यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों को भी निश्चित करता है। इस प्रकार संविधान देश के

सभी कानूनों से श्रेष्ठ है। देश के सभी कानूनों का आधार संविधान ही होता है। साधारण शब्दों में, संविधान का तात्पर्य उस दस्तावेज से है जिसके अन्तर्गत विधिक उपबन्ध निहित रहते हैं। संविधान के अन्तर्गत वे नियम भी होते हैं जिनके द्वारा सरकार के समस्त अंग सुचारु रूप से कार्य करते हैं।

संविधान की बनावट व ढाँचे के लिए अंग्रेजी में 'कॉन्स्टीट्यूशन' (Constitution) शब्द का प्रयोग किया जाता है। संविधान को सरकार की शक्ति एवं सत्ता का स्रोत कहा जाता है। संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों के विषय में बताया गया है। ऐसा करने का उद्देश्य है कि सरकार के विभिन्न अंगों में कोई मतभेद अथवा भ्रान्ति उत्पन्न न हो। संविधान के दो मुख्य उद्देश्य हैं—सरकार के विभिन्न अंगों के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या करना तथा सरकार एवं नागरिकों के सम्बन्धों का वर्णन करना। संविधान के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने कुछ परिभाषाएँ दी हैं जो निम्नलिखित है—

फाइनर के अनुसार, "संविधान मूलभूत राजनीतिक संस्थाओं की एक व्यवस्था है।"

प्रो. डायसी के अनुसार, "संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिनका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।"

लीकॉक के अनुसार, "किसी राज्य के ढाँचे को उसका संविधान कहते हैं।" **ब्राइस के अनुसार,** "संविधान ऐसे निश्चित नियमों का संग्रह होता है, जिनसे सरकार की कार्यविधि प्रतिपादित होती है और जिनके द्वारा उनका संचालन होता है।"

भारतीय संविधान की विशेषताएँ
(Features of Indian Constitution)

भारत के संविधान के बारे में कहा जाता है कि 'हम भारत के लोगों ने भारत के लोगों के लिए बनाया' है। इन विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. **योजनशीलताएँ**—संविधान निर्मातागण अपने देश की आवश्यकताओं, लोगों की आकांक्षाओं तथा समकालीन परिस्थितियों से अवगत थे। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया तो सुप्रीम कोर्ट न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था अमेरिका से ली गई। कनाडा के नमूने का संघ शासन स्थापित किया गया तो निदेशक सिद्धान्तों का विचार आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया।
2. **निर्मित व लिखित संविधान**—संविधान सभा ने इसे बनाया है, जिसमें 389 सदस्य थे, किन्तु देश के विभाजन के बाद उनकी संख्या घट गई थी। इसमें लगभग तीन वर्ष का समय लगा। इसके अतिरिक्त यह विश्व का सबसे अधिक लिखित संविधान है। प्रस्तावना के बाद इसमें 395 अनुच्छेद हैं, जो 22 भागों में समाहित हैं। अन्त में अनुसूचियाँ हैं, जिनकी संख्या पहले आठ थी किन्तु अब बारह है।
3. **प्रभुतासम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणतन्त्र**—इसने भारत को प्रभुतासम्पन्न राज्य बना दिया। अब भारत किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। इसने लोकतान्त्रिक समाजवाद को मान्यता दी है। भारत में अनेक धर्म व मत हैं, अत: सभी को समान महत्त्व दिया गया है।

   भारत धर्मनिरपेक्ष है, अर्थात् यहाँ धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं हो सकता। देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था है। सत्ता जनता के पास है, जिसका प्रयोग उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में है। शासन सीमित व उत्तरदायी है। राष्ट्रपति का पद निर्वाचित है, वह राज्य का अध्यक्ष है। अत: भारत गणतन्त्र है।
4. **संसदीय शासन प्रणाली**—भारत में संसदीय शासन प्रणाली है। इसलिए राष्ट्रपति को राज्याध्यक्ष बनाया गया है, जिसकी सत्ता नाममात्र की है। मन्त्रिपरिषद् तभी तक पदासीन रह सकता है, जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त है। ऐसी व्यवस्था राज्यों में भी है, जहाँ गवर्नर को अध्यक्ष बनाया गया है, किन्तु वास्तविक सत्ता मन्त्रिपरिषद् के पास है, जो सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। 1976 के 42वें संशोधन ने राष्ट्रपति को अपने मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्यकारी बना दिया।
5. **एकीकृत न्यायपालिका**—संघीय व्यवस्था में केन्द्र व प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है, ताकि दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में काम कर सकें। प्रान्तों की अपनी न्यायपालिका होती है, लेकिन भारत में सर्वोच्च न्यायालय को शिखर पर रखा गया है, राज्यों के उच्च न्यायालय उसके नीचे हैं।

संसद अपने कानून से उच्च न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र का निर्धारण कर सकती है तथा सर्वोच्च न्यायालय किसी उच्च न्यायालय के निर्णय को पलट सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश देश की सभी अदालतों पर लागू होते हैं।

6. **न्यायिक समीक्षा**—सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों को यह शक्ति दी गई है कि वे राज्य के किसी चुनौती, दिए गए कानून या आदेश की समीक्षा करें तथा उसे असंवैधानिक होने की स्थिति में रद्द कर दें। चूँकि उच्च न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, अत: सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम है।
7. **मौलिक अधिकार व कर्त्तव्य**—मौलिक अधिकार छह प्रकार के हैं; जैसे—समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म का अधिकार, सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

   1978 में, 44वाँ संविधान संशोधन हुआ जिसने सम्पत्ति के अधिकार को इस भाग में से निकाल दिया। 1976 के 42वें संशोधन ने नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य वाला भाग जोड़ा है, अत: उनका कर्त्तव्य है कि राष्ट्रीय झण्डे व राष्ट्रगान का सम्मान करें, संविधान का पालन करें, मातृभूमि की रक्षा करें आदि।
8. **सहयोगी संघवाद**—भारत में संघीय व्यवस्था है, केन्द्र व राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। यदि कोई आपत्ति पैदा होती हो, तो सुप्रीम कोर्ट की व्याख्यानुसार उसका निराकरण किया जा सकता है। यदि केन्द्र व राज्यों के बीच कोई कानूनी विवाद पैदा होता है, तो उसे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा निपटाया जा सकता है। इसलिए कुछ विशेष व्यवस्थाएँ की गई हैं; जैसे—क्षेत्रीय परिषद्, अन्तर्राज्य परिषद्, वित्त आयोग इत्यादि।
9. **राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त**—कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं—राज्य सभी को रोजगार के पर्याप्त अवसर जुटायेगा, राष्ट्र के संसाधनों का सभी के हित में उपयोग किया जायेगा; समान कार्य के बदले में समान वेतन मिलेगा; काम की मानवीय दशाएँ स्थापित की जाएँगी; सभी को काम व शिक्षा का अधिकार मिलेगा; सारे देश में समान नागरिक संहिता लागू होगी; लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जाएगा; अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन-जातियों का कल्याण किया जाएगा; गौवध प्रतिबन्धित होगा; न्यायपालिका व कार्यपालिका का पृथक्करण होगा तथा भारत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की नीति अपनाएगा।
10. **लचीलेपन व कठोरता का विचित्र मिश्रण**—यदि संविधान की संशोधन प्रक्रिया बहुत सरल होती है तो संविधान लचीला होता है। संसद अपने साधारण बहुमत से बिल पास करके संविधान संशोधन अधिनियम बनाती है, इसलिए साधारण विधि तथा संवैधानिक विधि में अन्तर नहीं होता।
11. **इकहरी नागरिकता**—जहाँ संघ-शासन होता है, वहाँ लोगों को सारे देश की एवं अपने प्रान्त की नागरिकता अर्थात् दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, लेकिन भारत में सभी को इकहरी नागरिकता प्राप्त है। वह भारत का नागरिक है, किसी प्रान्त या प्रदेश का नहीं। संसद अपने कानून द्वारा नागरिकता की प्राप्ति या हानि की शर्तें निर्धारित कर सकती है।
12. **संकटकालीन धाराएँ**—यदि देश या उसके किसी भाग पर संकट आ जाए या उसके आने की सम्भावना हो तो राष्ट्रपति अपनी संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। यदि युद्ध या बाहरी आक्रमण या किसी जगह सशस्त्र विद्रोह हो तो अनुच्छेद 352 के तहत संकटकाल घोषित किया जा सकता है।

प्र.6. संविधान सभा के गठन एवं इसके चरण और कार्य-प्रणाली की विवेचना कीजिए।

उत्तर

संविधान सभा का गठन
(Formation of Constituent Assembly)

कैबिनेट मिशन योजना (1946 ई०) के अनुसार भारत का संविधान निर्माण करने के लिए संविधान सभा की व्यवस्था की गई थी, जिसमें संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 389 निश्चित की गई। इनमें 93 सदस्य देशी रियासतों के, 4 सदस्य चीफ कमिश्नर-प्रांतों के तथा शेष 292 सदस्य भारतीय प्रांतों के थे। अल्पसंख्यकों के लिए रियासतों के सिद्धांत को समाप्त कर दिया गया। मतदाताओं को केवल तीन प्रकार से बाँटने का निश्चय हुआ-सामान्य, मुसलमान तथा सिख (केवल पंजाब में)। समस्त प्रांतों को तीन वर्गों में विभक्त कर दिया गया। प्रत्येक वर्ग के प्रांतों के नाम तथा उनकी सदस्य-संख्या को दी गई सारणियों में प्रदर्शित किया गया है—

वर्ग 'क' के राज्य

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	कुल योग
मद्रास (चेन्नई)	45	4	49
मुम्बई (मुम्बई)	19	2	21
संयुक्त प्रांत	47	8	55
बिहार	31	5	36
सेंट्रल प्रोविन्स तथा बरार	16	1	17
उड़ीसा (ओडिशा)	9	0	9
कुल योग	**167**	**20**	**187**

वर्ग 'ख' के राज्य

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	सिख	कुल योग
पंजाब	8	16	4	28
पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत	0	3	0	3
सिंध	1	3	0	4
कुल योग	**9**	**22**	**4**	**35**

वर्ग 'ग' के राज्य

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	कुल योग
बंगाल	27	33	60
असम	7	3	10
कुल योग	**34**	**36**	**70**

3 जून, 1947 ई० की योजना के अनुसार देश के विभाजन के पश्चात् भारतीय संविधान सभा की सदस्य संख्या 324 रह गई, जिसमें 235 स्थान प्रांतों के लिए एवं 89 देशी रियासतों के लिए थे।

संविधान सभा के गठन के चरण
(Stages of Formation of Indian Constituent Assembly)

संविधान सभा का गठन दो चरणों में पूर्ण हुआ जो इस प्रकार है—

1. **प्रथम चरण**—प्रथम चरण में जुलाई 1946 में प्रान्तों के निर्धारित 296 सदस्यों के लिए चुनाव हुए। इसमें कांग्रेस को 205 तथा मुस्लिम लीग को 73 स्थान प्राप्त हुए। 20 नवम्बर 1946 को वायसराय ने निर्वाचित प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया कि वे 9 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक में उपस्थित हों। मुस्लिम लीग ने पहले तो मिशन योजना को स्वीकारा लेकिन इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने 6 दिसम्बर 1946 को एक वक्तव्य जारी किया जिसके सुदूरव्यापी परिणाम निकले। मुस्लिम लीग ने अलग पाकिस्तान के लिए एक अलग संविधान सभा की माँग करते हुए संविधान सभा का बहिष्कार किया। 3 जून 1947 को माउन्टबेटन योजना के फलस्वरूप मुस्लिमबहुल क्षेत्र भारत से निकल गए। इसके कारण जिस योजना के आधार पर संविधान सभा अपनी प्रथम बैठक के समय से काम करती रही। उसके प्रक्रियागत और सारभूत दोनों भागों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए।
2. **द्वितीय चरण**—द्वितीय चरण में माउन्टबेटन योजना के अनुसार देश का बँटवारा हो जाने के बाद भारतीय संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 324 रह गयी जिसमें 235 स्थान प्रान्तों के लिए और 89 देशी रियासतों के लिए थे। पंजाब और बंगाल के जो भाग भारत में रह गए थे उनके लिए नए सिरे से निर्वाचन हुए तथा उनके निर्वाचित सदस्यों ने 14 जुलाई

TOUCH 'n' PASS

1947 को संविधान सभा में स्थान ग्रहण किया। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के चुनाव की पद्धति के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि रियासतें कोशिश करेंगी कि निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या कुल सदस्य संख्या का 50 प्रतिशत हो जाए। देशी रियासतों के लिए संविधान सभा में निर्धारित स्थानों का स्वतन्त्रता से पहले और स्वतन्त्रता के बाद जनसंख्या के अनुपात में कई बार बँटवारा हुआ।

26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने अपना संविधान निर्माण का महान कार्य पूरा किया। हैदराबाद के 16 प्रतिनिधि इसमें अन्त तक शामिल नहीं हुए। इस प्रकार प्रान्तों के लिए प्रति 235 प्रतिनिधियों के अलावा देशी रियासतों के लिए केवल 73 प्रतिनिधि ही संविधान सभा में वस्तुत: सम्मिलित हुए। संविधान के अन्तिम मूल प्रारूप पर इन्हीं 308 सदस्यों ने हस्ताक्षर किए थे।

संविधान सभा की कार्य-प्रणाली
(Functioning of the Constituent Assembly)

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 ई० को **डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा** के अस्थायी सभापतित्व में हुई। 11 दिसंबर, 1946 ई० को **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद** को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया, जो अंत तक अध्यक्ष रहे। 13 दिसंबर, 1946 ई० को पं० जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा के **'उद्देश्य संबंधी प्रस्ताव'** (Objectives Resolutions) प्रस्तुत किए, जिन्हें 22 जनवरी, 1947 ई० को ही संविधान सभा ने पारित कर दिया। प्रस्ताव में संविधान सभा ने निश्चय किया कि—

1. हम भारत को स्वतंत्र और संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य बनाने की घोषणा करते हैं।
2. भारतीय गणतंत्र प्रांतों और रियासतों दोनों का संघ होगा।
3. भारतीय संघ और उनके राज्यों में समस्त शक्ति का मूल स्रोत जनता ही होगी।
4. भारत के सभी निवासियों को
   न्याय—सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में;
   स्वतंत्रता—विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की;
   समानता—अवसर व प्रतिष्ठा की अभिप्राप्ति करना तथा इनकी प्रत्याभूति (गारंटी) सुनिश्चित करना होगा।
5. संविधान में अल्पसंख्यकों, पिछड़ी जातियों व कबायली जातियों के लिए पर्याप्त संरक्षण होगा।
6. भारत के राज्य-क्षेत्र की अखंडता को स्थिर रखा जाएगा, जिससे कि यह प्राचीन देश विश्व में अपना उचित और सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर सके और स्वेच्छा से योग दे सके।

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व, संविधान सभा की दूसरी बैठक 22 जनवरी से 25 जनवरी, 1947 ई० के मध्य आहूत की गई थी, जिससे संविधान निर्माण के लिए अनेक उप-समितियाँ बनाई गई थीं; जैसे—संघीय संविधान समिति, संघीय शक्तियाँ समिति, प्रांतीय संविधान समिति, अल्पसंख्यक व मौलिक अधिकार परामर्श समिति इत्यादि। इन सभी समितियों का कार्य संविधान के विभिन्न पहलुओं पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना था। इन बैठकों की रिपोर्टों पर संयुक्त विचार-विमर्श हुआ और इनमें निहित निश्चयों को संवैधानिक रूप देने के उद्देश्य से 29 अगस्त, 1947 ई० को एक प्रारूप समिति (Drafting Committee) भारत सरकार के तत्कालीन कानूनमंत्री डॉ० बी०आर० अम्बेडकर की अध्यक्षता में निर्मित हुई। प्रारूप समिति ने अपना कार्य 30 दिसंबर, 1947 ई० से आरंभ किया। संविधान का पहला प्रारूप **बेनेगल नरसिंह राव** ने बनाया। इसके बाद बी०एन० राव ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। प्रारूप समिति की 141 बैठकें चलीं। प्रथम प्रारूप (Draft) फरवरी 1948 ई० में प्रकाशित हुआ। 26 अक्टूबर, 1948 ई० को प्रारूप का संशोधित रूप संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया। प्रारूप पर 4 नवंबर, 1948 ई० को संविधान सभा में विचार-विमर्श शुरू किया गया। संविधान सभा में एक वर्ष तक इस प्रारूप की प्रत्येक धारा पर व्यापक वाद-विवाद हुआ। 26 नवंबर, 1949 ई० को स्वतंत्र भारत का संविधान उचित संशोधनों के साथ, अंतिम रूप से पारित हो गया, और उसी दिन उस पर संविधान सभा के अध्यक्ष के हस्ताक्षर भी हो गए। भारत का नया संविधान 26 जनवरी, 1950 ई० को लागू किया गया। 26 जनवरी से इसे इसलिए लागू किया गया, क्योंकि सर्वप्रथम 26 जनवरी, 1930 ई० को भारतवासियों ने कांग्रेस के नेतृत्व में भारत को पूर्ण स्वतंत्र कराने की प्रतिज्ञा की थी जिसे हर वर्ष दोहराया जाता था। संविधान सभा के कुल 11 अधिवेशन हुए। संविधान के प्रारूप पर 114 दिनों तक विचार किया गया। सदस्यों ने 7,634 संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किए, जिनमें 2,474 संशोधनों पर विचार किया गया। संविधान सभा को अपना कार्य पूरा करने में 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन लगे तथा संविधान निर्माण पर लगभग 64 लाख रुपये की धनराशि व्यय हुई।

प्र.7. नागरिकता का अर्थ स्पष्ट कीजिए। भारतीय संविधान में नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेदों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

नागरिकता का अर्थ
(Meaning of Citizenship)

नागरिकता मनुष्य की उस स्थिति को कहते हैं जिसमें मनुष्य को नागरिक स्तर की प्राप्ति होती हैं। हमारे देश में दो तरह के लोग हैं—नागरिक एवं विदेशी। नागरिकता के द्वारा नागरिक को राज्य प्रदत्त कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का बोध होता है। इन्हें सभी नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर, विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते हैं। इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त होते हैं। ये दो तरह के होते हैं—विदेशी मित्र एवं विदेशी शत्रु। विदेशी मित्र से तात्पर्य है, जिनके साथ भारत के सकारात्मक सम्बन्ध हों। यहाँ विदेशी शत्रु से तात्पर्य है जिनके साथ भारत का युद्ध चल रहा हो। उन्हें कम अधिकार प्राप्त होते हैं और वे गिरफ्तारी और नजरबंदी के विरुद्ध सुरक्षित नहीं होते हैं। नागरिकता वह श्रेणी है जिसमें सामाजिक अनुबंध के सिद्धान्तों के तहत अधिकार एवं उत्तरदायित्त्व सम्मिलित हैं। लोकतंत्रात्मक राज्य व्यवस्था के मूल सिद्धांत को नागरिकता कानूनी रूप प्रदान करती है। सामान्यतः 'नागरिक' शब्द से तात्पर्य किसी देश में स्थित वहाँ के उस व्यक्ति से होता है, जिसे आर्थिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक अधिकार स्वतंत्र रूप से प्राप्त होते हैं। अन्य शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि किसी देश के संविधान द्वारा नागरिकता उस देश के निवासियों को दिया गया वह, सामाजिक एवं राजनैतिक विशेषाधिकार होता है जो उस देश के निवासियों के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है।

गैटिल के अनुसार, "नागरिकता किसी व्यक्ति की उस स्थिति को कहा जाता है जिसके आधार पर वह अपने राज्य के राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों का उपयोग कर सके और कर्तव्यों का पालन करने के लिए तत्पर रहे।"

भारतीय नागरिकता को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

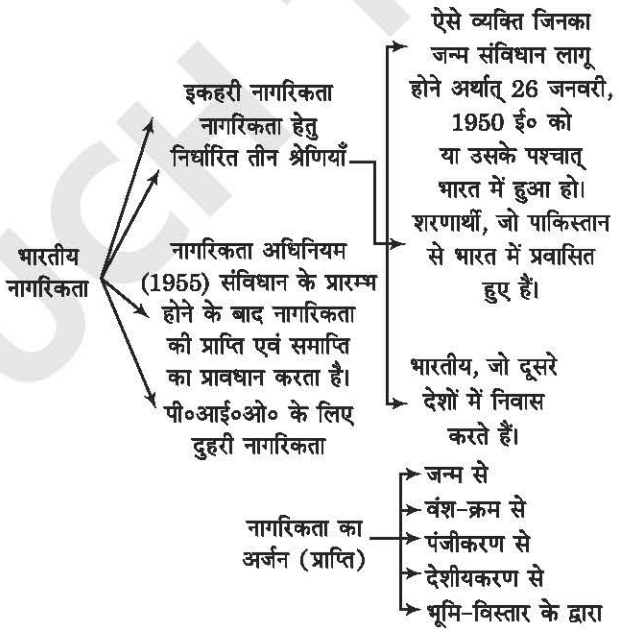

भारतीय संविधान में नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेद
(Citizenship Articles in the Indian Constitution)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 5 से 11 तक में नागरिकता सम्बन्धी जानकारी दी गई है। भारतीय संविधान में नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेदों का विवरण कुछ इस प्रकार है—

TOUCH 'n' PASS

1. **अनुच्छेद 5**—वह प्रत्येक व्यक्ति जो संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि पर भारतीय राज्य क्षेत्र का निवासी था, जो भारत में जन्म लिया हो अथवा माता-पिता में से कोई भारत में पैदा हुआ या संविधान के प्रारम्भ में पाँच वर्ष पहले से भारत का निवासी रहा हो, वह भारत का नागरिक माना जाएगा।
2. **अनुच्छेद 6**—पाकिस्तान से भारत आने वाले व्यक्ति की भारतीय नागरिकता के सम्बन्ध में प्रावधान बताया गया है।
3. **अनुच्छेद 7**—नागरिकता के अधिकार का प्रावधान भारत से पाकिस्तान चले गए व्यक्तियों के लिए किया गया है। अनुच्छेद 7 में उन व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकारों के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान किए गए हैं जो 1 मार्च, 1947 के बाद पाकिस्तान प्रवास कर गये थे, परन्तु यदि वे भारत वापस आए थे।
4. **अनुच्छेद 8**—विदेशों में रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के लिए संविधान के इस अनुच्छेद में नागरिकता के अधिकार का उपबंध हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए अनुच्छेद 8 में प्रावधान किया गया है कि कोई व्यक्ति या उसके माता-पिता या पितामह में से किसी ने भारत शासन अधिनियम, 1935 के अनुसार भारत में जन्म लिया हो और जो भारत के बाहर किसी देश में सामान्य रूप से निवास कर रहा हो, उसे भारत का नागरिक समझा जाएगा, परन्तु शर्त यह है कि उसे नागरिकता प्राप्ति हेतु सम्बद्ध देश में भारत के राजनयिक या काउंसिल प्रतिनिधि द्वारा भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर लिया गया हो।
5. **अनुच्छेद 9**—यदि स्वेच्छा से किसी व्यक्ति ने विदेशी नागरिकता स्वीकार कर ली हो तो वह नागरिकता का अधिकार होते हुए भी किसी उपबंध के अनुसार भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा। यह प्रावधान मात्र उन लोगों से सम्बन्धित है, जिन्होंने संविधान प्रारम्भ होने के पूर्व स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली थी।
6. **अनुच्छेद 10**—नागरिकता के अधिकारों के बने रहने का प्रावधान है। इस अनुच्छेद में संसदीय विधान के अतिरिक्त किसी अन्य विधि से किसी नागरिक की नागरिकता का अधिकार नहीं छीना जा सकता है।
7. **अनुच्छेद 11**—देश की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इस अनुच्छेद के उपबंध के तहत संसद को परिस्थिति के अनुकूल कानून बनाने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। भारत की नागरिकता के अर्जन तथा निरसन के सम्बन्ध में तथा उससे सम्बन्धित सभी विषयों के सम्बन्ध में यह अनुच्छेद संसद को विधि बनाने की शक्ति प्रदान करता है। संसद के नागरिकता के अर्जन एवं निरसन की व्यवस्था की गई है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निदेशक तत्त्व

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मौलिक अधिकार का अर्थ बताइए।

उत्तर मानव जीवन के लिए अति आवश्यक या मौलिक समझे जाने वाले अधिकारों को मौलिक या मूल अधिकार कहते हैं।

प्र.2. मौलिक अधिकार की प्रमुख दो विशेषताएँ बताइए।

उत्तर 1. सर्वाधिक विस्तृत एवं व्यापक अधिकार पत्र;
2. राष्ट्रीय आन्दोलन की भावना के अनुकूल।

प्र.3. निवारक निरोध की चर्चा संविधान के किस अनुच्छेद में की गई है?

उत्तर अनुच्छेद 22 के खण्ड 4 में निवारक निरोध की चर्चा की गई है।

प्र.4. संविधान के किस अनुच्छेद में भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने के अधिकार का प्रावधान किया गया है?

उत्तर संविधान के अनुच्छेद 29 के आधार पर, "नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है। धर्म, वंश, जाति तथा भाषा के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सरकारी या सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है।"

प्र.5. संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षा का अधिकार जोड़ा गया है?

उत्तर शिक्षा का अधिकार 86वें संविधान संशोधन (वर्ष 2002) द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। अनुच्छेद 21(क) में कहा गया है कि राज्य कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

प्र.6. परमादेश से क्या तात्पर्य है?

उत्तर परमादेश का लेख उस समय जारी किया जाता है जब कोई पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं करता। इस प्रकार के आज्ञापत्र के आधार पर पदाधिकारी को उसके कर्त्तव्य का पालन करने का आदेश जारी किया जाता है।

प्र.7. मौलिक अधिकारों के निलंबन से क्या तात्पर्य है?

उत्तर कुछ विशेष परिस्थितियों में मौलिक अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है। ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

1. सार्वजनिक शान्ति स्थापित करने वाली सेवाओं के तहत नागरिकों के मौलिक अधिकरों को देश के हित में संसद द्वारा सीमित या समाप्त किया जा सकता है।
2. संविधान संशोधन द्वारा मौलिक अधिकारों को निलंबित या स्थगित किया जा सकता है; जैसे—44 वें संशोधन द्वारा सम्पत्ति का अधिकार समाप्त किया गया।
3. संकटकाल की घोषणा होने पर मौलिक अधिकारों को स्थगित या सीमित किया जा सकता है।

प्र.8. भारतीय नागरिकों के दो मूल कर्त्तव्य बताइए।

उत्तर 1. संविधान का पालन तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं और राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान।
2. भारत के लोगों में समरसता और भ्रातृत्व की भावना का विकास।

प्र.9. संविधान की किन धाराओं में नीति निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है?

उत्तर संविधान की धारा 38 से 51 तक में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है।

TOUCH 'n PASS

प्र.10. राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर 1. कानून बनाने में मार्गदर्शक के रूप में।
2. आधारभूत सिद्धान्त।

प्र.11. नीति निदेशक तत्त्वों के कोई दो वर्गीकरण बताइए।

उत्तर 1. कृषि, कुटीर उद्योग और ग्राम पंचायत सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्व।
2. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्व।

प्र.12. संविधान के 42वें संशोधन में जोड़े गए कुछ अन्य नीति निदेशक तत्त्व बताइए।

उत्तर 1. बच्चों को स्वतन्त्रता तथा सम्मान के साथ जीवनयापन का समान अवसर प्राप्त हो।
2. निर्धनों को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना।
3. उद्योगों के प्रबन्धन आदि में श्रमिकों के सुझाव को महत्त्व दिया जाए तथा प्रबन्धन में उनकी भागीदारी हो।

प्र.13. नीति निदेशक तत्त्वों के दो महत्त्व लिखिए।

उत्तर 1. सरकार के मार्गदर्शक।
2. नैतिक आदर्शों के रूप में महत्त्व।

प्र.14. "ये तत्त्व उद्देश्यों एवं आकांक्षाओं की घोषणा मात्र हैं।" ये किस आलोचक ने कहा है?

उत्तर प्रो० के०सी० ह्वीयर ने।

प्र.15. "नीति निदेशक तत्त्वों को क्रियान्वित करने से भारत पृथ्वी पर स्वर्ग बन जाएगा।" यह कथन किसने कहा है?

उत्तर डॉ० एम०सी० छागला ने।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. समानता के अधिकार पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

उत्तर समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)—समानता का अधिकार प्रजातन्त्र का आधार-स्तम्भ है, अतः भारतीय संविधान द्वारा सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता, राज्य के अधीन नौकरियों का समान अवसर और सामाजिक समानता प्रदान की गई है एवं समानता की स्थापना के लिए उपाधियों का निषेध किया गया है।

कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14)—अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इस **अनुच्छेद** के प्रथम भाग के शब्द **'कानून के समक्ष समानता'** ब्रिटिश सामान्य विधि की देन है और इसके द्वारा राज्य पर बन्धन लगाया गया है कि वह भी व्यक्तियों के लिए एक-सा कानून बनाएगा तथा उन्हें एकसमान लागू करेगा। **सर आइवर जेनिंग्ज** के अनुसार इसका अर्थ यह है कि **'समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों के साथ कानून का व्यवहार एक-सा होना चाहिए।' 'कानून का समान संरक्षण'**, यह वाक्य अमरीकी संविधान से लिया गया है और इसका तात्पर्य यह है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से न्यायालय की शरण ले सकता है।

कानून के समक्ष समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि औचित्यपूर्ण आधार पर और कानून द्वारा मान्य किसी भेदभाव की भी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। यदि कानून कर लगाने के सम्बन्ध में धनी और गरीब में और सुविधाएँ प्रदान करने में स्त्रियों और पुरुषों में भेद करता है तो इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता।

प्र.2. निवारक निरोध के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति की चर्चा कीजिए।

उत्तर निवारक निरोध के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति—निवारक निरोध कानून की व्यवस्था संविधान सभा में अत्यधिक विवाद का कारण बनी थी और संविधान लागू किए जाने के बाद भी अनेक पक्षों द्वारा इसकी आलोचना की गई। 1975 में घोषित आपातकाल के अन्तर्गत तो निवारक निरोध और 'मीसा' की व्यवस्था का बहुत अधिक दुरुपयोग किया गया था। अतः निवारक निरोध और 'मीसा' के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक था। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा ऐसे कुछ प्रबन्ध किए गए, जिससे शासक वर्ग द्वारा निवारक निरोध कानून की व्यवस्थाओं का दुरुपयोग न किया जा सके। 1971 में जारी किया गया

'आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम' (मीसा) 44वें संवैधानिक संशोधन के प्रतिकूल था और इस कारण **अप्रैल** 1979 **में यह स्वतः ही रद्द हो गया।**

भारत में केन्द्र और राज्यों दोनों को ही निवारक निरोध कानून बनाने और लागू करने का अधिकार प्राप्त है। अत: केन्द्रीय स्तर पर 'मीसा' की व्यवस्था समाप्त हो जाने पर भी अधिकांश राज्यों में निवारक निरोध कानून की व्यवस्थाएँ लागू रहीं। वर्तमान समय में 'निवारक निरोध कानून' की श्रेणी के निम्न दो कानून पूरे भारत में लागू हैं। ये हैं—**प्रथम**, राष्ट्रीय सुरक्षा कानून और **द्वितीय**, गैर कानूनी गतिविधियाँ निवारण अध्यादेश (2004)।

प्र.3. बन्दी प्रत्यक्षीकरण और अधिकार-पृच्छा पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर बन्दी प्रत्यक्षीकरण—बंदी प्रत्यक्षीकरण अर्थात् 'शरीर प्राप्त करना' इस लेख के द्वारा न्यायालय गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को सशरीर अपने सामने उपस्थित करवाता है जिससे उसके कारावास के कारणों को जाना जा सके और यदि गिरफ्तारी का कोई विधिक औचित्य नहीं है तो उसे मुक्त कर सके। यह लेख किसी सरकारी अधिकारी के विरुद्ध भी जारी हो सकता है और प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध भी। लेकिन यह रिट न्यायालय की अधिकारिता के भीतर ही निकाली जाएगी, न्यायालय द्वारा कारावासित व्यक्ति के विरुद्ध नहीं निकाली जाएगी, किसी अभिलेख न्यायालय या संसद की अवमानना के लिए कार्यवाही में हस्तक्षेप के लिए नहीं निकाली जाएगी।

अधिकार पृच्छा—यह लेख तब जारी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करता है जिसका उसे कानून की दृष्टि से करने का कोई अधिकार नहीं है। उदाहरणार्थ—कोई व्यक्ति यदि गैर-कानूनी रूप से किसी पद या अधिकार का प्रयोग करता है तो न्यायालय उसे ऐसा करने से रोक सकते हैं। यथा, यदि किसी व्यक्ति को किसी पद पर नियुक्त कर दिया जाता है जिसके लिए वह कानूनी रूप से योग्य नहीं है और उसकी नियुक्ति से किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुँचती है, तो वह व्यक्ति उस पद को खाली करवाने के लिए न्यायालय में उस समय आवेदन कर सकता है जब उसके पास कोई उपाय न बचा हो। यदि कोई व्यक्ति कानूनी रूप से किसी पद के लिए अयोग्य है तो न्यायालय उसके पद को खाली घोषित कर सकते हैं।

प्र.4. मौलिक कर्त्तव्यों की आलोचना की विवेचना कीजिए।

उत्तर संविधान के भाग IV-A में वर्णित मौलिक कर्त्तव्यों की आलोचना निम्नलिखित आधार पर की जाती है—

1. कुछ आलोचकों का मानना है कि, कर्त्तव्यों की सूची पूर्ण नहीं है क्योंकि इनके अन्तर्गत मतदान, कर अदायगी, परिवार नियोजन आदि कुछ महत्वपूर्ण कर्त्तव्य सम्मिलित नहीं हैं।
2. कुछ कर्त्तव्यों को साधारण व्यक्तियों के लिए समझना कठिन है क्योकि ये अस्पष्ट, बहुअर्थी हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न शब्दों की भिन्न-भिन्न व्याख्या हो सकती है, 'उच्च आदर्श', 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' 'सामाजिक संस्कृति', समग्र संस्कृति आदि।
3. आलोचक संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों को शामिल करने को अत्यधिक महत्त्व नहीं देते। क्योंकि उनका मानना है कि संविधान में शामिल मौलिक कर्त्तव्यों को कानूनी रूप में लागू नहीं किया जा सकता है।
4. जानकारों के अनुसार मौलिक कर्त्तव्यों को कम महत्त्व मिला क्योकि, संविधान में इसे राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के बाद भाग IV में शामिल कर भाग IV-A में रखा गया। जबकि उन्हें भाग तीन के बाद जोड़ा जाना चाहिए था, जिससे वे मौलिक अधिकारों के बराबर महत्त्व रखते।

प्र.5. नीति निदेशक तत्त्वों का अर्थ और स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

नीति निदेशक तत्त्वों का अर्थ
(Meaning of Directive Principles)

निदेशक तत्व हमारे राज्य के सम्मुख कुछ आदर्श उपस्थित करते हैं, जिनके द्वारा देश के नागरिकों का सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्थान हो सकता है। संविधान की प्रस्तावना द्वारा भारत के नागरिकों को समानता, स्वतन्त्रता एवं न्याय प्रदान करवाने का लक्ष्य इन आदेशों को क्रियान्वित किये जाने पर ही पूर्ण हो सकता है। ये निदेशक तत्व एक प्रकार से राज्य के लिए नैतिकता के सूत्र हैं तथा देश में स्वस्थ एवं वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना की दिशा में प्रेरणा देने वाले हैं।

इन तत्वों की प्रकृति के सम्बन्ध में **संविधान की 37वीं धारा** में कहा गया है कि **"इस भाग में दिये गये उपबन्धों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु तो भी इसमें दिये हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।"**

इस धारा से यह बात स्पष्ट है कि निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों के समान वैधानिक शक्ति प्रदान नहीं की गयी है अर्थात् निदेशक तत्वों की क्रियान्विति के लिए न्यायालय के द्वारा किसी भी प्रकार के आदेश जारी नहीं किये जा सकते हैं। वैधानिक शक्ति प्राप्त न होने पर भी ये तत्व राज्य शासन के संचालन के आधारभूत सिद्धान्त हैं और राज्य का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि व्यवहार में सदैव ही इन तत्वों का पालन करे। निदेशक तत्वों की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए **जी. एन. जोशी** ने लिखा है कि "इन निदेशक तत्वों का विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन कानूनों को लागू करते समय ध्यान रखना चाहिए। ये उस नीति की ओर संकेत हैं जिसका अनुकरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।"

अमरनन्दी का कथन है, "नीति निदेशक तत्व ऐसे आदेश के रूप में हैं जो संविधान द्वारा राज्य को दिये गये हैं।"

एल. जी. खेडेकर के अनुसार, "नीति निदेशक सिद्धान्त वे आदर्श हैं, जिनकी क्रियान्विति का प्रयत्न शासन को करना है।"

नीति निदेशक तत्त्वों का स्वरूप
(Pattern of Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रमुखतया **निम्न तीन बातें उल्लेखनीय हैं**—

1. इन तत्वों को न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, इन्हें वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है।
2. निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत स्थान रखते हैं।
3. कानून बनाते समय इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। यहाँ राज्य का अभिप्राय सभी राजनीतिक सत्ताओं से है। केन्द्रीय सरकार, संसद, राज्य सरकार, विधानमण्डल और भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी इसके अधीन हैं।

प्र.6. मूल अधिकार न्याय-योग्य हैं, लेकिन निदेशक तत्त्व न्याययोग्य नहीं हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर मूल अधिकार न्याय-योग्य (Justiciable) हैं, लेकिन निदेशक तत्व न्याययोग्य नहीं हैं—मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में सबसे प्रमुख अन्तर यह है कि मूल अधिकार न्याय-योग्य हैं, लेकिन निदेशक तत्व न्याय-योग्य नहीं हैं। यदि कोई कानून किसी मूल अधिकार का उल्लंघन करता है तो क्योंकि अनुच्छेद 32 ने सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को अधिकार दिया है कि वे मूल अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए उचित कार्यवाही करें, अत: ये न्यायालय मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाले कानूनों को अवैध घोषित कर सकते हैं, लेकिन यदि कोई कानून निदेशक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है तो उसे अवैध नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि निदेशक सिद्धान्तों से न तो हमें कोई न्याययोग्य अधिकार प्राप्त होते हैं और न ही संविधान ने उनके उल्लंघन पर कोई उपचार सुझाया है। इस प्रकार मूल अधिकारों को कानूनी शक्ति प्राप्त है, लेकिन निदेशक तत्वों को कानूनी शक्ति प्राप्त नहीं है। इन्हें तो जनमत का बल और नैतिक शक्ति ही प्राप्त है।

प्र.7. मूल अधिकार एवं निदेशक तत्त्व एक दूसरे के पूरक हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर संविधान के भाग तीन में सम्मिलित मूल अधिकार एवं भाग चार में उल्लिखित निदेशक तत्व वास्तव में एक ही समूची व्यवस्था के अंग हैं तथा इन दोनों व्यवस्थाओं का लक्ष्य एक ही है और वह है व्यक्तित्व का विकास तथा लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना। भूतपूर्व न्यायाधीश **के० सदानंद हेगड़े** ने कहा है कि, "सिद्धान्तत: एक ही संविधान के दो भागों में कोई असंगति नहीं हो सकती। राज्य नीति के निदेशक तत्वों को अपनाकर हमारे संविधान निर्माताओं ने कोई असंगति उत्पन्न नहीं की। उनका प्रयत्न वैयक्तिक अधिकार व सामाजिक कल्याण में समन्वय स्थापित करना था।"

'चन्द्र भवन बोर्डिंग एण्ड लॉजिंग बैंगलोर' बनाम **'मैसूर राज्य और अन्य'** (1970) **'मिनर्वा मिल्स** बनाम **भारत संघ'** (1980) तथा अन्य कुछ विवादों के निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया है कि 'मूल अधिकार और निदेशक तत्व' एक-दूसरे के पूरक हैं। **पायली, ग्रेनविल आस्टिन, के. सदानन्द हेगड़े** तथा अन्य अनेक लेखकों ने अपनी पुस्तकों में इसी बात पर बल दिया है। वस्तुत: इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा ये एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।

प्र.8. नीति निदेशक तत्त्वों की आलोचना की दो प्रमुख बातें स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जिस समय संविधान का निर्माण हो रहा था, उस समय संविधान सभा में और बाहर भी राज्य के निदेशक तत्वों सम्बन्धी उपबन्धों की बहुत आलोचना हुई थी। संविधान के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् भी अनेक विद्वानों ने कई आधारों पर इन तत्वों की आलोचना की है। आलोचकों की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित रहे हैं—

1. **वैधानिक शक्ति का अभाव**—निदेशक तत्वों की आलोचना का सबसे प्रमुख आधार यह है कि इन तत्वों को वैधानिक शक्ति प्राप्त न होने के कारण ये निरर्थक हैं। संविधान ने राज्य नीति के निदेशक तत्वों को एक ओर तो देश के शासन में

मूलभूत माना है, किन्तु साथ ही वे वैधानिक शक्ति प्राप्त या न्याय-योग्य नहीं हैं अर्थात् न्यायालय उपर्युक्त सिद्धान्तों को क्रियान्वित नहीं करा सकते। अत: आलोचकों की राय में ये निदेशक तत्व **'शुभ इच्छों'** (Pious Wishes), **'नैतिक आदेश'** (Moral Precepts) या ऐसी राजनीतिक घोषणाओं के समान हैं जिनका कोई संवैधानिक महत्व नहीं है। संविधान सभा के कुछ सदस्यों तथा प्रो० के० टी० शाह और प्रो० ह्वीलर, आदि लेखकों ने इसी आधार पर इन्हें 'मात्र उद्देश्यों और आकांक्षाओं का घोषणा-पत्र कहा है।'

2. **संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न होने की आशंका**—संवैधानिक विधिवेत्ताओं ने आशंका व्यक्त की है कि ये तत्व संवैधानिक द्वन्द्व और गतिरोध के कारण भी बन सकते हैं। संविधान सभा में **सन्थानम** ने भय प्रकट किया था कि इन निदेशक तत्वों के कारण राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री अथवा राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच मतभेद पैदा हो सकता है। यदि शासन निदेशक तत्वों के विरुद्ध व्यवस्थापिका से कोई विधेयक स्वीकृत करवा लेता है तो राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं कि वह शासन के मूलभूत सिद्धान्त निदेशक तत्वों के विरुद्ध है। इस प्रकार की घटनाएँ कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान और वास्तविक प्रधान के बीच मतभेदों को जन्म देंगी और इससे संसदीय प्रजातन्त्र को गम्भीर आघात पहुँच सकता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मूल अधिकार के अर्थ से क्या अभिप्राय है? मूल अधिकार की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

मूल अधिकार का अर्थ
(Meaning of Fundamental Rights)

वे अधिकार जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक तथा अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं और जिन अधिकारों में राज्य द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, मूल अधिकार कहलाते हैं। इस प्रकार मूल अधिकारों को राज्य द्वारा पारित विधियों से उच्च स्थान प्राप्त होता है।

व्यक्ति के इन अधिकारों को निम्न आधारों पर मूल अधिकार कहा जाता है। **प्रथम**, व्यक्ति के पूर्ण मानसिक, भौतिक और नैतिक विकास के लिए ये अधिकार बहुत आवश्यक हैं। इनके अभाव में उनके व्यक्तित्व का विकास रुक जाएगा। इसलिए लोकतन्त्रात्मक राज्य में प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मूल अधिकार प्रदान किए जाते हैं। इन अधिकारों को मूल कहने का **द्वितीय** कारण यह है कि इन्हें देश की मूल विधि अर्थात् संविधान में स्थान दिया जाता है और साधारणतया संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया के अतिरिक्त इनमें और किसी प्रकार से परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। **गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य** के विवाद में मुख्य न्यायाधीश **पातंजलि शास्त्री** ने कहा था, **''मौलिक अधिकारों की मुख्य विशेषता यह है कि वे राज्य द्वारा पारित विधियों से ऊपर हैं।'' तृतीय**, मूल अधिकार साधारणतया अनुल्लंघनीय हैं अर्थात् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, या बहुमत दल द्वारा उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। **चतुर्थ,** मूल अधिकार न्याय-योग्य (Justiciable) होते हैं अर्थात् न्यायपालिका इन अधिकारों की रक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठा सकती है।

मूल अधिकार की व्यवस्था भारतीय संविधान की सर्वाधिक प्रमुख व्यवस्थाओं में से एक है।

भारतीय संविधान के अधिकार-पत्र की विशेषताएँ

यद्यपि मूल अधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय संविधान द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका और अन्य आधुनिक संविधानों से प्रेरणा ली गई है, लेकिन भारतीय संविधान का अधिकार-पत्र अधिकारों और उनसे सम्बद्ध व्यवस्था के सम्बन्ध में वैसा ही नहीं है जैसे कि अन्य संविधानों के अधिकार-पत्र हैं। भारतीय संविधान के अधिकार-पत्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **सर्वाधिक विस्तृत अधिकार-पत्र**—भारतीय संविधान का तृतीय भाग जिसमें मूल अधिकारों का विवेचन किया गया है, विश्व के अन्य किसी भी संविधान में दिए गए अधिकार-पत्र से विस्तृत है। मूल अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में कुल 23 अनुच्छेद (अनुच्छेद 12 से 30 और 32 से 35) हैं और इनमें से कुछ अनुच्छेद तो असाधारण रूप से लम्बे हैं। उदाहरण के लिए, संविधान के 19वें अनुच्छेद के मूल रूप में 450 शब्द थे, अब तक हुए संशोधनों से इसके आकार में और वृद्धि हो गई।

अधिकार-पत्र के इतने अधिक व्यापक होने का एक प्रमुख कारण यह रहा है कि प्रत्येक अधिकार के साथ प्रतिबन्धों की भी व्यवस्था की गई है। मूल अधिकारों के सम्बन्ध में पूर्ण और स्पष्ट व्यवस्था के प्रयास में ही अधिकार-पत्र इतना विस्तृत हो गया है।

2. **मूल अधिकार व्यावहारिकता पर आधारित**—भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कोरे सिद्धान्तों की अपेक्षा वास्तविकता पर आधारित और सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, सभी व्यक्तियों हेतु समानता के अधिकार को स्वीकार करते हुए भी पिछड़े हुए और दलित वर्गों के विकास के लिए संविधान में विशेष व्यवस्थाएँ की गई हैं, शिक्षा और संस्कृति की स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के शिक्षा और भाषा सम्बन्धी हितों की रक्षा का प्रबन्ध किया गया है और धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की व्यवस्था इस दृष्टिकोण से की गई है कि समाज में धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन मिले।
3. **मूल अधिकार सीमित हैं, निरंकुश नहीं**—भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किए गए मूल अधिकार असीमित नहीं हैं, वरन् संविधान के द्वारा ही उन पर प्रतिबन्ध भी लगा दिए गए हैं। इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान और अमरीकी संविधान में अन्तर यह है कि अमरीकी संविधान में मूल अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाए गए हैं, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने **पुलिस शक्ति** (Police force) के सिद्धान्त के आधार पर राज्य को सामान्य हित में मूल अधिकारों पर आवश्यक और उचित नियन्त्रण लगाने की शक्ति दे दी है। इस प्रकार, अन्तिम रूप में भारतीय संविधान और अमरीकी संविधान में कोई अन्तर नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से किया गया है, अमरीकी संविधान द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया गया है।
4. **प्राकृतिक या अगणित अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं**—भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्राकृतिक या अगणित अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है और संविधान केवल उन्हीं अधिकारों को स्वीकार करता है जिनका वर्णन संविधान के तीसरे भाग में किया गया है। इस सम्बन्ध में अमरीकी संविधान की स्थिति भिन्न है। अमरीकी संविधान के **नवम्** संशोधन में उल्लेख है कि "**संविधान में कुछ अधिकारों को शामिल कर देने का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि अन्य अधिकार, जिन पर सभी का स्वामित्व है, उपेक्षित अथवा अमान्य होंगे।**" इसके आधार पर अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने यह शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह संविधान में वर्णित अधिकारों के अतिरिक्त भी मानव जीवन के लिए आवश्यक समझे जाने वाले अन्य अधिकारों को लागू करा सकता है। भारतीय संविधान में अगणित अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है और सर्वोच्च न्यायालय संविधान में उल्लिखित अधिकारों के अतिरिक्त अन्य अधिकारों को लागू करने की कार्यवाही नहीं कर सकता।
5. **मूल अधिकारों की रक्षा के लिए व्यवस्था**—भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकार केवल कागजी प्रतिज्ञाएँ मात्र नहीं हैं। वे पूर्ण वैधानिक अधिकार हैं और संविधान ने न्यायालयों को आज्ञा दी है कि वे देखें कि नागरिकों के मूल अधिकारों का हनन न होने पावे। संविधान के **अनुच्छेद 32** के अन्तर्गत नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों की शरण ले सकता है और न्यायपालिका, व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के ऐसे सभी कानूनों और कार्यों को अवैधानिक घोषित कर देगी जो मूल अधिकारों को अनुचित रूप से प्रतिबन्धित करते हों। संविधान के द्वारा अधिकारों की रक्षा के लिए जिस प्रकार के उपचारों की व्यवस्था की गई है, वे पर्याप्त प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हैं।

प्र.2. भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकारों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

उत्तर

संविधान में निहित मौलिक अधिकार
(Fundamental Rights in Constitution)

भारतीय संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक में नागरिकों के मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) का स्पष्ट वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान में मौलिक रूप से 7 मौलिक अधिकार दिए गए थे, किन्तु सन् 1978 में 44 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की सूची से निकालकर उसे कानूनी अधिकारों की सूची में जोड़ दिया गया है।

इस प्रकार अब संविधान में 6 मौलिक अधिकार ही रह गए हैं जो अग्रलिखित हैं—

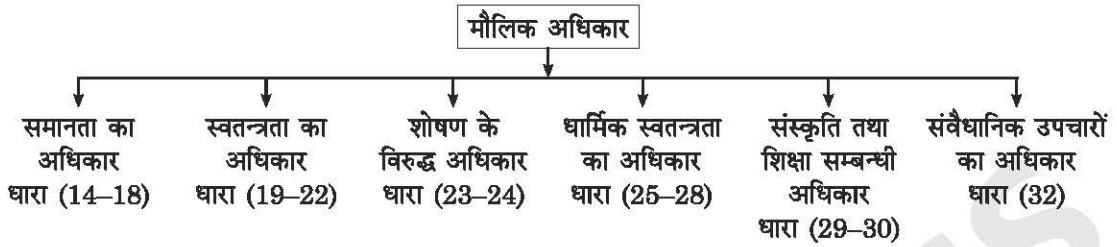

1. समानता का अधिकार

समानता के अधिकार का अभिप्राय यह है कि संवैधानिक दृष्टि से सभी नागरिक समान हैं। भारतीय संविधान में समानता के अधिकार को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है जिससे भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर किया जा सके। समानता के अधिकार का वर्णन अनुच्छेद 14 से 18 में किया गया है समानता के अन्तर्गत निम्न बातों पर जोर दिया गया है—

(i) **कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद-14)**—कानून के समक्ष सभी नागरिक समान होंगे। कानून, जाति, वर्ण, लिंग एवं जन्मस्थान आदि के आधार पर कोई भी भेदभाव किसी के साथ नहीं करेगा।

(ii) **धर्म, जाति आदि के भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद-15)**—किसी भी नागरिक को सार्वजनिक भोजनालयों, तालाबों, कुओं, पार्कों आदि के प्रयोग से वंचित नहीं किया जा सकता, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, लिंग व वंश के हों।

(iii) **राज्य सेवा में समान अवसर (अनुच्छेद-16)**—आरक्षण के नियमों को ध्यान में रखते हुए सरकारी नौकरी में सभी को समान अवसर मिलेंगे।

(iv) **अस्पृश्यता का निषेध (अनुच्छेद-17)**—अस्पृश्यता या छुआछूत का कानून सन् 1955 में बनाया गया। छुआछूत को बढ़ावा देने वाले व्यक्ति को जुर्माना या कैद हो सकती है।

(v) **उपाधियों का निषेध (अनुच्छेद-18)**—भारतीय संविधान ने उपाधियों को पूर्णतया निषेध किया है। शिक्षा एवं सेना को इससे छूट दी गयी है।

2. स्वतन्त्रता का अधिकार

भारतीय संविधान ने प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्रता का अधिकार दिया है। संविधान ने नागरिकों को कई तरह की आजादी दी है और इसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों में शामिल किया है। संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में स्वतंत्रता का वर्णन किया गया है। स्वतन्त्रता एक ऐसी सकारात्मक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत सभी नागरिकों को सोचने, अभिव्यक्ति, आस्था और पूजा का अधिकार होता है। स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित अधिकार आते हैं—

(i) **अनुच्छेद 19 के आधार पर स्वतंत्रता**—संविधान के अनुच्छेद 19 के आधार पर स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित 6 प्रकार की स्वतंत्रताओं का उल्लेख है—

(a) **विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता**—इस अधिकार के अनुसार, प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता दी गई है। प्रेस, आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं विचाराभिव्यक्ति के अन्य साधनों की स्वतंत्रता भी इसके अन्तर्गत आती है।

(b) **शान्तिपूर्वक सम्मेलन की स्वतंत्रता**—भारतीय नागरिकों को शान्तिपूर्वक, बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के सभा या सम्मेलन करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

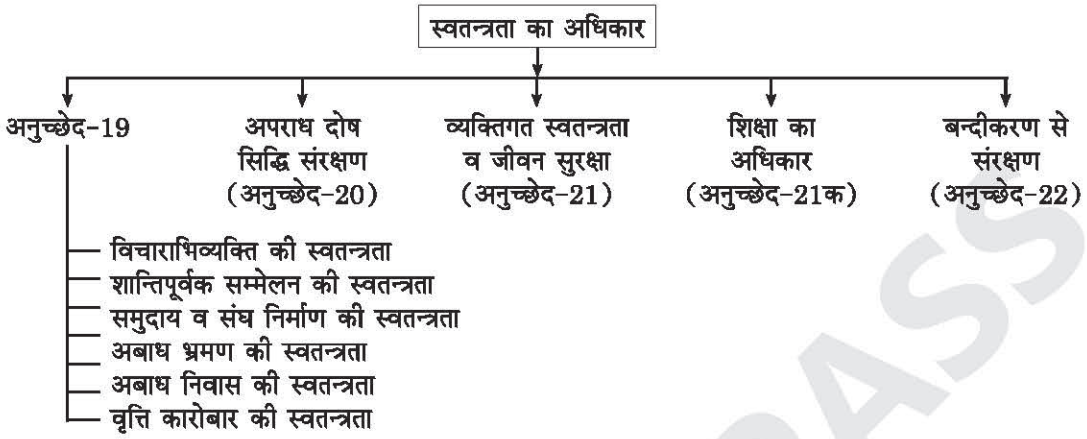

(c) समुदाय व संघ निर्माण की स्वतंत्रता—इस अधिकार के अनुसार, भारतीय नागरिकों को संघ या समुदाय बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। अपनी इच्छानुसार कोई भी नागरिक किसी भी समुदाय की सदस्यता ग्रहण कर सकता है।

(d) अबाध भ्रमण की स्वतंत्रता—प्रत्येक भारतीय नागरिक भारत के किसी भी भू-भाग में बिना रोक-टोक के भ्रमण कर सकता है।

(e) आवास की स्वतंत्रता—भारत देश के सभी नागरिक अपनी इच्छानुसार भारत के किसी भी भू-भाग में स्थाई या अस्थाई रूप से निवास कर सकते हैं।

(f) वृत्ति कारोबार की स्वतंत्रता—अपनी जीविका के लिए भारत के प्रत्येक नागरिक को कोई भी व्यवसाय या व्यापार करने या चुनने की स्वतंत्रता है।

(ii) अपराध दोष सिद्धि संरक्षण की स्वतंत्रता—अनुच्छेद 20 में यह उपबन्ध है कि अपराध के समय कानून के उल्लंघन के बिना किसी भी व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(iii) व्यक्तिगत स्वतंत्रता या जीवन सुरक्षा की स्वतंत्रता—संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर सभी नागरिकों को जीवन रक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। इसमें कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके जीवन तथा शारीरिक स्वाधीनता से 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के इस अधिकार को संकटकाल की घोषणा होने पर भी स्थापित या मर्यादित नहीं किया जा सकता है।

(iv) शिक्षा का अधिकार—शिक्षा का अधिकार 86वें संविधान संशोधन (वर्ष 2002) द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। अनुच्छेद 21(क) में कहा गया है कि राज्य कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

(v) बन्दीकरण से संरक्षण—अनुच्छेद 22 निवारक एवं निरोध से सम्बन्धित है। इसके द्वारा बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। उसे अधिवक्ता से परामर्श लेने एवं बचाव के लिए प्रबन्ध करने का अधिकार प्रदान किया गया है तथा उसे बन्दी बनाए जाने के बाद 24 घण्टे के अन्दर निकटतम न्यायधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

किसी भी प्रकार के शोषण को भारतीय संविधान ने गैर कानूनी माना है। मानव व्यापार एवं बिना वेतन दिए किसी से श्रम करवाना शोषण के अन्तर्गत ही आता है। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, मिलों, खानों या अन्य किसी ओद्यौगिक क्षेत्र में काम पर नहीं रखा जा सकता।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 एवं 24 में नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत नागरिकों के लिए निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गई हैं—

(i) मनुष्यों के क्रय-विक्रय पर रोक—संविधान के अनुच्छेद 23(1) के द्वारा मानव व्यापार को अवैध घोषित किया गया है। बालक-बालिकाओं एवं स्त्री-पुरुषों के क्रय-विक्रय को अवैध एवं दण्डनीय अपराध माना गया है।

(ii) **बेगार श्रम का निषेध**—संविधान के अनुच्छेद 23(2) के अनुसार, "लोगों से बेगार" एवं किसी प्रकार का अन्य कोई "बलपूर्वक कराया गया श्रम" अवैध समझा जाएगा। इसी आधार पर बेगार या बलपूर्वक काम लेना दण्डनीय माना जाता है।

(iii) **बालश्रम निषेध**—संविधान के 24वें अनुच्छेद के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, मिलों, खानों या अन्य किसी औद्योगिक क्षेत्र में काम पर नहीं रखा जा सकता है।

4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

भारत में विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते हैं अर्थात् भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। भारतीय संविधान ने नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान कर रखा है। भारत के प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म का प्रचार एवं उसको मानने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

धार्मिक शिक्षा को जबरन किसी पर थोपा नहीं जा सकता, यही इस मौलिक अधिकार का आधार है। अनुच्छेद 25 से 28 तक संविधान में नागरिकों के धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लेख किया गया है।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अधिकार सम्मिलित हैं—

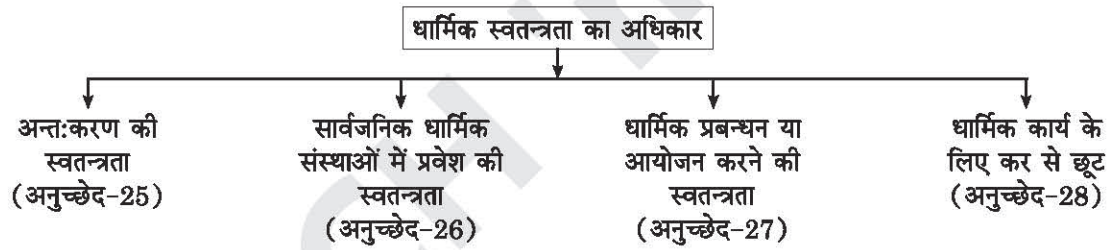

(i) **अन्त:करण की स्वतंत्रता**—अनुच्छेद 25 के द्वारा किसी भी अन्त:करण की स्वतंत्रता एवं किसी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने व प्रचार करने की धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है।

(ii) **सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं में प्रवेश की स्वतंत्रता**—अनुच्छेद 26 के द्वारा प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि प्रत्येक धर्म के अनुयायी धार्मिक तथा सेवा सम्बन्धी कार्यों के लिए संरचनाएँ निर्मित कर सकते हैं तथा उसका संचालन कर सकते हैं।

(iii) **धार्मिक प्रबन्धन या आयोजन करने की स्वतंत्रता**—अनुच्छेद 26 में यह प्रावधान है कि धार्मिक संस्थाओं की संपत्तियों का प्रबन्धन राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार किया जाएगा तथा अपने धार्मिक मामलों का प्रबन्धन अपनी इच्छानुसार करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(iv) धार्मिक कार्य के लिए कर से छूट-अनुच्छेद 28 के अनुसार, किसी भी सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त अथवा मान्यता प्राप्त संस्था में किसी भी प्रकार के धार्मिक कार्यों पर जो धनराशि खर्च होगी वह कर से मुक्त होगी।

5. संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

भारत विभिन्न संस्कृतियों का देश है जिसमें विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय एवं भाषाएँ सम्मिलित हैं। अत: संविधान ने सभी संस्कृतियों को बनाए रखने का अधिकार सम्प्रदाय को दे दिया है जिससे वे अपनी संस्कृति, भाषा, लिपि आदि को बनाए रख सकें। धर्म, जाति एवं भाषा के आधार पर किसी व्यक्ति को संस्था में शिक्षा लेने से वंचित नहीं किया जा सकता।

संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 के द्वारा सभी नागरिकों को संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार दिए गए हैं। इसके अन्तर्गत अग्रलिखित अधिकार सम्मलित हैं—

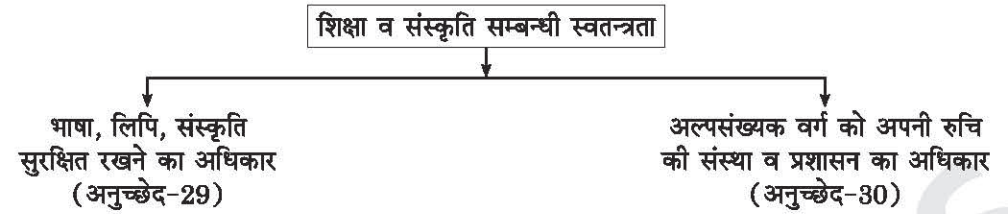

(i) **भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार**—संविधान के अनुच्छेद 29 के आधार पर, 'नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि, एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है। धर्म, वंश, जाति तथा भाषा के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सरकारी या सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है।

(ii) **अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी रुचि की संस्था व प्रशासन का अधिकार**—संविधान के अनुच्छेद 30 के आधार पर धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने तथा प्रशासन सम्बन्धी अधिकार दिए गए हैं। इस आधार पर राज्य शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देने में कोई भेदभाव नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के अधीन है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद-32)

मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु संविधान में इस अधिकार को शामिल किया गया है।

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण, (ii) परमादेश, (iii) प्रतिषेध, (iv) उत्प्रेषण, (v) अधिकार पृच्छा।

(i) **बंदी प्रत्यक्षीकरण**—यह उस व्यक्ति की प्रार्थना पर जारी किया जाता है जो यह समझता है कि उसे अवैध रूप से बंदी बनाया गया है। इसके द्वारा न्यायालय बंदीकरण करने वाले अधिकारी को आदेश देता है कि वह बंदी बनाए गए व्यक्ति को निश्चित स्थान और समय पर उपस्थित करे जिससे न्यायालय उस पर विचार कर सके तथा उसको मुक्त करने का आदेश दे सके।

(ii) **परमादेश**—परमादेश का लेख उस समय जारी किया जाता है जब कोई पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं करता है। इस प्रकार के आज्ञापत्र के आधार पर पदाधिकारी को कर्त्तव्य पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है।

(iii) **प्रतिषेध लेख**—इस लेख का अभिप्राय मना करने से है। दूसरे शब्दों में, 'किसी व्यक्ति या संस्था को किसी कार्य के करने या न करने की आज्ञा प्रतिषेध कहलाती है। प्रतिषेध आज्ञापत्र उच्चतर न्यायालय द्वारा अपने से निम्न न्यायालय के लिए निकाला जाता है।

(iv) **उत्प्रेषण**—इस लेख का अभिप्राय पूर्णत: सूचित करना है। यह आज्ञापत्र या लेख अधिकांशत: किसी विवाद को उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है। यह आज्ञापत्र उस समय जारी किया जाता है जब विवाद अधीनस्थ न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर हो तथा न्याय के दुरुपयोग होने की सम्भावना हो। उच्चतम न्यायलय अपने अधीनस्थ न्यायलय को आदेश देकर किसी मुकदमे का रिकॉर्ड माँग सकता है।

(v) **अधिकार पृच्छा लेख**—जब कोई व्यक्ति ऐसे पदाधिकारी के रूप में कार्य करने लगता है जिसका उसे वैधानिक अधिकार नहीं है तब न्यायालय इस लेख के माध्यम से उस व्यक्ति से इस सम्बन्ध में प्रश्न कर सकता है।

सम्पत्ति का अधिकार

44 वें संविधान संशोधन के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से समाप्त कर दिया गया। वर्तमान में यह साधारण कानूनी अधिकार के रूप में है। इस अधिकार के तहत प्रत्येक व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार है। अनुच्छेद 31 के अनुसार, व्यक्ति को सम्पत्ति सम्बन्धी निम्न अधिकार दिए गए हैं—

1. कोई व्यक्ति सम्पत्ति पर कानूनी अधिकार तभी ले सकता है जब वह सार्वजनिक रूप से अनिवार्य हो या राज्य उसका मुआवजा दे।
2. विधि के विरुद्ध किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं छीनी जा सकती है।

प्र.3. मौलिक अधिकारों के उद्देश्य क्या हैं? मौलिक अधिकारों की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

मौलिक अधिकारों के उद्देश्य
(Objectives of Fundamental Rights)

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के समावेश का उद्देश्य उन मौलिक उद्देश्यों का संरक्षण है जो एक स्वतन्त्र समाज के लिए अपरिहार्य है। **न्यायमूर्ति सप्रू** के द्वारा इन अधिकारों के उद्देश्यों की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

1. भारत में रहने वाले नागरिकों को अधिकारों की सुरक्षा एवं समानता प्रदान करने के लिए।
2. नगरिकों के व्यवहार, न्याय एवं निष्पक्षता का एक निश्चित मापदण्ड निर्धारित करने के लिए।
3. विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए।

इसके अन्य उद्देश्य—

1. मौलिक राजकीय सत्ता के विरुद्ध व्यक्ति के हितों की रक्षा करना।
2. व्यक्ति की प्रतिष्ठा बनाए रखने वाली परिस्थितियों को उत्पन्न करना।
3. व्यक्तिगत हित एवं सामाजिक हित में सामंजस्य स्थापित करना।

मौलिक अधिकारों की आवश्यकता एवं महत्त्व

जिन संविधानों में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था नही होती है, वह बहुत जल्द तानाशाही का साधन बन जाता है। अत: यहाँ राज्य शक्ति पर संवैधानिक नियंत्रण के द्वारा व्यक्ति की मूलभूत स्वतन्त्रताओं को सुरक्षित किया जाता है। सामान्यत: व्यक्ति एवं राज्य के परस्पर आपसी सम्बन्धों की समस्या सदैव से ही अत्यन्त जटिल समस्या रही है एवं वर्तमान समय में प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में इस समस्या ने विशेष महत्त्व प्राप्त कर लिया है। जहाँ एक ओर शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु नागरिकों के जीवन पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक हो गया है वहीं दूसरी ओर राज्य की शक्ति पर भी कुछ पाबन्दियाँ लगा देना अत्यन्त आवश्यक है ताकि राज्य मनमाने तरीके से आचरण करते हुए व्यक्तियों की स्वतन्त्रता एवं अधिकारों के विरुद्ध कार्य न कर सकें। मौलिक अधिकारों का वर्णन संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 35 तक वर्णन किया गया है।

मौलिक अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं अधिकारों के हित में राज्य की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने का श्रेष्ठतम उपाय है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार अमेरिका के संविधान से लिए गए हैं। ये अधिकार व्यक्ति के मानसिक व भौतिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि हमारी संविधान सभा ने संविधान में मौलिक अधिकारों के अध्याय को शामिल करना अनिवार्य समझा।

मौलिक अधिकारों की आवश्यकता एवं महत्त्व निम्नलिखित है—

1. मौलिक अधिकार लोकतन्त्र के आधार स्तम्भ हैं। ये अधिकार ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं, जिनके आधार पर बहुमत की इच्छा निर्मित एवं क्रियान्वित की जाती है। ये अधिकार लोकतन्त्र के लिए इस दृष्टि से भी अनिवार्य हैं कि इनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। साथ ही उन आधारभूत स्वतन्त्रताओं एवं स्थितियों की व्यवस्था की जाती है जिनके बिना उचित रूप में नागरिक जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता है।
2. एक देश के राजनीतिक जीवन में एक दल विशेष की निरंकुशता स्थापित होने से रोकने के लिए भी मौलिक अधिकारों की नितान्त आवश्यकता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में निरंकुश राजाओं के व्यक्तिगत शासन का भय समाप्त हो चला है, लेकिन लोकतन्त्रात्मक राज्यों में बहुमत तानाशाही का डर बराबर बना हुआ है। ये अधिकार शासकीय एवं बहुमत वर्ग के अत्याचारों से व्यक्ति की (विशेष रूप से अल्पसंख्यकों) की रक्षा करते हैं। अत: ये अधिकार बहुमत के अत्याचारी शासन की आशंका का अन्त करते हैं।
3. ये अधिकार व्यक्ति स्वतन्त्रता एवं सामाजिक नियन्त्रण के मध्य उचित सामंजस्य की स्थापना करते हैं। इनके द्वारा एक ओर जहाँ व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका को कानून द्वारा निश्चित सीमाओं में रहने के लिए बाध्य किया जाता है, वहीं दूसरी ओर नागरिकों को शासन के स्वेच्छाचारी संचालन के विरुद्ध जनमत के निर्माण के लिए उचित अवसर प्रदान किए जाते हैं। अन्त में हम कह सकते हैं कि नागरिकों के मौलिक अधिकार मानवीय स्वतन्त्रता के मापदण्ड एवं संरक्षक दोनो ही हैं। इस कारण मौलिक अधिकारों का अपना मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। आज के युग का कोई भी राजनीतिक, दार्शनिक उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों से आप क्या समझते हैं? मौलिक कर्त्तव्यों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

मौलिक कर्त्तव्य
(Fundamental Duties)

भारतीय संविधान ने जहाँ एक ओर अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए हैं, वहीं दूसरी ओर अपने नागरिकों से राष्ट्र की उन्नति में सहायक मौलिक कर्त्तव्यों के निर्वहन की अपेक्षा भी की है। भारतीय संविधान द्वारा अपने नागरिकों से राष्ट्र की उन्नति में सहायक अपेक्षित कर्त्तव्यों को भारतीय संविधान के मौलिक कर्त्तव्य कहते हैं। प्रारम्भ में हमारे संविधान में केवल मौलिक अधिकारों को ही शामिल किया गया था किन्तु सन् 1976 में हुए संविधान के 42वें संशोधन में अनुच्छेद-51(A) में नागरिकों के 10 मौलिक कर्त्तव्यों को समावेशित किया गया। पुन: 93वें संशोधन जो कि सन् 2001 में किया गया, अनुच्छेद-51(A) में 1 मौलिक कर्त्तव्य को और शामिल किया गया। इस प्रकार वर्तमान समय में हमारे संविधान में कुल 11 मौलिक कर्त्तव्य समाहित हैं। ये मौलिक कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं—

1. भारतीय संविधान का पालन करें और संविधान के आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करें। अनुच्छेद-51(A)
2. स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोएँ और उनका पालन करें। अनुच्छेद-51(B)
3. भारत की सम्प्रभुता, एकता तथा अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण बनाए रखें। अनुच्छेद-51(C)
4. देश की रक्षा करें एवं आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें। अनुच्छेद-51(D)
5. भारत के सभी नागरिकों के प्रति समरसता व समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें जो कि धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों। अनुच्छेद-51(E)
6. अपनी समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परम्परा के महत्त्व को समझें एवं उसकी रक्षा करें। अनुच्छेद-51(F)
7. प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी व वन्य जीव आते हैं, उनकी रक्षा करें एवं उनका संवर्धन करें और प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखें। अनुच्छेद-51(G)
8. वैज्ञानिक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर सुधार की भावना का विकास करें। अनुच्छेद-51(H)
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति न पहुँचाएँ एवं हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयत्नों से सभी क्षेत्रों में उन्नति करने का निरन्तर प्रयास करें, जिससे राष्ट्र उपलब्धियों की नई ऊँचाइयों को छू सकें।
11. माता-पिता व अभिभावक के रूप में 6-14 वर्ष के बच्चों अथवा आश्रितों को शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

मौलिक कर्त्तव्य के महत्व

मौलिक कर्त्तव्यों की आवश्यकता एवं महत्त्व को निम्नलिखित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **देश की सुरक्षा**—मौलिक कर्त्तव्यों के द्वारा देश के नागरिकों से यह आवाहन किया जाता है कि वे आपातकाल के समय देश की सुरक्षा के लिए तन-मन-धन से अपना योगदान दें।
2. **देश की प्रगति में सहायक**—प्रत्येक भारतीय नागरिक द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाए जाने से देश की निरन्तर प्रगति करता हुआ आगे बढ़ेगा एवं एक दिन ऐसा आएगा जब वह विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आ जाएगा।
3. **सम्प्रभुता एवं अखण्डता की रक्षा**—मौलिक कर्त्तव्यों के माध्यम से नागरिकों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे देश की सम्प्रभुता, एकता एवं अखण्डता की सदैव रक्षा करें। सभी भारतीय नागरिक यदि पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से अपने इस कर्त्तव्य का पालन करेंगे तो भारत की सम्प्रभुता एवं अखण्डता चिर स्थायी बनी रहेगी।
4. **विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास**—इन कर्त्तव्यों में भारतीय नागरिकों को सद्भावना एवं भाईचारे की भावना बनाए रखने हेतु निर्देश दिए गए हैं साथ ही हिंसा से दूर रहने का परामर्श भी दिया गया है। ये निर्देश एवं परामर्श मानवीय दृष्टिकोण अपनाने एवं विश्वबन्धुत्व की भावना को विकसित करने में सहायक होंगे।
5. **नारी का सम्मान**—मौलिक कर्त्तव्यों का महत्त्व इसलिए भी है कि इन कर्त्तव्यों का पालन करने से समाज में नारी को सम्मान प्राप्त होगा, जिससे उनकी गरिमा में वृद्धि होगी एवं लैंगिक भेदभाव समाप्त होकर समानता स्थापित होगी।

6. **लोकतन्त्र को सफल बनाने में सहायक**—भारत की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था तब तक समाप्त नहीं हो सकती जब तक नागरिक प्रजातान्त्रिक संस्थाओं का आदर न करें। संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों को स्थान दिए जाने से लोग इन संस्थाओं का आदर करेंगे जिसमें प्रजातान्त्रित शासन व्यवस्था सुदृढ़ होगी।
7. **संस्कृति की रक्षा एवं संरक्षण**—भारतीय संस्कृति समन्वित संस्कृति है। समन्वित संस्कृति होने के कारण कश्मीर से कन्याकुमारी तक कई प्रकार की गौरवशाली परम्पराएँ हैं। मौलिक कर्त्तव्यों के पालन से सभी भारतीय विभिन्न प्रकार की इन परम्पराओं में समन्वय स्थापित कर सकेंगे एवं उनका संरक्षण कर सकेंगे। इसमें भारत की सांस्कृतिक एकता सुदृढ़ होगी।
8. **प्राकृतिक एवं सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा**—भारतीय नागरिक प्राकृतिक एवं सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने में कोई संकोच नहीं करते हैं। मौलिक कर्त्तव्यों में दिए गए निर्देश के पालन से प्राकृतिक एवं सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा होगी।

इस प्रकार मौलिक कर्त्तव्यों के पालन से ही हमारे लोकतन्त्र एवं गणतन्त्र की नींव सुदृढ़ होगी, साथ ही साथ इन कर्त्तव्यों से ही हमारे मौलिक अधिकारों की भी रक्षा होगी।

प्र.5. नीति निदेशक तत्त्वों का विस्तारपूर्वक वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

नीति निदेशक तत्त्वों का वर्गीकरण
(Classification of Directive Principles of Policy)

भारतीय संविधान के भाग चार में अनुच्छेद-36 से अनुच्छेद-51 तक नीति निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-36 व अनुच्छेद-37 में नीति निदेशक तत्त्वों की सामान्य जानकारी दी गई है। अनुच्छेद-38 से अनुच्छेद-51 तक नीति निदेशक तत्त्वों का विवरण निम्नलिखित है—

1. **आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्व**—भारतीय संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य भारत में एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था और इस दृष्टि से जिन तत्त्वों के द्वारा आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक न्याय प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है, वे निम्न प्रकार हैं—
   (i) राज्य इस बात का भी ध्यान रखेगा कि सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण में किसी का भी अहित न हो।
   (ii) राज्य पुरुष और स्त्री में बिना किसी भेद के जीविका के साधन उपलब्ध कराने का प्रयत्न करेगा।
   (iii) व्यक्तियों को अपने अनुकूल अवस्थाओं में ही कार्य करना पड़े तथा स्त्रियों को प्रसूतावस्था में काम न करना पड़े, ऐसा राज्य प्रयत्न करेगा।
   (iv) राज्य पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान करेगा।
   (v) राज्य देश के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियन्त्रण की ऐसी व्यवस्था करेगा कि अधिक से अधिक सार्वजनिक हित हो सके।
   (vi) राज्य श्रमिक पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य, शक्ति तथा बालकों की कोमल अवस्था की निर्धनता के कारण दुरुपयोग न होने देगा।
   (vii) राज्य अपने आर्थिक साधनों और विकास की सीमाओं के अनुरूप यह व्यवस्था करेगा कि सभी नागरिक अपनी योग्यता के अनुरूप रोजगार प्राप्त कर सकें, शिक्षा प्राप्त कर सकें तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा नि:शक्तता आदि की अवस्था में सार्वजनिक सहायता प्राप्त कर सकें।
2. **कृषि, कुटीर उद्योग और ग्राम पंचायत सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्व**—कृषि, कुटीर उद्योग और ग्राम पंचायत सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्वों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है—
   (i) राज्य वैज्ञानिक आधार पर कृषि और उससे सम्बन्धित कार्यों की व्यवस्था करेगा।
   (ii) राज्य गाँवों में व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देगा।
   (iii) राज्य पशुपालन की आधुनिक प्रणालियों का प्रचार करेगा तथा साथ ही गायों, बछड़ों तथा अन्य दूध देने वाले तथा यातायात में काम आने वाले पशुओं की नस्लों में सुधार और उनके वध पर रोक लगाने का प्रयास करेगा।
   (iv) राज्य, कृषि और उद्योगों में लगे हुए मजदूरों को अपने जीवन निर्वाह के लिए यथोचित वेतन मिले, जीवन-स्तर ऊँचा हो, अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकें, इस बात का प्रयत्न करेगा।
   (v) राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए प्रयत्न करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ व अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।

TOUCH 'n' PASS

3. **न्याय, सामाजिक कल्याण और स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित नीति निदेशक तत्त्व**—न्याय, सामाजिक कल्याण और स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित नीति निदेशक तत्त्व इस प्रकार हैं—
   (i) राज्य देश के सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करेगा।
   (ii) राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि कानूनी व्यवस्था का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय की प्राप्ति में सहायक हों और उचित व्यवस्था, योजना या अन्य किसी प्रकार से समाज के कमजोर वर्गों के लिए नि:शुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करेगा जिससे आर्थिक रूप से असमर्थ या अन्य किसी कारण से व्यक्ति न्याय प्राप्त करने से वंचित न रहे।
   (iii) राज्य लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए कदम उठाएगा।
   (iv) राज्य जनता के कमजोर वर्ग विशेष रूप से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों की शिक्षा तथा धन सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से रक्षा करेगा तथा सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।
   (v) राज्य राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का हर प्रकार से संरक्षण करेगा।
4. **स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण सम्बन्धी नीति निदेशक तत्त्व**—नागरिकों का हित करने के लिए शिक्षा एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्त्वों का संविधान में समावेश किया गया है। जो निम्न प्रकार से हैं—
   (i) राज्य संविधान लागू होने से दस वर्ष की अवधि के अन्दर चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बालक-बालिकाओं के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।
   (ii) राज्य अपने नागरिकों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और उनके स्वास्थ्य की रक्षा करेगा तथा मादक द्रव्यों का प्रयोग केवल चिकित्सा के उपयोग को छोड़कर प्रतिबन्धित करेगा।
   (iii) राज्य पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्द्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।
5. **अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से सम्बन्धित नीति निदेशक तत्त्व**—राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्त्वों का विशेष महत्त्व है। राज्य को यह निर्देश है कि वह इससे सम्बन्धित निम्नलिखित व्यवस्था करें—
   (i) राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा सुलझाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।
   (ii) राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।
   (iii) राज्य, राष्ट्रों के आपसी व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सन्धियों के प्रति सम्मान विकसित करने का प्रयत्न करेगा।
   (iv) राज्य, राष्ट्रों के बीच न्याय संगत और सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करेगा।

कुछ अन्य नीति निदेशक तत्त्व

कुछ नीति निदेशक तत्त्व संविधान के 42वें संसोधन द्वारा जोड़े गए हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. बच्चों को स्वतंत्रता तथा सम्मान के साथ जीवनयापन का समान अवसर प्राप्त हो।
2. निर्धनों को नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना।
3. उद्योगों के प्रबन्धन आदि में श्रमिकों के सुझाव को महत्त्व दिया जाए तथा प्रबन्धन में उनकी भी भागीदारी हो।

प्र.6. भारतीय संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्त्वों से सम्बन्धित अनुच्छेदों की विस्तृत व्याख्या दीजिए।

उत्तर

नीति निदेशक तत्त्व से सम्बन्धित अनुच्छेद
(Articles Related to Directive Principles of State)

भारतीय संविधान के भाग चार में अनुच्छेद 36 से अनुच्छेद 51 तक नीति निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 36 व अनुच्छेद 37 में नीति निदेशक तत्त्वों की सामान्य जानकारी दी गई है। अनुच्छेद 38 से अनुच्छेद 51 तक नीति निदेशक तत्त्वों का विवरण निम्नलिखित है—

1. **राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करें (अनुच्छेद 38)**
   (i) राज्य सरकार को राज्य की नीतियाँ बनाते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि वे ऐसी नीतियाँ बनाएँ जिससे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं की प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण हो सके एवं नागरिकों का कल्याण हो।
   (ii) राज्य ऐसी नीतियों का निर्माण करेगा जिससे आय की असमानताओं को कम किया जा सके। विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए नागरिकों के समूहों के मध्य भी अवसरों की असमानता, को समाप्त किया जा सके।

TOUCH 'n PASS

2. **राज्य द्वारा अनुसरणीय नीति निदेशक तत्त्व (अनुच्छेद 39)**—राज्य अपनी नीतियों का निर्माण करके यह सुनिश्चित करेगा कि—
   (i) लिंग भेद के कारण वेतन में अन्तर न हो अर्थात् स्त्री एवं पुरुष के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का भुगतान किया जाए।
   (ii) नीति निर्धारण इस प्रकार हो कि धन एवं उत्पादन साधनों का आम नागरिकों के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो सके। नीति का निर्धारण कुछ इस प्रकार का हो जो सामूहिक हित के लिए सर्वोत्तम हो और जिससे समुदाय के भौतिक संसाधन एवं स्वामित्व का नियन्त्रण ठीक प्रकार से हो सके।
   (iii) राज्य ऐसी नीतियों का निर्धारण करे जिससे कि पुरुष एवं स्त्रियों के स्वास्थ्य, शक्ति एवं बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो सके एवं किसी भी नागरिक को आर्थिक तंगी से विवश होकर कोई ऐसा रोजगार न करना पड़े जो उसकी आय एवं शक्ति के अनुकूल न हो।
   (iv) ऐसे स्वतन्त्र, गरिमापूर्ण वातावरण एवं सुविधाएँ दी जाए जिससे नागरिकों को स्वस्थ विकास का अवसर प्राप्त हो और नागरिकों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा हो सके।
   (v) सभी नागरिकों को जीविकोपार्जन करने के पर्याप्त साधन को प्राप्त करने का अधिकार मिल सके।
3. **समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता (अनुच्छेद 39(A))**—राज्य को विशेष रूप से यह सुनिश्चित करना होगा कि आर्थिक या किसी अन्य नियोंग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए। उपयुक्त विधान या अन्य रीति से नागरिकों के नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था राज्य सरकार को करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विधिक तत्त्व इस प्रकार से कार्य करे कि नागरिकों को समान रूप से न्याय सुलभ हो सके।
4. **ग्राम पंचायतों का संगठन (अनुच्छेद 40)**—ग्राम पंचायतों को राज्य सरकार द्वारा ऐसी शक्तियों एवं प्राधिकार प्रदान किए जाएँगे जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो साथ-ही-साथ ग्राम पंचायतों के संगठन के लिए राज्य को उचित प्रयत्न करने होंगे।
5. **कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार (अनुच्छेद 41)**—राज्य को अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के अन्दर अपने नागरिकों को लोक सहायता देने का प्रभावी प्रबन्ध करना होगा जिससे वे काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, नि:शक्तता तथा अन्य किसी अभाव में जीवनयापन करने को मजबूर न हों।
6. **काम की मानवोचित एवं न्याय संगत तथा प्रसूति सहायता की व्यवस्था (अनुच्छेद 42)**—राज्य सरकार को ऐसी नीतियों का निर्धारण करना होगा जिससे नागरिको को न्याय संगत एवं मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता सुनिश्चित रूप से प्राप्त हो सके।
7. **कर्मकारों की निर्वाह मजदूरी आदि (अनुच्छेद 43)**—राज्य सरकार द्वारा ऐसी नीतियों के निर्धारण की अपेक्षा की जाती है जिससे उचित विधान, आर्थिक संगठन या किसी अन्य रीति से कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, अच्छे जीवन-स्तर और अवकाश के सम्पूर्ण उपभोग कराने वाली दशाएँ एवं सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर नागरिकों को प्राप्त हो सकें। विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सरकारी आधार पर बढ़ाने के लिए भी नीतियों का निर्धारण राज्य सरकार को करना होगा।
8. **उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना (अनुच्छेद 43(A))**—राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों या संगठन के प्रबन्ध हेतु कर्मचारियों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए अन्य रीति से कदम उठाएगा।
9. **नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार संहिता (सिविल कोड) (अनुच्छेद 44)**—राज्य सरकारों को इस दिशा में प्रयत्नशील रहना होगा कि प्रत्येक नागरिक को एकसमान व्यवहार संहिता (सिविल कोड) प्राप्त हो सके।
10. **बालकों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध (अनुच्छेद 45)**—राज्य ऐसी नीतियों का निर्धारण करेगा जिससे उस राज्य के प्रत्येक 14 वर्ष तक की आयु के बालकों की नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हो सके।
11. **छ: वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए शिशु देखभाल का प्रबन्ध (अनुच्छेद 45(A))**—संविधान के 46वें संशोधन के पश्चात् नए प्रावधान के अनुसार, राज्य सरकार को राज्य के सभी बालकों के लिए उनके 6 वर्ष की आयु पूरी करने तक उनकी बाल्यावस्था देख-रेख और उनको शिक्षा देने का उचित प्रबन्ध करना होगा।

12. **अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों की अर्थ एवं शिक्षा सम्बन्धी हितों की रक्षा एवं अभिवृद्धि (अनुच्छेद 46)**—राज्य को ऐसी नीतियों का निर्धारण करना चाहिए जिससे समाज के दुर्बल वर्ग विशेष तौर से अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के अर्थ एवं शिक्षा सम्बन्धी हितों की रक्षा हो सके साथ-ही-साथ उन्हें सामाजिक अन्याय एवं अन्य प्रकार के शोषणों से बचाया जा सके।
13. **पोषाहार स्तर, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने एवं लोक स्वास्थ्य के सुधार हेतु (अनुच्छेद-47)**—राज्य ऐसी नीतियों का निर्धारण करेगा जिससे वह अपने राज्य के नागरिकों के पोषाहार स्तर एवं जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकें। लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपना परम कर्त्तव्य मानते हुए ऐसी नीतियों का निर्धारण करना होगा जिससे मुख्य रूप से मादक पेयों एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न इनके उपयोगों को रोका जा सके।
14. **कृषि एवं पशुपालन के संगठन का दायित्व (अनुच्छेद-48)**—राज्य ऐसी नीतियों के निर्धारण का प्रयास करेगा जो कृषि एवं पशुपालन को आधुनिक एवं वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने में सहायक हो और मुख्य रूप से गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू एवं वाहक पशुओं की नस्लों के परीक्षण एवं सुधार में सहायक हों एवं उनके वध पर रोक लगाने में सक्षम हों।
15. **पर्यावरण का संरक्षण, वन्य जीवों और वन की रक्षा एवं उनका संवर्धन (अनुच्छेद-48(A))**—राज्य को ऐसी नीतियों का निर्धारण करना होगा जिससे देश के पर्यावरण का संरक्षण और सुधार हो सके। वन एवं वन्य जीवों की रक्षा एवं संवर्धन भी हो।
16. **राष्ट्रीय स्मारकों, वस्तुओं एवं स्थानों का संरक्षण (अनुच्छेद-49)**—राष्ट्रीय स्मारकों, वस्तुओं एवं स्थानों के संरक्षण हेतु प्रभावी नीति का निर्धारण करना राज्य का परम कर्त्तव्य होगा।
17. **राज्य की लोक सेवाओं में न्याय पालिका से कार्यपालिका का पृथक्करण (अनुच्छेद-50)**—नीतियों का निर्धारण कुछ इस प्रकार हो जिससे लोक सेवा में न्याय पालिका का कार्य पालिका से पृथक्करण किया जा सके।
18. **अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति की अभिवृद्धि (अनुच्छेद-51)**—इसके अन्तर्गत राज्य ऐसी नीतियों को बनाने का प्रयास करेगा जिससे निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हो सके—
    (i) अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति की अभिवृद्धि।
    (ii) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थ द्वारा निपटाने का प्रोत्साहन का प्रयास।
    (iii) राष्ट्रों के मध्य सम्मानपूर्ण एवं न्याय संगत सम्बन्ध बनाने का प्रयास।
    (iv) एक-दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं बाध्यताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि हेतु।

प्र.7. नीति निदेशक तत्त्वों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

नीति निदेशक तत्त्वों का महत्त्व
(Importance of Directive Principles of Policy)

नीति निदेशक तत्वों की आलोचना की गयी है, उसका यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि वे बिल्कुल व्यर्थ और महत्वहीन हैं। वास्तव में संवैधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से निदेशक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है। इन तत्वों के महत्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है—

1. **निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति**—यद्यपि इन निदेशक तत्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इनके पीछे जनमत की सत्ता होती है जो प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अत: जनता के प्रति उत्तरदायी कोई भी सरकार इनकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकती। शासन द्वारा किया गया इन तत्वों का उल्लंघन देश में शक्तिशाली विरोध को जन्म देगा। व्यवस्थापिका के भीतर शासन को विरोधी दल के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा और व्यवस्थापिका के बाहर इसे निर्वाचन के समय निर्वाचकों को जवाब देना ही होगा। **प्रो० पायली** के अनुसार, **"ये निदेशक तत्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं और जिनके द्वारा इन तत्वों का उल्लंघन किया जाता है वे ऐसा कार्य उत्तरदायित्व की स्थिति से अलग होने की जोखिम पर ही करते हैं।"** **अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर** ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि **"कोई लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल संविधान के चतुर्थ भाग के उपबन्धों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता।"**

2. **सरकार का मार्गदर्शक**—नीति-निदेशक तत्त्व सरकार के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव के परिणामस्वरूप अलग-अलग राजनैतिक दलों को शासन करने का अवसर प्राप्त होता है। ऐसे में बहुमत प्राप्त दल को नीति-निदेशक तत्त्वों को ध्यान में रखकर नीतियों का निर्माण करना होता है।
3. **कल्याणकारी राज्य की स्थापना**—नीति निदेशक सिद्धांतों के निर्माण के पीछे कल्याणकारी राज्य की स्थापना है। नीति निदेशक तत्त्वों के समस्त प्रावधानों में समाज कल्याण से सम्बन्धित प्रावधान हैं।
4. **मौलिक अधिकारों के पूरक**—नीति-निदेशक तत्त्व मौलिक अधिकारों के पूरक होते हैं क्योंकि मौलिक अधिकारों का उपयोग ठीक प्रकार से तभी किया जा सकता है जब सरकार नीति-निदेशक तत्त्वों के माध्यम से उचित परिवेश एवं नीतियों का निर्माण करे।
5. **नैतिक आदर्शों के रूप में महत्व**—यदि निदेशक तत्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाय, तो इस रूप में भी इनका अपार महत्व है। ब्रिटेन में मैग्नाकार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इनका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप में यह आशा की जा सकती है कि ये निदेशक तत्व भारतीय शासन की नीति को निदेशित और प्रभावित करेंगे। **एलेन ग्लेडहिल** (Allen Gledhill) के शब्दों में, **''अनगिनत व्यक्तियों के जीवन नैतिक आदर्शों के फलस्वरूप सुधरे हैं और ऐसे उदाहरण भी मिलने कठिन नहीं हैं जबकि उच्च नैतिक आदर्शों का राष्ट्र के इतिहास पर प्रभाव पड़ा हो।''**
6. **शासन के मूल्यांकन का आधार**—नीति निदेशक तत्वों द्वारा जनता को शासन की सफलता-असफलता की जाँच करने का मापदण्ड भी प्रदान किया जाता है। शासक दल के द्वारा अपने मतदाताओं को निदेशक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में अपनी सफलताएँ बतानी होंगी और शासन शक्ति पर अधिकार करने के इच्छुक राजनीतिक दल को इन तत्वों की क्रियान्विति के प्रति अपनी तत्परता और उत्साह दिखाना होगा। इस प्रकार निदेशक तत्व जनता को विभिन्न दलों की तुलनात्मक जाँच करने के योग्य बना देंगे।
7. **सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के साधन**—हमने सन् 1947 में राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, लेकिन राजनीतिक स्वतन्त्रता देश की सामान्य जनता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधारने का एक साधन ही है। इस प्रकार की सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति का मार्ग निदेशक तत्वों में बताया गया है। अतः निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करते हुए सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत नवीन युग में प्रवेश किया जा सकता है।
8. **संविधान की व्याख्या में सहायक**—संविधान के अनुसार नीति निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं जिसका तात्पर्य यह है कि देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी सभी सत्ताएँ उनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण यह आशा की जाती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्याख्या के कार्य में निदेशक तत्वों को उचित महत्व देंगे। **एम. सी. सीतलवाड** के शब्दों में, ''राज्य नीति के इन मूलभूत सिद्धान्तों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी उनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोगी प्रकाश-स्तम्भ (Useful Beacon-Light) का कार्य किया जाता है।''
9. **कार्यपालिका प्रधान इनका दुरुपयोग नहीं कर सकते हैं**—निदेशक तत्वों के पक्ष में एक बात यह कही जा सकती है कि यद्यपि संविधान सभा के सदस्यों और कुछ संविधानवेत्ताओं ने यह भय प्रकट किया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर किसी विधेयक पर अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकते हैं कि वह निदेशक तत्वों के प्रतिकूल है, लेकिन व्यवहार में ऐसी घटना की सम्भावना बहुत कम है, क्योंकि संसदात्मक शासन में नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान लोकप्रिय विधानमण्डल और मन्त्रिपरिषद द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है। **डॉ. अम्बेडकर** के शब्दों में, **''विधायिका द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल निदेशक तत्वों का प्रयोग नहीं कर सकते।''**

निदेशक तत्व इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं कि इनमें गांधीवादी आदर्शों को स्थान दिया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि **वैधानिक शक्ति प्राप्त न होने पर भी निदेशक तत्वों का अपना महत्व और उपयोगिता है।**

❑

UNIT-IV

मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों के मध्य संघर्ष का इतिहास

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. द्वितीय संविधान संशोधन कब हुआ था?

उत्तर द्वितीय संविधान संशोधन 1955 में हुआ था।

प्र.2. किस अनुच्छेद में संविधान संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है?

उत्तर संविधान के अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

प्र.3. संविधान में संशोधन कितने प्रकार से होता है?

उत्तर संविधान में संशोधन तीन प्रकार से होता है—

1. संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन,
2. संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन,
3. संसद के विशेष बहुमत तथा आधे राज्य विधानमण्डलों की संस्तुति के उपरान्त संशोधन।

प्र.4. अनुच्छेद-169 किस विषय से सम्बन्धित है?

उत्तर अनुच्छेद-169 राज्यों में विधान परिषद के गठन से सम्बन्धित है।

प्र.5. संसद में अंग्रेजी भाषा का उपयोग किस अनुच्छेद से सम्बन्धित है?

उत्तर अनुच्छेद 343 से।

प्र.6. आदिवासी क्षेत्र का प्रशासन किस अनुसूची के अन्तर्गत है?

उत्तर छठीं अनुसूची के अन्तर्गत।

प्र.7. संरचना के मूल संरचना में सम्मिलित दो घटकों को लिखिए।

उत्तर 1. संविधान की सर्वोच्चता।
2. राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता।

प्र.8. उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ किन अनुच्छेदों के अधीन है?

उत्तर अनुच्छेद 32, 136, 141 और 142 के अधीन।

प्र.9. उच्च न्यायालयों की शक्ति किन अनुच्छेदों के अधीन है?

उत्तर अनुच्छेद 226 तथा 277 के अधीन।

प्र.10. मौलिक अधिकार तथा नीति-निदेशक सिद्धान्त में निहित किन्हीं दो अन्तरों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. मौलिक अधिकार न्याय-योग्य हैं, जबकि निदेशक सिद्धान्त न्याय-योग्य नहीं हैं।
2. मौलिक अधिकार राजनीतिक लोकतन्त्र की व्यवस्था करते हैं जबकि नीति-निदेशक सिद्धान्त आर्थिक लोकतन्त्र की नींव को सुदृढ़ करते हैं।

TOUCH 'n PASS

प्र.11. नीति-निदेशक सिद्धान्तों की किन्हीं दो कमियों की विवेचना कीजिए।

उत्तर 1. ये सिद्धान्त न्याय-योग्य नहीं हैं, क्योंकि इनको न्यायालयों द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता, न ही राज्य उनका कानूनी रूप से पालन करने को बाध्य है।

2. संविधान का यह अध्याय केवल उद्देश्यों की व्याख्या करता है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों का वर्णन नहीं करता है।

प्र.12. लचीला संविधान क्या है?

उत्तर लचीला संविधान वह होता है जिसमें आसानी से संशोधन किया जा सके।

प्र.13. संविधान संशोधन प्रक्रिया में कौन-सी संस्थाएँ सम्मिलित होती हैं?

उत्तर संविधान संशोधन की प्रक्रिया एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें निम्नलिखित संस्थाएँ सम्मिलित होती है—1. संसद, 2. राज्यों के विधानमण्डल तथा 3. राष्ट्रपति।

प्र.14. संविधान संशोधन में राष्ट्रपति की क्या भूमिका है?

उत्तर संविधान संशोधन बिल दोनों सदनों से अलग-अलग पास होने पर राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर संशोधन प्रभावी हो जाता है।

प्र.15. क्या राष्ट्रपति संशोधन बिल को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है?

उत्तर संसद के दोनों सदनों से पास होने के बाद अथवा आधे राज्यों के अनुसमर्थन की प्राप्ति के बाद संशोधन बिल राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति हेतु भेजा जाता है। साधारण बिल को तो राष्ट्रपति एक बार पुनर्विचार हेतु वापस भेज सकता है परन्तु संशोधन बिल पर वह ऐसा नहीं कर सकता और उसे स्वीकृति देनी ही पड़ती है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. क्या मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं
(Complement of One Another)

मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धान्तों में उपर्युक्त वर्णित सम्बन्ध से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि इनमें कोई अन्तर्निहित विरोध या संघर्ष है, अपितु वस्तुत: वे एक-दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों का लक्ष्य एक ही है और वह है—व्यक्तित्व का विकास तथा लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना । **ग्रेनविल ऑस्टिन** ने लिखा है, "संविधान में इन्हें (मौलिक अधिकार और नीति निदेशक सिद्धान्त) इस आशा और अपेक्षा से सम्मिलित किया गया था कि एक दिन भारत में वास्तविक स्वाधीनता का वृक्ष लहलहाएगा।" **'अधिकार'** और **'सिद्धान्त'** इस प्रकार भारत के भूत और वर्तमान को भविष्य से जोड़ देते हैं तथा भारत में सामाजिक क्रान्ति के लक्ष्य को शक्ति प्रदान करते हैं। भूतपूर्व न्यायाधीश **श्री के. सदानन्द हेगड़े** ने कहा है कि "सिद्धान्तत: एक ही संविधान के दो भागों में कोई असंगति नहीं हो सकती। राज्य-नीति के निदेशक तत्वों को अपनाकर हमारे संविधान-निर्माताओं ने कोई असंगति उत्पन्न नहीं की। उनका प्रयत्न वैयक्तिक अधिकार और सामाजिक कल्याण में समन्वय स्थापित करना था।" **डॉ. गजेन्द्र गडकर** ने भी कहा है कि "भारतीय लोकतन्त्र संविधान के भाग तीन में नागरिकों को दिए गए मौलिक अधिकारों का पालन करते हुए भाग चार में निहित सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न करने को वचनबद्ध है।" **चन्द्रभवन बोर्डिंग एण्ड लॉजिंग, बैंगलौर** बनाम **मैसूर राज्य** के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अधिक स्पष्टतापूर्वक कहा कि "व्यापार की स्वतन्त्रता का अर्थ घोषणा करने की स्वतन्त्रता नहीं है। संविधान के उपबन्धों को प्रगति-मार्ग बाधाओं के अनुरूप खड़ा नहीं किया जा सकता। यह सोचना मिथ्या धारणा है कि हमारे संविधान में केवल अधिकारों की व्यवस्था है, कर्तव्यों की नहीं। जबकि तीसरे भाग में प्रदान किए गए अधिकार मौलिक अधिकार हैं, चौथे भाग में दिए गए निर्देश देश के शासन में मूलभूत हैं। संविधान के तीसरे और चौथे भाग में दिए गए उपबन्धों में हमें कोई विरोध प्रतीत नहीं होता है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं।" वास्तव में, इन दोनों के बीच किसी प्रकार का संघर्ष नहीं हो सकता है, ये एक-दूसरे के पूरक हैं और आवश्यकता इस बात की है कि मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सभी सम्बद्ध पक्षों द्वारा इसी दृष्टिकोण को अपनाया जाए।

प्र.2. मौलिक अधिकार व नीति निदेशक तत्त्व के मध्य सम्बन्ध की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

मौलिक अधिकार व नीति निदेशक तत्त्व के मध्य सम्बन्ध की अवधारणा (Concept of Relation between Fundamental Rights and Directive Principles of Policy)

मौलिक अधिकार व नीति निदेशक तत्त्व के मध्य सम्बन्ध की अवधारणा निम्नलिखित है—

1. मौलिक अधिकार राजनीतिक न्याय की स्थापना का वर्णन करता है, जबकि नीति निदेशक तत्त्व सामाजिक तथा आर्थिक न्याय को बढ़ावा देते हैं। दोनों के पूरक होने से समस्त लोकतांत्रिक व्यवस्था की कार्य-प्रणाली को बढोत्तरी मिल सकती है।
2. मौलिक अधिकार इस बात की जानकारी देता है कि नागरिकों को क्या दिया जा चुका है जबकि नीति निदेशक तत्त्व यह बताते हैं कि नागरिकों को अभी और क्या दिया जाना बाकी है। इस तरीके से नीति निदेशक तत्त्व मौलिक अधिकार का मार्गदर्शन करते हैं।
3. मौलिक अधिकार व्यक्तिगत हितों पर बल देते हैं और नीति निदेशक तत्त्व समाजवाद, उदारवाद, गांधीवाद जैसे विचारों को बढावा देते हैं। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक होकर व्यक्ति और समाज में संतुलन स्थापित कर सकते हैं।
4. मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ मामले में भाग 3 और भाग 4 को एक दूसरे का पूरक बताया गया है। उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश मामले में स्पष्ट किया गया है कि भाग 3 एवं भाग 4 एक दूसरे के सहायक हैं।
5. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान मामले में कहा गया कि निदेशक तत्त्व देश के शासन के आधारभूत सिद्धांत हैं और संविधान के भाग 3 के उपबंध को इन सिद्धांतों के साथ ही समझा जाना चाहिए।

प्र.3. नीति निदेशक तत्त्व मौलिक अधिकारों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, चर्चा कीजिए।

उत्तर नीति निदेशक तत्त्व मौलिक अधिकारों से अधिक महत्वपूर्ण निम्नलिखित प्रकार से है—

1. नीति निदेशक तत्त्व, मौलिक अधिकारों में संशोधन का आधार होते है। जिनमें 86वाँ संविधान संशोधन का आधार व संपत्ति के अधिकार को कानूनी अधिकार बनाने का आधार भी नीति निदेशक तत्त्व ही हैं।
2. मौलिक अधिकारों पर युक्ति-युक्त निर्बंधन देश की एकता-अखंडता, लोक-व्यवस्था और सदाचार आदि के आधार पर किया जाता है।
3. संविधान की प्रस्तावना में जिस सामाजिक-आर्थिक न्याय पर अधिक बल दिया गया है उसमें नीति निदेशक तत्त्वों का महत्व स्पष्ट रूप से वर्णित है।
4. मौलिक अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों और राज्य के बीच के सम्बन्ध का वर्णन किया गया है, लेकिन नीति-निदेशक तत्त्वों में राज्यों के संबंध तथा उनकी अन्तर्राष्ट्रीय नीति वर्णन है। इस तरह जहाँ मौलिक अधिकार का राष्ट्रीय महत्त्व होता है, वही नीति-निदेशक तत्त्वों का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व होता है।

प्र.4. संसद के विशिष्ट बहुमत और राज्य विधानमण्डलों के अनुमोदन से संशोधन की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर इनमें वे व्यवस्थाएँ आती हैं जिसमें संशोधन के लिए संसद के विशिष्ट बहुमत अर्थात् संसद के दोनों सदनों द्वारा पृथक-पृथक अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से विधेयक पारित होना चाहिए तथा इस विधेयक का राज्यों के कुल विधानमण्डलों में से कम से कम आधे विधानमण्डलों से स्वीकृत होना आवश्यक है। इस वर्ग में संविधान की निम्नलिखित व्यवस्थाएँ हैं—

(i) राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनुच्छेद 54) (ii) राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति (अनुच्छेद 55) (iii) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 73) (iv) राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 162) (v) संघीय क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 241) (vi) संघीय न्यायपालिका (संविधान के भाग 5 का अध्याय 4) (vii) राज्यों में उच्च न्यायालय (भाग 6 का अध्याय 5) (viii) संघ तथा राज्यों में विधायी सम्बन्धी (भाग 11 का अध्याय 1) (ix) सातवीं अनुसूची में से कोई भी सूची (x) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व (xi) संविधान के संशोधन की प्रक्रिया से सम्बन्धित उपबन्ध (अनुच्छेद 368)।

24वें संवैधानिक संशोधन (1971) में कहा गया है कि जब कोई संविधान संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होकर राष्ट्रपति के समक्ष उनकी अनुमति के लिए रखा जाय, तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी अनुमति दे देनी होगी।

प्र.5. गोलकनाथ विवाद का परीक्षण कीजिए।

उत्तर गोलकनाथ विवाद में निर्णय (1967) एवं 24वाँ संवैधानिक संशोधन—सर्वोच्च न्यायालय ने 17 फरवरी, 1967 को 'गोलकनाथ विवाद' पर निर्णय (6-5 के बहुमत से निर्णय) देते हुए अपने पूर्व निर्णयों को अस्वीकार कर दिया। अब सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद को संविधान के भाग तीन (मूल अधिकार) के किसी उपबन्ध को इस तरह से संशोधित करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा जिससे कि मूल अधिकार छिन जायें या सीमित हो जायें।

उपर्युक्त निर्णय से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि संसद आर्थिक या सामाजिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए या संविधान में दिये गये नीति निदेशक तत्वों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए कोई कार्य नहीं कर सकती थी। अत: संविधान में इस प्रकार का संशोधन करने के प्रस्ताव पर विचार किया जाने लगा जिससे गोलकनाथ विवाद में दिया गया निर्णय रद्द हो सके। 1971 ई० में 24वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर यह निश्चित कर दिया गया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबन्ध को (जिसमें मूल अधिकार भी आते हैं) संशोधित करने का अधिकार होगा। 1971 ई० में ही 25वाँ संवैधानिक संशोधन भी किया गया जिसके आधार पर मूल अधिकारों की तुलना में नीति निदेशक तत्वों को उच्च स्थिति प्रदान करने का प्रयत्न किया गया था।

प्र.6. केशवानन्द भारती विवाद समझाइए।

उत्तर केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य विवाद में संविधान के 24वें और 25वें संशोधन को चुनौती दी गई। इस विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय ने अप्रैल 1973 में निर्णय दिया। इस निर्णय में 24वें संशोधन की वैधता को स्वीकार किया, लेकिन 25वें संवैधानिक संशोधन के कुछ प्रावधानों को अवैध घोषित कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय की दो प्रमुख बातें हैं—**प्रथम**, संसद मूल अधिकार सहित संविधान की किसी भी व्यवस्था को सीमित, संशोधित, परिवर्तित कर सकती है; **द्वितीय**, लेकिन संसद संविधान के मूल ढाँचे को नष्ट नहीं कर सकती है और न ही उसे बदल सकती है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस निर्णय में **'संविधान के मूल ढाँचे'** की धारणा का प्रतिपादन किया। अपने इस निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने **'मिनर्वा मिल्स विवाद'** (1980) में दोहराया है, अत: संवैधानिक दृष्टि से आज भी यह निर्णय मान्य है।

प्र.7. मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निदेशक तत्त्वों के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

***अथवा* राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्त मौलिक अधिकारों से किस प्रकार भिन्न हैं?**

उत्तर नीति-निदेशक सिद्धान्तों तथा मौलिक अधिकारों में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

1. संविधान के द्वारा मौलिक अधिकार नागरिकों को दिए गए हैं परन्तु नीति-निदेशक सिद्धान्त केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मार्गदर्शन के लिए आदेश मात्र होते हैं।
2. मौलिक अधिकारों के पीछे कानूनी शक्ति है परन्तु नीति-निदेशक सिद्धान्तों के विषय में ऐसा नहीं है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर
(Difference between Fundamental Rights and Directive Principles)

भारतीय संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों तथा भाग चार में निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों तथा मौलिक अधिकारों में मूलभूत अन्तर है। मौलिक अधिकार जहाँ नागरिकों को ऐसी सुविधाएँ प्रदान करते हैं जिन्हें उनके सर्वांगीण विकास की आवश्यक शर्त कहा जा सकता है, वहीं राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त मनुष्यों के इस सर्वांगीण विकास की आवश्यक परिस्थितियों के निर्माण के लिए कुछ निषेध आज्ञाएँ हैं। **ग्लेडहिल** के अनुसार, 'मौलिक अधिकार राज्य के लिए कुछ निषेध आज्ञाएँ हैं। इनके द्वारा राज्य को यह आदेश दिया गया है कि उसे लोगों के इन अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त इसके विरुद्ध यह बतलाते हैं कि राज्य को क्या करना चाहिए। दोनों में मूल अन्तर निम्न प्रकार हैं—

1. जहाँ मौलिक अधिकार न्यायालयों द्वारा लागू हो सकते हैं, वहाँ राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त न्यायालयों द्वारा लागू नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में, प्रथम वादयोग्य (justiciable) हैं तथा द्वितीय वादयोग्य नहीं (non-justiciable) हैं।

2. मौलिक अधिकार नकारात्मक हैं जबकि निदेशक सिद्धान्त सकारात्मक हैं। मौलिक अधिकारों की प्रकृति इस रूप में नकारात्मक है कि ये राज्य के किन्हीं कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। इसके प्रतिकूल नीति निदेशक सिद्धान्त राज्य को किन्हीं निश्चित कार्यों को करने का आदेश देते हैं।
3. जहाँ मौलिक अधिकारों के द्वारा राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना की गई है, वहाँ नीति निदेशक सिद्धान्तों द्वारा आर्थिक-लोकतन्त्र की स्थापना होती है। **ग्रेनविल ऑस्टिन** ने इसी कारण इन निदेशकों को 'घोषणा' कहा है—आर्थिक स्वाधीनता की घोषणा।
4. मौलिक अधिकारों का कानूनी महत्व है जबकि निदेशक सिद्धान्त 'नैतिक आदेश' मात्र हैं। **जी० एन० जोशी** ने इसी कारण लिखा है कि "राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त मानवीय आदर्शवाद के ढेर हैं जिन्हें ऐसे व्यक्तियों ने संगृहीत किया है जो दीर्घकालीन स्वातन्त्र्य संघर्ष के पश्चात् स्वप्निल भावातिरेक की स्थिति में थे।"
5. मौलिक अधिकारों को (अनुच्छेद 21 में वर्णित अधिकारों को छोड़कर) अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत घोषित आपातकालीन स्थिति के प्रवर्तन काल में स्थगित किया जा सकता है, जबकि निदेशक तत्वों का जब तक क्रियान्वयन नहीं होता तब तक वे स्थायी रूप से स्थगन की अवस्था में ही बने रहते हैं।
6. मौलिक अधिकार सार्वभौम नहीं हैं, उन पर कुछ प्रतिबन्ध हैं, जबकि निदेशक सिद्धान्तों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धान्तों में महत्व सम्बन्धी भेद भी है। हमारे मूल संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों को निदेशक सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई थी। इसी आधार पर **कुरेशी** बनाम **बिहार राज्य** के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह विचार प्रकट किया था कि "राज्य को चाहिए कि वह निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने के लिए कानून बनाए, लेकिन उनके द्वारा बनाए गए कानूनों से मौलिक अधिकारों को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए, नहीं तो उनकी सुरक्षा सम्बन्धी धाराएँ निरर्थक समझी जायेंगी।' लेकिन प्रारम्भ से ही एक वर्ग का विचार था कि निदेशक सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों की अपेक्षा महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। **श्री बी० एन० राव** ने संविधान निर्माण के समय ही स्पष्ट कहा था कि संघर्ष की स्थिति में मौलिक अधिकारों की अपेक्षा निदेशक सिद्धान्तों को प्रमुखता दी जानी चाहिए, अन्यथा जनहितकारी व्यवस्थापन सम्भव नहीं हो सकेगा। संविधान का चतुर्थ संशोधन अधिनियम प्रस्तुत करते हुए **पं० नेहरू** ने कहा था कि "जहाँ कहीं किसी मौलिक अधिकार एवं निदेशक सिद्धान्त में परस्पर विरोध हों, वहाँ निदेशक सिद्धान्तों को वरीयता दी जानी चाहिए।"

प्र.2. संविधान संशोधन के प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

संविधान संशोधन के प्रकार
(Types of Constitutional Amendment)

अनुच्छेद-368 के अनुसार दो प्रकार के संशोधन आते हैं—

पहला संसद के विशेष बहुमत द्वारा तथा दूसरा, आधे राज्यों द्वारा या साधारण बहुमत के माध्यम से अनुमोदन द्वारा, किन्तु इसके अतिरिक्त संविधान के कुछ अन्य उपबन्ध संसद के साधारण बहुमत से ही संशोधित हो सकते हैं, यह बहुमत प्रत्येक सदन में उपस्थित एवं मतदान (साधारण विधायी प्रक्रिया) द्वारा होता है। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के संशोधन अनुच्छेद-368 के अन्तर्गत नहीं होते।

इस प्रकार संविधान में संशोधन तीन प्रकार से होता है—

1. संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन,
2. संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन,
3. संसद के विशेष बहुमत तथा आधे राज्य विधानमण्डलों की संस्तुति के उपरान्त संशोधन।

संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन
(Amendment by Simple Majority of Parliament)

जब सदन में किसी विषय, उपस्थित होकर वोट देने वाले सदस्यों का 50% से अधिक के पक्ष में मतदान होता है तो उसे 'साधारण बहुमत' कहा जाता है। संविधान के कुछ उपबन्धों में संशोधन संसद के सामान्य बहुमत और सामान्य विधेयक के लिए विनिहित विधायी प्रक्रिया द्वारा संसोधन किया जा सकता है। संविधान के अंतर्गत निम्नलिखित विषयों में साधारण बहुमत (simple majority) से कार्यवाही की जा सकती है—

1. अनुच्छेद 2-नए राज्यों की स्थापना।

2. अनुच्छेद 3–नए राज्यों का गठन और मौजूदा राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नाम में बदलाव।
3. भाग 2–राज्य के नागरिकों को नागरिकता की प्राप्ति एवं उसकी समाप्ति।
4. अनुच्छेद 169–राज्यों में विधान परिषदों का गठन ।
5. अनुच्छेद 100–संसद में गणपूर्ति।
6. अनुच्छेद 106–संसद के सदस्यों का वेतन तथा भत्ते का निर्धारण।
7. संसद में प्रक्रिया के नियम।
8. संसद, उसके सदस्यों और समितियों के विशेषाधिकार।
9. अनुच्छेद 343–संसद में अंग्रेजी भाषा का उपयोग।
10. सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या।
11. सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाना
12. राजभाषा का प्रयोग।
13. संसद और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचन की व्यवस्था करना।
14. निर्वाचन के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण।
15. केंद्रशासित प्रदेश।
16. दूसरी अनुसूची–राष्ट्रपति, न्यायाधीश, लोकसभा अध्यक्ष, राज्यपाल आदि के लिए उपलब्धियाँ, विशेषाधिकार आदि में संशोधन।
17. पाँचवीं अनुसूची–अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण।
18. छठी अनुसूची–आदिवासी क्षेत्र का प्रशासन।

संसद के विशेष बहुमत द्वारा
(Amendment by Special Majority of Parliament)

संविधान के अधिकांश प्रावधानों का संशोधन संसद के विशेष बहुमत द्वारा ही किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि संसद के दोनों सदनों के कुल सदस्यों का बहुमत (अर्थात् 38 प्रतिशत से अधिक) और प्रत्येक सदन के उपस्थित और मतदान के सदस्यों के दो-तिहाई का बहुमत कुल सदस्यता अभिव्यक्ति का अर्थ सदन के सदस्यों की कुल संख्या से है, जिसमें कुछ रिक्तियाँ एवं अनुपस्थिति को भी गिना जाता है।

विशेष बहुमत—सदन में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई (2/3) बहुमत, जो सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत (50 फीसदी से) अधिक हो। यहाँ कुल सदस्य संख्या का अर्थ है, कि सदन की रिक्त सीटें और अनुपस्थित सदस्य को भी गिना जाएगा।

कुल सदस्यता = उपस्थित सदस्य + अनुपस्थित सदस्य + रिक्त सीटें

विशेष बहुमत की आवश्यकता विधेयक के तीसरे पठन-चरण पर केवल मतदान के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। परन्तु बचाव के लिए विधेयक की सम्पूर्ण अवस्थाओं के सम्बन्ध में सभा के नियमों में विशेष बहुमत की आवश्यकता का प्रावधान है।

इस प्रक्रिया से संविधान संशोधन व्यवस्था में निम्न शामिल हैं—

1. मूल अधिकार
2. राज्य के नीति निदेशक तत्त्व
3. उद्देशिका और
4. वे सभी प्रावधान, जो प्रथम एवं तृतीय श्रेणियों से सम्बन्धित नहीं हैं।

संसद के विशेष बहुमत और राज्यों की सहमति से संशोधन

संसद के विशेष बहुमत द्वारा नीति के संघीय स्वरूप से सम्बन्धित संविधान के प्रावधानों को संशोधित किया जा सकता है । इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि साधारण बहुमत के माध्यम से आधे राज्य विधानमण्डलों में उनको मंजूरी मिली हो। यदि एक, कुछ या शेष राज्य विधेयक पर कोई कदम नहीं उठाते तो इसका कोई असर नहीं पड़ता। जब आधे राज्य उन्हें अपनी संस्तुति देते हैं, तो औपचारिकता पूर्ण हो जाती है। संसद से पारित होने के बाद राज्य की विधायिका को सामान्य बहुमत से इस संशोधन

विधेयक को सहमति देनी होती है। राज्यों के विधेयक को स्वीकृति देने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। महज आधे राज्य की स्वीकृति होने पर संविधान संशोधित हो जाएगा, बाकी के राज्य बिल को पारित करें या ना करें इससे कोई फर्क नही पड़ता है।

यहाँ पर राज्यों को विधेयक पारित करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नही की गई है, इसका तात्तपर्य है कि आधे राज्य चाहे तो मिलकर संशोधन विधेयक को रोक सकते हैं। निम्नलिखित प्रावधान के संशोधन के लिए विशेष बहुमत और राज्यों का समर्थन आवश्यक है—

1. अनुच्छेद 54 और 55–राष्ट्रपति का निर्वाचन और उसकी प्रक्रिया।
2. अनुच्छेद 73, 162–संघ तथा राज्यों की कार्यपालिका की शक्ति का विस्तार करना।
3. अनुच्छेद 124-147, 214-231, 241–सुप्रीम कोर्ट तथा राज्य न्यायपालिका।
4. अनुच्छेद 245-255–संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्ति का वितरण।
5. अनुसूची 4–संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में।
6. सातवीं अनुसूची की किसी विषय में।
7. अनुच्छेद 368 के उपबन्धों संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया में।

प्र.3. संशोधन प्रक्रिया की आलोचना के प्रमुख आधारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संशोधन प्रक्रिया की आलोचना
(Criticism of Revision Process)

आलोचकों ने संविधान संशोधन प्रक्रिया की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है—

1. संविधान संशोधन की शक्ति संसद में निहित है। इस तरह अमेरिका के विपरीत राज्य विधानमंडल राज्य, मंत्रिपरिषद के निर्माण या समाप्ति के प्रस्ताव के अतिरिक्त कोई विधेयक या संविधान संशोधन का प्रस्ताव नहीं ला सकता। यहाँ भी संसद इसे या तो पारित कर सकती है या नहीं या इस पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकती।
2. संविधान संशोधन के लिए किसी विशेष निकाय जैसे संवैधानिक सभा (अमेरिका) या संवैधानिक परिषद हेतु कोई उपबन्ध नहीं है। संसद को संवैधानिक शक्ति व्यापक रूप से प्राप्त है, कुछ मामलों में राज्य विधानमंडलों को।
3. संविधान ने राज्य विधानमंडलों द्वारा संशोधन सम्बन्धी मंजूरी या उसके विरोध को प्रस्तुत करने की समय सीमा निर्धारित नहीं की है। वह इस मुद्दे पर मौन है कि अपनी संस्तुति के बाद क्या राज्य इसे वापस ले सकता है।
4. संविधान के बड़े भाग को अकेले संसद ही विशेष बहुमत या साधारण बहुमत द्वारा संशोधित कर सकती है। सिर्फ कुछ मामलों में राज्य विधानमंडल की संस्तुति भी आवश्यक होती है, वह भी उनमें से आधे की, जबकि अमेरिका में यह तीन–चौथाई राज्यों के द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक है।
5. संशोधन की प्रक्रिया से सम्बद्ध व्यवस्था बहुत अपर्याप्त है; अत: इन्हें न्यायपालिका को संदर्भित करने के व्यापक अवसर होते हैं।
6. किसी संविधान संशोधन अधिनियम के संदर्भ में गतिरोध हो तो संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है, दूसरी तरफ एक साधारण विधेयक के मुद्दे पर संयुक्त बैठक आहूत की जा सकती है।

इन कमियों के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रक्रिया साधारण व सरल है और आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार है। संशोधन प्रक्रिया को इतना लचीला नहीं होना चाहिए कि सत्ताधीन पार्टी उसे अपने तरीके से परिवर्तित करा ले, न ही इसे इतना कठोर होना चाहिए कि आवश्यक परिवर्तनों को भी न किया जा सके। **के. सी. व्हेयर** ने ठीक ही कहा है– "लचीलेपन व जटिलता के बीच बेहतर सन्तुलन है।"

ग्रीनविल ऑस्टिन के अनुसार, "संशोधन प्रक्रिया अपने आप में सिद्ध करती है कि यह संविधान का सर्वाधिक स्वीकार्य भाग है, यद्यपि यह बहुत जटिल है। यह काफी कम संविधान का विविध गुण वाला है।"

इस संदर्भ में **पं. जवाहरलाल नेहरू** ने संविधान सभा में कहा, "हम इस संविधान को इतना ठोस बनाना चाहते हैं, जितना स्थायी हम इसे बना सकते हैं और संविधान में कुछ भी स्थायी नहीं है।" इसमें कुछ लचीलापन होना चाहिए। यदि आप संविधान को कठोर और स्थायी बनाते हैं तो आप राष्ट्र की प्रगति को रोकते हैं।

इसी तरह **के०सी० व्हेयर** भारत के संविधान में विभिन्न प्रकार की संशोधन प्रक्रिया के प्रशंसक हैं। वे कहते हैं—"संशोधन व्यवस्था में यह विविधता बुद्धिमत्तापूर्ण लेकिन कठिनाई से ही मिलने वाली है।"

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर ने संविधान सभा में महसूस किया कि 'सभा ने इस संविधान में किसी अंतिम और भ्रमित मोहर लगाने से स्वयं को दूर रखा है, ऐसा उसने कनाडा की तरह लोगों को संविधान संशोधन का अधिकार न देने, अथवा अमेरिका या आस्ट्रेलिया की तरह असाधारण नियमों और शर्तों को पूरा करने के बाद संशोधन प्रक्रिया, से स्वयं को दूर रखकर किया है बल्कि संविधान संशोधन हेतु सरल प्रक्रिया बनायी है।

प्र.4. संविधान की मूल संरचना की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

संविधान की मूल संरचना की अवधारणा
(Concept of Basic Structure of Constitution)

संविधान निर्माताओं ने भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी है। उन्होंने इस उद्देश्य के साथ संसद को यह शक्ति दी कि "हम, भारत के लोग" (We, the People of India) बदलती आवश्यकताओं एवं माँगों की पूर्ति करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करके संविधान के किसी भी प्रावधान में संशोधन कर सकते हैं। परन्तु संविधान संशोधन की यह शक्ति हमेशा विवादों में रही है तथा समय-समय पर इसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती मिलती रही है। कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के इस बिंदु पर मतभेद के कारण बाद में बुनियादी संरचना का सिद्धान्त निकल कर सामने आया। "बुनियादी संरचना का सिद्धांत" भारतीय न्यायपालिका द्वारा प्रतिपादित एक विशिष्ट नवाचार है, जो संसद की असीमित शक्ति पर रोक लगाता है। यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट करता है कि संसद अपनी संविधान संशोधन की शक्ति के अधीन ही संविधान के मूलभूत अथवा बुनियादी संरचना को संशोधित करने का अधिकार रखता है, क्योंकि संविधान की मूलभूत संरचना अपरिवर्तनीय है।

भारतीय संविधान एक प्रगतिशील संविधान है जिसमें निरन्तर सुधार हो रहा है, जो संविधान प्रगतिशील नहीं होता वह राष्ट्र की प्रगति में बाधक बन जाता है, इसलिए संविधान में संशोधन का प्रावधान देश की बदलती राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ लोगों की कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया है। यदि संविधान में संशोधन का प्रावधान नहीं होता तो लोग अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए क्रांति जैसे अन्य तरीकों का सहारा लेते जिससे देश में अराजकता का वातावरण बन जाता। हमारे संविधान निर्मात्री इस विषय में सतर्क थे इसलिए उन्होंने संविधान में संशोधन करने के लिए संविधान के भाग 20 में अनुच्छेद 368 के तहत विस्तृत प्रावधान किया है। संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है या नहीं। यह विषय संविधान लागू होने के एक वर्ष पश्चात् ही सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया।

1. **शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ (1951)**—शंकरी प्रसाद मामले (1951) में सर्वप्रथम संशोधन अधिनियम 1951 की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई जिसमें सम्पत्ति के अधिकार में कटौती की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संसद में अनुच्छेद 368 में संशोधन की शक्ति के अंतर्गत ही मौलिक अधिकारों में संशोधन की शक्ति अंतर्निहित है। अनुच्छेद-13 में 'विधि' (law) शब्द के अंतर्गत मात्र सामान्य विधियाँ (कानून) ही आती हैं, संवैधानिक संशोधन अधिनियम (संवैधानिक नियम) नहीं। इसलिए संसद संविधान संशोधन अधिनियम पारित कराकर भौतिक अधिकारों को संक्षिप्त कर सकती है अथवा किसी मौलिक अधिकार को वापस ले सकती है।
2. **सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1965)**—इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने 3:2 के बहुमत से शंकरी प्रसाद मामले में किए गए निर्णय को उचित माना तथा निर्धारित किया कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है। मूल अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है।
3. **गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967)**—गोलकनाथ मामले (1967) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी पहले वाली स्थिति बदल ली। इस मामले में सत्रहवें संशोधन अधिनियम (1964) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसमें 9वीं अनुसूची में राज्य द्वारा की जाने वाली कुछ कार्यवाहियों को जोड़ दिया गया था। उच्चतम न्यायालय की 11 सदस्यीय पीठ (मुख्य न्यायाधीश श्री सुब्बाराव) ने 6:5 के बहुमत से शंकरी प्रसाद तथा सज्जन सिंह के विनिश्चयों को पलटते हुए कहा कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद को मूल अधिकार में संशोधन की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। संविधान संशोधन की शक्ति अनुच्छेद 245, 246 तथा 248 में निहित है। कोर्ट ने यह भी कहा कि संविधान संशोधन एक विधायी प्रक्रिया है, अत: 'विधि' शब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार की विधियाँ आती हैं, चाहे वह साधारण विधि हो या संविधान संशोधन विधि। उल्लेखनीय है कि यह निर्णय भविष्यलक्ष्यी प्रभाव (Prospective Overruling) से लागू किया गया था। अत: इनके पूर्व में किए गए संविधान संशोधन विधि मान्य रहे।

   इसके बाद इन्दिरा गाँधी सरकार ने 24वाँ संशोधन अधिनियम, 1971 पारित कराया। यह संशोधन गोलकनाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने के लिए पारित किया गया था। अनुच्छेद

368 द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि इसमें संविधान संशोधन करने की प्रक्रिया और शक्ति दोनों शामिल हैं तथा अनुच्छेद 13 की कोई बात संविधान संशोधन विधि को लागू नहीं होगी। इसमें अनुच्छेद 13 में एक नया खण्ड 13 (4) जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया कि अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत अनुच्छेद 368 के अधीन पारित संविधान संशोधन 'विधि' नहीं है। इसके अलावा 1971 में ही संसद ने 25वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1971 पारित किया जिसमें एक नया अनुच्छेद 31ग जोड़कर प्रावधानित किया गया कि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में वर्णित निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की विधि मान्यता को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जाएगी कि वे अनुच्छेद 14, 19 या 21 में प्रदत्त मूल अधिकारों से असंगत हैं।

4. **केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य (1973)**—केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ मामले में अपने निर्णय को प्रत्यादिष्ट (overrule) कर दिया। इसने 24वें संशोधन अधिनियम (1971) की वैधता को बहाल रखा और व्यवस्था दी कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित कर सकती है, अथवा किसी अधिकार को वापस ले सकती है। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने "संविधान की मूल संरचना" (basic structure) का एक नया सिद्धान्त दिया। इसने व्यवस्था दी कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद के संवैधानिक अधिकार उसे संविधान की मूल संरचना को ही बदलने की शक्ति नहीं देते। इसका अर्थ यह हुआ कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती अथवा वैसे मौलिक अधिकारों को वापस नहीं ले सकती जो संविधान की मूल संरचना से जुड़े हैं।
5. **इन्दिरा गांधी बनाम राज नारायण (1975)**—संविधान के मूलभूत संरचना के सिद्धांत की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंदिरा नेहरू गांधी मामले (1975) में पुन: पुष्टि की गई। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधिनियम (1975) के एक प्रावधन को रद्द कर दिया, जिसमें प्रधानमंत्री एवं लोकसभा अध्यक्ष से सम्बन्धित चुनावी विवादों को सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया था। न्यायालय ने कहा कि, यह प्रावधान संसद की संशोधन शक्ति के बाहर है क्योंकि यह संविधान के मूलभूत संरचना पर आघात करता है। पुन: न्यायपालिका द्वारा नव-आविष्कृत इस 'मूल संरचना' के सिद्धांत की प्रतिक्रिया में संसद ने 42वाँ संशोधन अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम ने अनुच्छेद 368 को संशोधित कर यह घोषित किया कि संसद की विधायी शक्तियों की कोई सीमा नहीं है और किसी भी संविधान संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती-किसी भी आधार पर, चाहे वह मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का ही क्यों न हो।
6. **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)**—सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ मामले (1980) में इस प्रावधान को अमान्य कर दिया क्योंकि इसमें न्यायिक समीक्षा के लिए कोई स्थान नहीं था, जो कि संविधान की 'मूल विशेषता' है। अनुच्छेद 368 से सम्बन्धित इस 'मूल संरचना' के सिद्धांत को इस मामले पर लागू करते हुए न्यायालय ने व्यवस्था दी—"चूँकि संविधान ने संसद को सीमित संशोधनकारी शक्ति दी है, इसलिए उस शक्ति का उपयोग करते हुए संसद इसे चरम अथवा निरंकुश सीमा तक नहीं बढ़ा सकती। वास्तव में सीमित संसद को संशोधनकारी शक्ति संविधान की मूल विशेषताओं में से एक है, अत: इस शक्ति की सीमाबद्धता को नष्ट नहीं किया जा सकता।" दूसरे शब्दों में संसद, "अनुच्छेद 368 के अंतर्गत, अपनी संशोधनकारी शक्ति को विस्तारित कर निरस्त करने का अधिकार हासिल नहीं कर सकती, अथवा संविधान को रद्द अथवा इसकी मूल विशेषताओं को नष्ट नहीं कर सकती। सीमित शक्ति का आदाता (उपभोगकर्ता) उस शक्ति का उपयोग करते हुए सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में नहीं बदल सकता।"
7. **वामन राव बनाम भारत संघ मामले (1981)**—पुन: वामन राव बनाम भारत संघ मामले (1981) में सर्वोच्च न्यायालय ने 'मूल संरचना' के सिद्धांत को मानते हुए स्पष्ट किया कि यह 24 अप्रैल, 1973 (अर्थात्, केशवानंद भारती मामले में फैसले के दिन) के बाद अधिनियमित संविधान संशोधनों पर लागू होगा।

प्र.5. संविधान की मूल संरचना में सम्मिलित तत्त्व एवं विश्लेषण का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संविधान की मूल संरचना में सम्मिलित तत्त्व
(Elements Present in Basic Structure of Constitution)

संविधान की मूल संरचना के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति यह है कि संसद अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान के किसी भी भाग, यहाँ तक कि मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है, परन्तु इससे संविधान की 'मूल संरचना' प्रभावित न हो। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह परिभाषित अथवा स्पष्ट किया गया है कि संविधान की 'मूल संरचना' के घटक कौन-से हैं। न्यायालय द्वारा समय-समय पर कुछ तत्वों को इस सूची में शामिल किया गया है और आगे भी किया जा सकता है। विभिन्न फैसलों के आधार पर निम्नलिखित की 'मूल संरचना' अथवा इसके तत्वों, अवयवों या घटकों के रूप में पहचान की जा सकती है—

1. संविधान की सर्वोच्चता
2. संघात्मक शासन प्रणाली।
3. भारतीय राजनीति की सार्वभौम, लोकतांत्रिक तथा गणराज्यात्मक प्रकृति।
4. विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच शक्ति का विभाजन।
5. राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता।
6. कल्याणकारी राज्य की स्थापना।
7. व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा।
8. विधि का शासन।
9. संविधान का पंथनिरपेक्ष स्वरूप।
10. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव पर आधारित लोकतंत्र ।
11. न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति।
12. मौलिक अधिकार एवं नीति निदेशक तत्त्वों में सामंजस्य।
13. संसदीय शासन प्रणाली।
14. संसद की संविधान संशोधन की सीमित शक्ति।
15. संविधान की प्रस्तावना में निहित उद्देश्य।
16. अनु. 32, 136, 141 और 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ।
17. अनुच्छेद 226 तथा 277 के अधीन उच्च न्यायालयों की शक्ति।
18. मौलिक अधिकारों के आधारभूत सिद्धांत या सारतत्व।
19. सामाजिक-आर्थिक न्याय एवं कल्याणकारी राज्य ।
20. न्यायपालिका की स्वतंत्रता
21. न्याय तक प्रभावकारी पहुँच

संविधान के मूल संरचना का विश्लेषण
(Analysis of Basic Structure of Constitution)

भारतीय संविधान में, संविधान के मूल संरचना का वर्णन कहीं भी नहीं किया गया है लेकिन संवैधानिक क्षेत्र में 'मूल संरचना' के सिद्धांत पर अत्यन्त गहन विचार-विमर्श किया गया है। बुनियादी/मूल संरचना सिद्धान्त की आलोचना करते हुए संविधान विशेषज्ञ **सुभाष कश्यप** कहते हैं कि यदि जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से संसद द्वारा संविधान में आवश्यक बदलाव नहीं ला सकती है तो कौन लाएगा? इसके विपरीत वे यह भी कहते हैं कि यदि संविधान संशोधन बुनियादी संरचना के सिद्धान्त के विरुद्ध किया जाएगा तो यह माना जाएगा कि संसद ने अपनी संविधान संशोधन की शक्ति का दुरुपयोग किया है।

यह भी तर्कपूर्ण है कि मूल संरचना का सिद्धान्त अलग से विकसित हुआ है, जिसका जन्मदाता स्वयं सर्वोच्च न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय को सभी संवैधानिक संशोधनों पर वीटो अधिकार प्राप्त है। इसके विपरीत यदि संसद की संविधान संशोधन की शक्ति पर इस तरह की सीमाएँ नहीं होंगी तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि सरकार की आलोचना करना अपराध माना जाए तथा सरकार इस तरह के कानून बना दे जिससे अभिव्यक्ति की आजादी भी छिन जाए।

दूसरी तरफ, अनेक बार ऐसा हुआ भी है कि संसद द्वारा बनाया गया कानून न्यायपालिका को हस्तांतरित हो जाता है, अर्थात् न्यायपालिका कई बार सक्रिय होकर संसद के निर्णयों पर स्वत: संज्ञान ले लेती है। संभवत: न्यायपालिका यह भूल जाती है कि संविधान सर्वोच्च है। कुछ न्यायिक निर्णयों से भी कई बार प्रकट होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने मूल संरचना के नाम पर बहुत अधिक शक्ति ग्रहण की है। मूल संरचना का सिद्धान्त ऐसे समय में आया था जब संवैधानिक संशोधनों से संविधान के मूल ढाँचे को खतरा उत्पन्न हो गया था। यह सिद्धान्त न्यायपालिका को एक लोकतांत्रिक रूप से गठित सरकार पर अपना सिद्धान्त लागू करने की शक्ति प्रदान करता है।

बुनियादी संरचना का सिद्धान्त व्यक्तिपरक एवं अस्पष्ट है। संभवत: इसका यह भी कारण हो सकता है कि यदि न्यायपालिका संसद को बुनियादी/मूल संरचना की स्पष्ट सूची दे दे, तो संसद कुछ अन्य विकल्पों के साथ आगे आ सकती है। इसके साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बुनियादी संरचना का सिद्धान्त कानूनी रूप से वैध है, क्योंकि यह संविधान के विभिन्न भागों एवं इतिहास में ही निहित नहीं है बल्कि इसमें पर्याप्त नैतिक मूल्य भी हैं। इसका मूल उद्देश्य सरकार की निरंकुशता को सीमित करके लोकतंत्र को मजबूत करना है। यह सिद्धान्त हमारे मूल अधिकारों की रक्षा करता है तथा संसद के असंवैधानिक संशोधनों पर पूर्ण विराम भी लगाता है।

❑

UNIT-V

संघीय विधायिका एवं कार्यपालिका

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संसद सरकार की वित्तीय नीति पर किस माध्यम से नियन्त्रण स्थापित करती है?

उत्तर संसद ही सरकार की वित्तीय नीति को निश्चित करती है तथा यह निर्णय करती है कि सरकारी आय को किस प्रकार बढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त संसद अपनी सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के माध्यम से सरकार के वित्तीय प्रशासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करती है।

प्र.2. ऐसे किन्हीं दो क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जहाँ संसद के दोनों सदनों को समान अधिकार हैं?

उत्तर 1. राष्ट्रपति, उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर अभियोग चलाने के सम्बन्ध में दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं।

2. राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में दोनों सदनों के सदस्यों के अधिकार समान हैं।

प्र.3. संसद का अधिवेशन बुलाने का अधिकार संविधान ने किसको प्रदान किया है?

उत्तर संसद के अधिवेशन का समय तथा स्थान भारत का राष्ट्रपति निश्चित करता है।

प्र.4. उन दो अधिकारों का उल्लेख कीजिए जिनके द्वारा संसद सरकार को नियन्त्रित कर सकती है?

उत्तर 1. संसद सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं जिनका उत्तर देना मन्त्रियों के लिए आवश्यक है।

2. लोकसभा के सदस्य मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पारित कर सकते हैं। अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना पड़ता है।

प्र.5. राज्यसभा की किन्हीं ऐसी दो विशिष्ट शक्तियों का उल्लेख कीजिए जो लोकसभा को प्राप्त नहीं हैं?

उत्तर 1. संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्यसभा उपस्थित तथा मतदान करने वाले दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि अब राज्य सूची में वर्णित विषय का महत्व राष्ट्रीय हो गया है तो उस विषय पर संसद 1 वर्ष तक कानून पारित कर सकती है।

2. 44वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्यसभा अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत प्रस्ताव पारित करके अखिल भारतीय न्यायिक सेवाएँ स्थापित करने के सम्बन्ध में संसद को अधिकार प्रदान कर सकती है।

प्र.6. भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन किस प्रकार से होता है?

उत्तर भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता है। यह निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत प्रणाली तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार गुप्त मतदान द्वारा होता है।

प्र.7. राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया में निहित किन्हीं दो दोषों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. आलोचकों का यह मत है कि राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया अलोकतान्त्रिक है क्योंकि राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है।

2. राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति बहुत जटिल है जिसे समझना बहुत आसान नहीं है।

प्र.8. राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की किन्हीं दो आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. राष्ट्रपति आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करने मे स्वतन्त्र है; अत: इन शक्तियों के दुरुपयोग की प्रबल सम्भावना रहती है।

2. संकटकालीन स्थिति की घोषणा होने पर हमारे संविधान का संघात्मक ढाँचा एकात्मक में परिवर्तित हो जाता है।

प्र.9. राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र किसको सम्बोधित करते हुए देता है?

उत्तर राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति को सम्बोधित करते हए अपना त्यागपत्र देता है।

प्र.10. भारत के राष्ट्रपति की किन्हीं दो निरापदताओं (Immunities) की विवेचना कीजिए।

उत्तर 1. वह अपने अधिकारों तथा शक्तियों के प्रयोग के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं है।
2. उसके कार्यकाल में उसे गिरफ्तार अथवा बन्दी नहीं बनाया जा सकता, न ही उसके विरुद्ध किसी प्रकार की कोई फौजदारी कार्यवाही की जा सकती है।

प्र.11. राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव लाने के लिए सम्बन्धित सदन के कम से-कम कितने सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं?

उत्तर राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव लाने के लिए सम्बन्धित सदन के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक है।

प्र.12. राष्ट्रपति के सूचना प्राप्त करने के अधिकार का क्या तात्पर्य है?

उत्तर राष्ट्रपति संघ के समस्त विषयों पर सूचना प्राप्त करने का अधिकार रखता है तथा प्रधानमन्त्री से प्रशासन के सम्बन्ध में कोई भी सूचना माँग सकता है।

प्र.13. भारत के राष्ट्रपति की दो संकटकालीन शक्तियाँ बताइए।

उत्तर 1. राष्ट्रपति संविधान के **अनुच्छेद 352** के अनुसार भारत के किसी एक भाग अथवा सम्पूर्ण भाग पर संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है, यदि देश के अन्दर सशस्त्र विद्रोह अथवा आह्य आक्रमण हो जाए।
2. यदि देश की साख को खतरा उत्पन्न हो जाए तो राष्ट्रपति **अनुचछेद 360** के अन्तर्गत वित्तीय संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है।

प्र.14. वर्तमान समय में मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की अधिकतम संख्या कितनी हो सकती हैं?

उत्तर वर्तमान समय में संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् की अधिकतम संख्या लोकसभा के सदस्यों के 15% से अधिक नहीं हो सकती है अर्थात् मन्त्रिपरिषद् की अधिकतम संख्या 82 हो सकती है।

प्र.15. प्रधानमन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार से की जाती है?

उत्तर संविधान में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होगी परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है। देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के कारण राष्ट्रपति इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त नहीं कर सकता है। वह केवल उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर सकता है, जो लोकसभा में बहुमत वाली पार्टी का नेता चुना गया हो।

प्र.16. भारत की मन्त्रिपरिषद् में कितने प्रकार के मन्त्री सम्मिलित किए जाते हैं?

उत्तर प्रधानमन्त्री यदि द्वि-स्तरीय मन्त्रिपरिषद् का गठन करता है तो उसमें कैबिनेट स्तर के तथा राज्य स्तर के मन्त्रियों को सम्मिलित किया जाता है। जब प्रधानमन्त्री त्रि-स्तरीय मन्त्रिपरिषद् का निर्माण करता है तो उसमें कैबिनेट स्तर के तथा राज्य स्तर के मन्त्रियों के साथ-साथ उपमन्त्रियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

प्र.17. संसदात्मक शासन प्रणाली में मन्त्रिपरिषद् की स्थिति किस प्रकार की होती है?

उत्तर संसदीय शासन प्रणाली में राज्य का अध्यक्ष नाममात्र का संवैधानिक मुखिया होता है। शासन की वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् के हाथों में होती है।

प्र.18. मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति कौन करता है?

उत्तर अपनी नियुक्ति के पश्चात् प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की सूची तैयार करके राष्ट्रपति के पास भेज देता है। राष्ट्रपति उस सूची में दिए गए व्यक्तियों को मन्त्री नियुक्त करता है।

प्र.19. प्रधानमन्त्री के निर्वाचन के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद के समाधान की क्या व्यवस्था है?

उत्तर 39वें संशोधन द्वारा जो अनुच्छेद 329A संविधान में जोड़ा गया था, उस अनुच्छेद को 44वें संशोधन के द्वारा संविधान से निकाल दिया गया। अब प्रधानमन्त्री के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों की सुनवाई उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार संसद के किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध अनुच्छेद 329 के अधीन की जाती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.20. समन्वय समिति ने प्रधानमन्त्री की शक्तियों को किस प्रकार कम किया है?

उत्तर गठबन्धन सरकारों में समन्वय समिति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इस समिति ने प्रधानमन्त्री की शक्तियों तथा भूमिका में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है। किसी प्रकार का विवाद अथवा मतभेद अब प्रधानमन्त्री नहीं, वरन् इस समिति द्वारा सुलझाया जाता है। वास्तव में, अल्पमत सरकारों में शासन का संचालन प्रधानमन्त्री नहीं वरन् इस प्रकार की समितियाँ करती है। प्रधानमन्त्री मात्र इन समितियों के दिशा-निर्देशों के अनुसार चलने वाला रह गया है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संसद के सदस्यों की योग्यता का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संसद की सदस्यता के लिए योग्यता
(Qualifications for Membership of Parliament)

अनुच्छेद 84 के अनुसार, संसद के सदस्यों की योग्यता निम्न प्रकार है। इसमें कहा गया है कि एक व्यक्ति सांसद बनने की योग्यता तभी रखता है जब—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. राज्यसभा के मामले में सदस्य की आयु 30 वर्ष एवं लोकसभा के मामले में 25 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।
3. समय-समय पर संसद द्वारा वर्णित इस प्रकार की अन्य योग्यता रखना। तदनुसार संसद ने रिप्रेजेंटेशन ऑफ पिपुल्स एक्ट, 1951 पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार अतिरिक्त योग्यता इस प्रकार हैं—
   (i) एक व्यक्ति जब तक कि भारत में संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता न हो तब तक वह लोकसभा में किसी भी राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के प्रतिनिधि के तौर पर चुने जाने योग्य नहीं होगा।
   (ii) एक व्यक्ति लोकसभा के लिए चुने जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि वह किसी भी राज्य में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीट पर, किसी भी राज्य या उस राज्य के लिए क्रमशः अनुसूचित जाति-जनजाति का सदस्य हो तथा संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता हो।
   (iii) अगर किसी व्यक्ति को दोषी करार देते हुए उस पर सिर्फ जुर्माना लगाया गया हो तो वह व्यक्ति दोषी करार दिए जाने की तारीख से 6 वर्षों की अवधि तक या सजा दिए जाने पर, सजा दिए जाने की तारीख से 6 वर्षों की अवधि तक और रिहा किए जाने की तारीख से और 6 वर्षों की अवधि तक वह अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा।
   (iv) यदि चुनाव आयोग इस बात से संतुष्ट है कि व्यक्ति चुनाव खर्च का लेखा-जोखा निर्धारित समय एवं अपेक्षित ढंग से करने में सफल रहा है।
   (v) भ्रष्टाचार एवं देशद्रोह के आधार पर अयोग्य हो।

रिप्रेजेंटेशन ऑफ पिपुल्स एक्ट 1951 के तहत निम्नलिखित को भ्रष्ट आचरण के रूप में घोषित किया गया है—

1. किसी भी व्यक्ति को उसके धर्म, जाति, वंश, समुदाय या भाषा के आधार पर वोट देना या उसे वोट देने से रोकना।
2. धर्म, वंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर विभिन्न नागरिक समूहों के बीच विरोध की भावना को बढ़ावा देना।
3. किसी भी उम्मीदवार के व्यक्तिगत चरित्र या आचरण के बारे में गलत तथ्य या कथन का प्रकाशन।
4. बूथ पर कब्जा करना।
5. निर्दिष्ट के उल्लंघन हेतु किया गया खर्च।
6. सरकारी नौकरी वाले किसी भी व्यक्ति से सहायता प्राप्त करना।
7. मतदाताओं को किसी भी मतदान केंद्र पर मुफ्त में आने-जाने के लिए वाहन किराए पर लेना या खरीदना।

प्र.2. लोकसभा के सत्र से आप क्या समझते हैं?

उत्तर

लोकसभा के सत्र
(Sessions of Lok Sabha)

संविधान के अनुच्छेद 85 के अनुसार, संसद सदैव इस तरह से आयोजित की जाती रहेगी कि संसद के दो सत्रों के मध्य 6 मास से अधिक अंतर न हो। परंपरानुसार संसद तीन नियमित सत्रों तथा विशेष सत्रों में आयोजित की जाती है। सत्रों का आयोजन राष्ट्रपति की विज्ञप्ति से होता है।

1. **बजट सत्र**—वर्ष का पहला सत्र होता है। सामान्यत: फरवरी और मई के मध्य चलता है। यह सबसे लंबा तथा महत्त्वपूर्ण सत्र माना जाता है, इसी सत्र में बजट प्रस्तावित तथा पारित होता है। सत्र के प्रारंभ में राष्ट्रपति का अभिभाषण होता है।
2. **मानसून सत्र**—जुलाई अगस्त के मध्य होता है।
3. **शरद सत्र**—नवम्बर-दिसम्बर के मध्य होता है। सबसे कम समयावधि का सत्र होता है।

विशेष सत्र—इसके दो भेद हैं।

1. **संसद के विशेष सत्र**—प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति इनका आयोजन करता है। ये किसी नियमित सत्र के मध्य अथवा उससे पृथक आयोजित किये जाते हैं। एक विशेष सत्र में कोई विशेष कार्य चर्चित तथा पारित किया जाता है, यदि सदन चाहे भी तो अन्य कार्य नहीं कर सकता है।
2. **लोकसभा का विशेष सत्र**—अनुच्छेद 352 मे इसका वर्णन है परन्तु इसे 44वें संशोधन 1978 से स्थापित किया गया है यदि लोकसभा के कम से कम 1/10 सदस्य एक प्रस्ताव लाते हैं जिसमें राष्ट्रीय आपातकाल को जारी न रखने की बात कही गयी है तो नोटिस देने के 14 दिन के भीतर सत्र बुलाया जाएगा।

प्र.3. राज्यसभा की चार उपयोगिताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर राज्यसभा की उपयोगिताओं का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **प्रशासनिक क्षेत्र में**—केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है; इसीलिए यही उसे नियन्त्रण में रखती है। राज्यसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत नहीं कर सकती है जबकि लोकसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती है।
2. **वित्त विधेयक क्षेत्र में**—विधेयक तथा बजट सर्वप्रथम लोकसभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। लोकसभा में विधेयक पारित हो जाने के पश्चात् राज्यसभा में भेजा जाता है। वहाँ इस विधेयक की आलोचना तो की जा सकती है किन्तु इसे रद्द नहीं किया जा सकता।
3. **महाभियोग के क्षेत्र में**—राष्ट्रपति पर संविधान के अतिक्रमण का आरोप लगाने में दोनों सदनों के अधिकार समान हैं क्योंकि जब एक सदन राष्ट्रपति पर आरोप लगाता है तब दूसरा सदन उन तथ्यों की जाँच-पड़ताल करता है। इस प्रकार, दोनों सदन मिलकर ही राष्ट्रपति को पदच्युत कर सकते हैं।
4. **निर्वाचन के क्षेत्र में**—राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के चुनाव में लोकसभा एवं राज्यसभा के सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का समान अधिकार प्राप्त है।

प्र.4. राज्यसभा एवं लोकसभा में अन्तर प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

राज्यसभा एवं लोकसभा में अन्तर
(Difference between Lok Sabha and Rajya Sabha)

क्र०सं०	आधार	राज्यसभा	लोकसभा
1.	**सदस्य**	राज्यसभा में 250 सदस्य होते हैं जो राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते हैं।	लोकसभा में 552 सदस्य होते हैं जो जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं।
2.	**नेता**	भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य करता है।	प्रधानमंत्री लोकसभा में सदन के नेता के रूप में कार्य करता है।
3.	**अवधि**	राज्यसभा एक स्थायी निकाय है और इसमें विघटन नहीं होता है।	लोकसभा उस तिथि से 5 वर्षों के लिए कार्य करती है जिस दिन इसे नियुक्त किया जाता है और 5 वर्षों के बाद इसे भंग कर दिया जाता है।
4.	**आयु**	राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए आयु 30 वर्ष है।	लोकसभा का सदस्य बनने के लिए आयु 25 वर्ष है।
5.	**सदस्यों का कार्यकाल**	राज्यसभा के सदस्यों का अधिकतम कार्यकाल 6 वर्ष है।	लोकसभा के सदस्यों का अधिकतम कार्यकाल केवल 5 वर्ष है।

TOUCH 'n' PASS

6.	शक्तियाँ	लोकसभा में बिल पास होने के बाद ही राज्यसभा की चर्चा होती है।	लोकसभा के पास बजट से संबधित धन व वित्तीय मामलों में सर्वोच्च शक्तियाँ हैं।
7.	अध्यक्ष की शक्ति	राज्यसभा के अध्यक्ष को भी लोकसभा अध्यक्ष के रूप में शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु इसमें कुछ सीमाएँ हैं।	लोकसभा अध्यक्ष को संविधान और नियमों के तहत व्यापक अधिकार और शक्तियाँ प्राप्त हैं।

प्र.5. लोकसभा अध्यक्ष के निर्वाचन व महत्त्व को समझाइए।

उत्तर लोकसभा अध्यक्ष का निर्वाचन एवं महत्त्व निम्न प्रकार हैं—

निर्वाचन—लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा स्वयं अपने सदस्यों में से अध्यक्ष का निर्वाचन करती है। इस रूप में पद धारण करने वाला यदि लोकसभा का सदस्य नहीं रहता तो उसे अपना पद रिक्त करना पड़ेगा तथा लोकसभा द्वारा उपस्थित सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित करके उसे पद से हटाया जा सकता है परन्तु इस प्रयोजन हेतु कोई भी प्रस्ताव तब तक प्रस्तावित नहीं किया जा सकता जब तक कि यह सूचना 14 दिन पूर्व अध्यक्ष को न दे दी गई हो। यदि कभी लोकसभा का विघटन किया जाए तो विघटन के पश्चात् होने वाले लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के पहले दिन तक वह अपना पद रिक्त नहीं करेगा। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा।

महत्त्व—संसदीय शासन-प्रणाली में अध्यक्ष का पद गौरव एवं सम्मान का होता है। संसद राष्ट्र की सर्वोपरि संस्था है और अध्यक्ष इसकी प्रतिष्ठा का रक्षक है। अपने व्यक्तित्व से वह शासन की नीतियों को प्रभावित कर सकता है। वह अनेक राजनीतिक संस्थाओं का प्रधान होने के कारण राष्ट्रीय विचारों को प्रभावित करता है और सार्वजनिक जीवन के निर्माण में सहायक होता है। यद्यपि देश के शासन पर उसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है फिर भी वह अप्रत्यक्ष रूप से इसे प्रभावित कर सकता है।

प्र.6. राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

न्यायिक शक्तियाँ
(Judicial Powers)

राष्ट्रपति किन्हीं अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकता है, या उनके दण्ड को स्थगित या कम कर सकता है। निम्नलिखित प्रकार से सजा पाए हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति उपर्युक्त शक्ति का प्रयोग कर सकता है—(i) उन सब बातों में जहाँ दण्ड सैनिक न्यायालय द्वारा दिया गया हो, (ii) उन बातों में जहाँ मृत्युदण्ड दिया गया हो। किन्तु राष्ट्रपति की क्षमादान सम्बन्धी शक्ति का राज्यों के राज्यपालों और सैनिक न्यायालय के सैनिक अधिकारियों की क्षमादान सम्बन्धी शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। राष्ट्रपति का क्षमादान अधिकार उन सब मामलों और अपराधों पर प्रभावी होगा, जिनका सम्बन्ध संघ की शक्तियों से सम्बन्धित अपराधों से होगा। किन्तु राष्ट्रपति, समवर्ती सूची वाले मामलों से सम्बन्धित अपराधों पर क्षमादान उस समय तक नहीं करेगा, जब तक कि संसद ने उक्त मामलों पर से राज्य की कार्यपालिका शक्ति को अलग न मान लिया हो।

राष्ट्रपति अपने क्षमादान के अधिकार का प्रयोग अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा के आधार पर ही करता है। ऐसी ही स्थिति इंग्लैण्ड में है। अमरीकी राष्ट्रपति दोष सिद्ध होने के पूर्व या पश्चात् जब चाहे अपनी इच्छानुसार क्षमा प्रदान कर सकता है, किन्तु भारत का राष्ट्रपति दोष सिद्धि के बाद ही क्षमा प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त भारत के राष्ट्रपति को सर्वक्षमा (amnesty) प्रदान करने के लिए संसद की अनुमति प्राप्त करनी होगी। लेकिन अमरीका में राष्ट्रपति किसी भी प्रकार के मामलों में क्षमा प्रदान कर सकता है। राष्ट्रपति को क्षमादान का यह अधिकार इस आधार पर प्रदान किया गया है कि **'न्याय में दया का पुट होना चाहिए'** (Justice should be tempered with mercy)।

संविधान ने राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया है कि वह सार्वजनिक महत्व के किसी ऐसे प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की सम्मति माँग सके, जिसमें विधि और तथ्य के प्रश्न ग्रस्त हो सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के पास किसी प्रस्तावित विधेयक या प्रश्न को भेज सकता है और पूछ सकता है कि अमुक विधेयक विधानमण्डल के अधिकार क्षेत्र में आता है अथवा नहीं। उच्चतम न्यायालय की मन्त्रणा मानना राष्ट्रपति के विवेक एवं निर्णय पर निर्भर है। राष्ट्रपति ने अब तक सर्वोच्च न्यायालय से 9 बार परामर्श प्राप्त किया है। दसवीं बार 'अयोध्या विवाद' के प्रसंग में परामर्श माँगा गया था, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय पर परामर्श देने से इंकार कर दिया।

प्र.7. राष्ट्रपति पर महाभियोग किन परिस्थितियों में लगाया जा सकता है? समझाइए।

उत्तर भारत के राष्ट्रपति को उसके पद से हटाए जाने के विवरण का संविधान में वर्णन किया गया है। संविधान के अनुसार यदि राष्ट्रपति संविधान के विरुद्ध आचरण करने का प्रयत्न करे या संविधान का उल्लंघन करे तो उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है। महाभियोग का प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन (उच्च या निम्न) में रखा जा सकता है किन्तु प्रस्ताव की सूचना सदन को 14 दिन पूर्व देनी पड़ती है। इस प्रस्ताव पर उस सदन के कम-से-कम एक-चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। इसके उपरान्त प्रस्ताव पर सदन में मतदान होता है। यदि प्रस्ताव सदन की कुल सदस्य संख्या के दो-तिहाई बहुमत से पारित हो जाता है तो वह सदन में स्वीकृत समझा जाएगा। इसके बाद इस प्रस्ताव को विचारार्थ दूसरे सदन में भेजा जाता है। दूसरा सदन उस महाभियोग की जाँच स्वयं भी कर सकता है और किसी जाँच आयोग द्वारा भी करा सकता है। जाँच के समय राष्ट्रपति स्वयं वहाँ उपस्थित रह सकता है या अपना प्रतिनिधि भेज सकता है। यदि जाँच के उपरान्त दूसरा सदन भी अपने कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से महाभियोग के प्रस्ताव को पारित कर देता है तो प्रस्ताव के स्वीकृत होने की तिथि से राष्ट्रपति पदच्युत समझा जाएगा।

प्र.8. मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमण्डल में अन्तर प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर नई लोकसभा का गठन हो जाने के पश्चात् बहुमत प्राप्त सबसे बड़ी पार्टी के नेता को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री के रूप में शपथ ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के पश्चात् उसकी सलाह से राष्ट्रपति अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करता है। मन्त्रियों के इस समस्त समुदाय को मन्त्रिपरिषद् कहा जाता है। इसमें तीन प्रकार के मन्त्री—कैबिनेट स्तर के मन्त्री, राज्य मन्त्री तथा उपमन्त्री होते हैं। इन्हीं मन्त्रियों में से एक लघु समुदाय बनाया जाता है जिसे मन्त्रिमण्डल कहा जाता है। इसके द्वारा प्रधानमन्त्री को समय-समय पर सलाह प्राप्त होती रहती है। इसमें केवल कैबिनेट स्तर के मन्त्री तथा राज्य मन्त्री ही सदस्य हो सकते हैं। शर्त यह होती है कि कैबिनेट मन्त्री या राज्य मन्त्री किसी मन्त्रालय का स्वतन्त्र प्रभारी हो। भारत में कैबिनेट मन्त्री तथा स्वतन्त्र प्रभार के राज्य मन्त्री केन्द्रीय कैबिनेट के सदस्य होते हैं। इस प्रकार राज्य मन्त्री कैबिनेट के सदस्य हो भी सकते हैं और नहीं भी; लेकिन उपमन्त्री कभी भी मन्त्रिमण्डल (कैबिनेट) के सदस्य नहीं हो सकते। इसीलिए ब्रिटेन में उपमन्त्री (Deputy Minister) को 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट' कहा जाता है।

प्र.9. मन्त्रिपरिषद् का गठन किस प्रकार होता है?

उत्तर भारतीय संविधान में प्रधानमन्त्री और मन्त्रिपरिषद् की नियुक्ति तथा स्थिति के सम्बन्ध में बहुत कम उल्लेख किया गया है और अधिकांश में इस प्रकार की व्यवस्था परम्पराओं पर छोड़ दी गयी है। मन्त्रिपरिषद् में एक प्रधानमन्त्री तथा विभिन्न श्रेणियों के मन्त्री होंगे। मूल संविधान द्वारा मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं की गई थी, लेकिन अब **91वें संवैधानिक संशोधन** (2003 ई०) के आधार पर व्यवस्था की गई है कि प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। संविधान के अनुच्छेद 75 के विभिन्न भागों में मन्त्रिपरिषद् की रचना के सम्बन्ध में केवल निम्न बातों का उल्लेख किया गया है—

1. प्रधानमन्त्री की सलाह से राष्ट्रपति अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा।
2. मन्त्रिगण राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर बने रहेंगे।
3. मन्त्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी।
4. प्रत्येक मन्त्री को अपने पद धारण करने के पूर्व राष्ट्रपति के सामने अपने पद और गोपनीयता की शपथ लेनी होगी।
5. यदि कोई मन्त्री अपना पद धारण करने के 6 माह बाद तक संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं बन सका तो उसे मन्त्रिपरिषद् से त्याग-पत्र देना होगा।
6. मन्त्रियों को वे सब वेतन और भत्ते प्राप्त होंगे, जो समय-समय पर संसद विधि द्वारा निर्धारित करे।

मन्त्रिपरिषद के गठन के सम्बन्ध में केवल ये ही कुछ औपचारिक व्यवस्थाएँ हैं और इन औपचारिक व्यवस्थाओं से यह पता नहीं चलता कि वास्तव में मन्त्रिपरिषद् का गठन किस प्रकार होता है। व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् का गठन एक बहुत अधिक कठिन तथा जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक बातों को ध्यान में रखना होता है। मन्त्रियों को चुनते समय शासक दल में विभिन्न सदस्यों की स्थिति, राष्ट्र के विभिन्न समुदायों तथा भौगोलिक क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व, संसद के दोनों सदनों को उचित प्रतिनिधित्व व विभिन्न अवस्था वाले और विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने पर विचार करना होता है।

प्र.10. मन्त्रिपरिषद् की स्वेच्छाचारिता को समझाइए।

उत्तर संविधान के अनुसार मन्त्रिपरिषद् के कार्यों पर संसद का नियन्त्रण होता है। यदि लोकसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। यह वैधानिक स्थिति है परन्तु स्थिति इससे भिन्न है। भारत में मन्त्रिपरिषद् का पूर्ण नियन्त्रण है। संसद में वाद-विवाद होते हैं और मतदान द्वारा विधेयकों पर निर्णय लिए जाते हैं परन्तु अन्त में सम्पूर्ण शक्ति सत्ताधारी दल की ही होती है। मन्त्रिपरिषद् सत्ताधारी दल की शक्ति का केन्द्र है और संसद उसके निर्णयो को अस्वीकार करने में असमर्थ है क्योंकि मन्त्रिपरिषद् का सदन में बहुमत होता है तथा बहुमत प्राप्त दल के नेता दलीय अनुशासन के कारण मन्त्रिमण्डल के द्वारा प्रस्तुत विधेयकों का समर्थन करते हैं। पार्टी ह्विप जारी कर दिया जाता है, तब प्रत्येक सदस्य को दल के निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार भारतीय शासन में मन्त्रिपरिषद् की तानाशाही प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है।

मन्त्रिपरिषद् की स्वेच्छाचारिता का एक कारण यह भी है कि मन्त्रिपरिषद् जनता के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है। लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन जनता करती है और मन्त्रिपरिषद् को लोकसभा का बहुमत प्राप्त होता है। इसलिए परोक्ष रूप में जनता के बहुमत का समर्थन भी मन्त्रिपरिषद को प्राप्त होता है। वह सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहती है कि जनता का बहुमत उसके अनुकूल रहे। इसलिए उसकी स्वेच्छाचारिता पर जनता अंकुश लगा सकती है। यदि वह जनमत की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता की वृत्ति को अपना ले तो उसको शासन-कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होगी। अत: मन्त्रिपरिषद् को जनमत के अनुकूल ही शासन-कार्य करना पड़ता है।

प्र.11. मन्त्रिपरिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार, मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार यदि लोकसभा में मन्त्रिपरिषद् के किसी एक मन्त्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है तो वह समस्त मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास समझा जाता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण यह आवश्यक है कि यदि मन्त्रिपरिषद् में किसी प्रश्न पर मन्त्रियों में मतभेद भी हैं तो असन्तुष्ट मन्त्री को या तो बहुमत के निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए या अपने पद से त्याग-पत्र दे देना चाहिए। अधिक स्पष्ट शब्दों में, असन्तुष्ट मन्त्री को लोकसभा में मन्त्रिपरिषद् की ऐसी आलोचना करने का अधिकार नहीं है कि अमुक कार्य मेरी इच्छा के विरुद्ध किया गया है। जनवरी 1966 ई० में महावीर सिंह त्यागी ने ताशकन्द समझौते से असहमति प्रकट करते हुए लालबहादुर शास्त्री की मन्त्रिपरिषद् से त्याग-पत्र दे दिया था। इसी आधार पर कहा जाता है कि मन्त्रिपरिषद् के सदस्य एक-साथ तैरते हैं तथा एक साथ ही डूबते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संसद की कार्य एवं शक्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उत्तर

संसद की कार्य एवं शक्तियाँ
(Functions and Powers of Parliament)

संसद के निम्नलिखित कार्य एवं शक्तियाँ है—

1. **विधायी कार्य एवं शक्तियाँ**—मूल रूप से संसद एक कानून बनाने वाली संस्था है। केंद्र (संघ) और राज्यों के बीच शक्ति का एक विभाजन है। इसमें तीन सूचियाँ हैं—संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची में वर्णित है कि केवल संसद ही कानून बना सकती है। संघ सूची में 100 विषय हैं। राज्य विधानमंडलों के साथ, संसद को समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार है। दोनों केंद्र के साथ-साथ राज्य समवर्ती सूची में उल्लिखित विषय पर एक कानून बनाते हैं यदि दोनों के बीच कोई टकराव होता है तो केंद्रीय कानून राज्य कानून पर प्रबल होता है। किसी भी सूची में किसी भी विषय का उल्लेख नहीं किया गया है अर्थात् संसद के पास अवशिष्ट शक्तियाँ निहित हैं। इस प्रकार संसद की कानून बनाने की शक्ति बहुत व्यापक है। इसमें संघ सूची और समवर्ती सूची और कुछ परिस्थितियों में यहाँ तक कि राज्य सूची भी शामिल है।
2. **कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य एवं शक्तियाँ**—संसदीय प्रणाली में शासन-प्रशासन वाली कार्यपालिका के दोनों सदनों (लोकसभा एवं राज्यसभा) को सुचारु रूप से चलाने के लिए संसद का विश्वास मत अवश्य प्राप्त होना चाहिए। संसद के निम्न सदन के प्रति प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से पूर्ण तरीके से उत्तरदायी होते हैं। संसद का

कार्य कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखना होता है; साथ ही संसद यह भी सुनिश्चित करती है कि संसद के प्रति उत्तरदायी बनी रहे और कार्यपालिका अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन न करे।

संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण निम्न रूप से रखती है—

(i) संसद के दोनों सदनों (लोकसभा एवं राज्यसभा) के प्रत्येक कार्य दिवस का पहला एक घण्टा प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछने के लिए प्रयोग किया जाता हैं, इस निश्चित घण्टे को प्रश्न काल कहते हैं। इस अवधि में संसद के सदस्य केंद्र सरकार से जुड़े किसी सदस्य से प्रश्न और सवाल भेजते हैं और भेजे गए प्रश्नों के उत्तर सम्बन्धित मंत्री को देने होते हैं।

(ii) संसद अपने सदस्यों को किसी भी विषय पर चर्चा करने के लिए समुचित अवसर प्रदान करती है। जिसमें विपक्षी दल के सदस्यों को सरकार की आलोचना करने का और सत्तारूढ़ दल के सदस्यों को उन आलोचनाओं के पक्ष एवं विपक्ष पर जबाबदेही करने का भी अवसर मिलता है।

(iii) संसद कार्यपालिका पर विभिन्न प्रस्तावों के माध्यम से भी नियन्त्रण रखती है, जैसे—

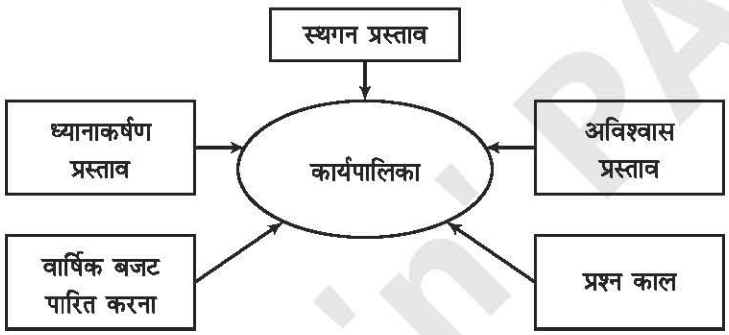

(a) स्थगन प्रस्ताव—यदि कोई 20 सदस्य किसी सार्वजनिक महत्त्व वाले विषय पर सरकार के जवाब से संतुष्ट नहीं हैं तो वे इस विषय पर अलग से चर्चा की माँग कर सकते हैं और संसद का कोई भी सदस्य यह स्थगन प्रस्ताव ला सकता है। यदि उस प्रस्ताव को लोकसभा अथवा राज्यसभा का अध्यक्ष स्वीकार कर लेता है तो उस मुद्दे पर बहस की अनुमति प्राप्त हो जाती है।

(b) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव—जनहित से सम्बन्धित किसी आवश्यक मुद्दों पर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए संसद में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है।

(c) आधे घण्टे की चर्चा (प्रश्नकाल)—यह समय सदस्यों को किसी विषय पर सरकार को घेरने का एक अतिरिक्त अवसर प्रदान करती है।

(d) वार्षिक बजट पारित करना—यह एक ऐसा समय होता है जिसमें विपक्ष को सरकार की आलोचना करने का पूरा अवसर प्राप्त होता है। विपक्ष के बजट को अस्वीकार करना सरकार में अविश्वास की अभिव्यक्ति का एक तरीका है।

(e) अविश्वास प्रस्ताव—अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति केवल लोक सभा के सदस्यों को ही प्राप्त है। लोकसभा का कोई भी सदस्य आवश्यक औपचारिकताएँ पूर्ण करने के उपरान्त मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। अधिकांशतः विपक्षी सदस्य अविश्वास प्रस्ताव पर सरकार की त्रुटियों एवं खामियों को प्रस्तुत कर सरकार पर नियन्त्रण बनाने या जनता के मध्य सरकार की छवि को खराब करने की कोशिश करते हैं। सत्तारूढ़ दल विपक्षी सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देता है और अपने-आप का बचाव करता है। हालाँकि जब तक सत्तारूढ़ पार्टी के पास बहुमत होता है तब तक उसे हार का भय नहीं होता। वास्तव में यह विशेष रूप से गठबन्धन की सरकारों के लिए शक्ति परीक्षण होता है।

3. वित्तीय कार्य एवं शक्तियाँ—संसद का महत्त्वपूर्ण कार्य वित्तीय कार्य है। यह जनता की धनराशि की सुरक्षा करता है। यह केंद्र सरकार की पूर्ण धनराशि को नियंत्रित करता है। इसके अनुमोदन के बिना कोई धनराशि व्यय नहीं की जा सकती है। यह स्वीकृति वास्तविक व्यय से पहले या व्यय के पश्चात् दुर्लभ मामलों में ली जा सकती है। बजट को प्रत्येक वर्ष संसद द्वारा अनुमोदित किया जाता है। वित्तीय मामलों में संसद को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है। कार्यकारी संसद के अनुमोदन के बिना एक पैसा खर्च नहीं कर सकते। कानून के दायरे से बाहर जाकर कोई कर नहीं लगाया जा सकता। सरकार अनुमोदन के लिए बजट को संसद में पेश करती है। बजट के पारित होने का अर्थ है संसद ने सरकार की प्राप्तियों

और खर्च को वैधता प्रदान कर दी। लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति सरकार के खर्च पर नजर रखती है। ये समितियाँ खातों की जाँच करती हैं और सार्वजनिक व्यय में अनियमितता, अवैध या अनुचित उपयोग के मामलों को उजागर करती हैं। इस प्रकार, संसद सरकार पर बजट के साथ-साथ बजट के बाद भी नियंत्रण रख रही है। यदि एक वित्त वर्ष में सरकार खर्च करने के लिए अनुमोदित बजट को खर्च करने में विफल रहती है तो बाकी बची धनराशि भारत की संचित निधि में वापस भेज दी जाती है। इसे 'चूक का नियम' कहते हैं। इसकी वजह से वित्त वर्ष के अंत तक व्यय में बढ़ोत्तरी हो जाती है।

4. **न्यायिक शक्तियाँ एवं कार्य**—संसद की न्यायिक शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित हैं—
   (i) इसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सुप्रीम कोर्ट एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने की शक्ति प्राप्त है।
   (ii) यह अपने या बाहरी सदस्यों को विशेषाधिकार की अवमानना या उल्लंघन के लिए दंडित भी कर सकता है।
5. **निर्वाचन शक्तियाँ एवं कार्य**—संसद की निर्वाचन शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित हैं—
   (i) संसद के निर्वाचित सदस्य (राज्य विधानसभाओं के साथ) राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेंगे।
   (ii) संसद के सभी सदस्य उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेंगे।
   (iii) लोकसभा अपना स्पीकर और डिप्टी स्पीकर स्वयं चुनता है।
   (iv) राज्य सभा द्वारा अपने उपाध्यक्ष का चुनाव।
   (v) विभिन्न संसदीय समितियों के सदस्य भी चुने गए हैं।
6. **संविधान संशोधन सम्बन्धी कार्य एवं शक्तियाँ**—केवल संसद के पास संविधान में संशोधन के लिए किसी प्रस्ताव को आरंभ करने का अधिकार है। संशोधन विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। हालाँकि, राज्य विधानमंडल संसद से राज्य में विधानपरिषद के गठन या उसे निरस्त करने के लिए अनुरोध प्रस्ताव पारित कर सकता है। प्रस्ताव के आधार पर संसद उस उद्देश्य के लिए संविधान में संशोधन हेतु अधिनियम बना सकती है।
   संविधान संशोधन के लिए तीन प्रकार के विधेयक होते हैं, जिसके लिए आवश्यक है—
   (i) साधारण बहुमत—ये विधेयक साधारण बहुमत द्वारा पारित किए जाते हैं यानि अधिकांश सदस्य उपस्थित होते हैं और प्रत्येक सदन में मतदान करते हैं।
   (ii) विशेष बहुमत—इन विधेयकों को सदन के बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई सदस्यों और प्रत्येक सदन में मतदान द्वारा पारित करने की जरूरत होती है।
   (iii) विशेष बहुमत एवं सभी राज्य विधानसभाओं में से आधे की सहमति—इस प्रकार के विधेयकों को प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत द्वारा पारित होने की जरूरत होती है। इसके अलावा, कम से कम राज्य विधानमंडलों के आधे विधानमंडलों को विधेयक पर अपनी सहमति देनी चाहिए।
7. **अन्य कार्य एवं शक्तियाँ**—उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त, संसद विभिन्न प्रकार के अन्य कार्य भी करती है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—
   (i) इसे राष्ट्रपति को आपातकाल घोषित करने की शक्ति प्राप्त है, संसद आपातकाल के ऐसे सभी उद्घोषणाओं को मंजूरी देती है। यद्यपि इसके लिए लोकसभा और राज्यसभा को उद्घोषणा को मंजूरी देनी होगी।
   (ii) संसद किसी भी राज्य से क्षेत्र को अलग करके या दो या अधिक राज्यों को एकजुट करके एक नया राज्य बना सकती है। यह सीमाओं और किसी भी राज्य का नाम बदल सकती है। उदाहरण के लिए सन् 2000 में, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड नए राज्य बनाए गए।
   (iii) संसद राज्यों में विधान परिषदों को समाप्त या निर्मित कर सकती है। यह केवल संबंधित राज्यों की विधानसभाओं के अनुरोध पर किया जाता है। यह भारतीय संसद, भारत के लोगों की आवश्यकता है। इसे देश में सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक संघर्षों को हल करने के लिए एक साधन के रूप में कार्य करना है। यह विशिष्ट मुद्दों पर सहमति बनाने में भी मदद करता है, जो देश के लिए विदेश नीति निर्माण की भाँति महत्त्वपूर्ण हैं।
   (iv) संसद को संविधान द्वारा कुछ विशिष्ट शक्तियों के साथ निवेश किया गया है। इनमें से कुछ नागरिकता संबंधी मामलों, राज्यों के पुनर्गठन और किसी भी राज्य के क्षेत्र, सीमा या नाम के परिवर्तन, लोकसभा की अवधि बढ़ाने, और सुप्रीम कोर्ट पर पूरक शक्तियों का उल्लेख करते हुए, अंतर-राज्यीय नदियों से संबंधित विवादों को समाप्त करने, उन्मूलन या विधान परिषदों का निर्माण आदि है।

(v) संविधान संसद को विभिन्न व्यक्तियों और निकायों में निहित शक्तियों के उपयोग के लिए विशिष्ट शर्तों को संरक्षित और विनियमित करने के लिए अंतिम निर्णय देता है।

प्र.2. भारत की लोकसभा की संरचना, शक्ति तथा कार्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 79** के अनुसार, भारतीय संघ की एक संसद होगी, जिसका निर्माण राष्ट्रपति तथा दो सदनों से मिलकर होगा, जिनके नाम क्रमश: **लोकसभा** तथा **राज्यसभा** होंगे।

लोकसभा
(Lok Sabha)

लोकसभा भारतीय संसद का प्रथम अथवा निम्न सदन है। संविधान में इसे **लोकसभा** (Lok Sabha) या **हाउस ऑफ पीपिल** (House of People) कहा गया है। यह जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि संस्था है। जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने के कारण इसे 'लोकप्रिय सदन' भी कहा जाता है।

लोकसभा का संगठन या संरचना
(Composition of Lok Sabha)

सदस्य-संख्या—संघीय संसद के निम्न सदन या लोकप्रिय सदन को लोकसभा का नाम दिया गया है। संविधान के **अनुच्छेद 81** के द्वारा मूलत: इसकी सदस्य-संख्या 500 रखी गई थी। सन् 1962 में हुए संविधान के 14वें संशोधन के अनुसार, लोकसभा की अधिकतम संख्या 525 थी। सन् 1973 में पारित संविधान के 31वें संशोधन के अनुसार लोकसभा के सदस्यों की संख्या 525 से बढ़ाकर 547 (545 निर्वाचित + 2 मनोनीत) कर दी गई थी परन्तु **'गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987** द्वारा निश्चित किया गया कि लोकसभा की अधिकतम सदस्य-संख्या 552 हो सकती है। इनमें से अधिकतम 530 सदस्य भारतीय संघ के राज्यों की जनता द्वारा और 20 को केन्द्र-शासित क्षेत्रों की जनता द्वारा निर्वाचित किया जाएगा। 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा एंग्लो इण्डियन समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में मनोनीत किए जाएँगे परन्तु लोकसभा की सदस्य संख्या 545 (543 निर्वाचित तथा 2 मनोनीत) है। जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन करके अब यह निश्चित कर दिया गया है कि लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्यों की संख्या में सन् 2025 तक किसी प्रकार की कोई वृद्धि नहीं की जाएगी।

सदस्यों का निर्वाचन—लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा किया जाता है। पहले भारत में 21 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति को वयस्क माना गया था परन्तु 61वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अब मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है। लोकसभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र (Single Member Constituencies) होते हैं। वर्तमान में ये निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं कि लोकसभा का सदस्य कम-से-कम 5 लाख और अधिक-से-अधिक साढ़े सात लाख जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करे। इस सम्बन्ध में अधिकतम सीमा परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती रहेगी। प्रतिनिधित्व का अनुपात यथासम्भव समस्त क्षेत्रों में समान रखने का प्रयत्न किया गया है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों हेतु स्थान सुरक्षित रखे गए हैं।

मतदान के लिए नागरिक की अर्हता—लोकसभा के चुनाव में उन सभी व्यक्तियों को मतदान का अधिकार होगा, जो भारत के नागरिक हैं और जिनकी आयु 18 वर्ष या अधिक है, जो पागल या दिवालिया नहीं है और जिन्हें संसद के कानून द्वारा किसी अपराध, भ्रष्टाचार या गैर-कानूनी व्यवहार के कारण मतदान से वंचित नहीं कर दिया है।

लोकसभा सदस्यता की अर्हता—लोकसभा की सदस्यता के लिए संविधान के अनुसार निम्नलिखित अर्हताएँ होनी आवश्यक हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 25 वर्ष की आयु को पूर्ण कर चुका हो।
3. केन्द्रीय (संघीय) सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अन्तर्गत वह कोई लाभ का पद धारण न किए हो।
4. वह किसी न्यायालय द्वारा पागल न ठहराया गया हो या दिवालिया न हो।

सन् 1988 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन करते हुए व्यवस्था की गई है कि अब आतंकवादी गतिविधि, तस्करी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, खाद्य पदार्थों एवं दवाओं में मिलावट करने वाले, विदेशी मुद्रा अधिनियम (FERA) का उल्लंघन करने वाले तथा महिलाओं के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्तियों को भी जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के अन्तर्गत चुनाव लड़ने के

अयोग्य माना जाएगा। वर्तमान में राज्यसभा, लोकसभा, विधानसभा तथा विधानपरिषद् का नामांकन-पत्र भरते समय उम्मीदवारों को शपथ-पत्र पर निम्नलिखित विषयों पर सम्पूर्ण जानकारी बिन्दुवार देनी होती है—

1. क्या प्रत्याशी किसी आपराधिक मामले में नामजद, दोषमुक्त या बरी हुआ है। यदि हाँ, तो उस पर अर्थदण्ड लगा अथवा उसे कैद की सजा सुनाई गई।
2. नामांकन से 6 माह पूर्व तक के समय में क्या प्रत्याशी दो वर्ष या इससे अधिक कैद योग्य किसी लम्बित प्रकरण में आरोपित था, जिसमें उस पर आरोप लगाए जा चुके हों तथा न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जा चुका हो। यदि हाँ, तो उसका विवरण।
3. प्रत्याशी, उसके पति या पत्नी तथा उसके आश्रितों के नाम की चल तथा अचल सम्पत्तियों का विवरण।
4. उत्तरदायित्व, विशेष रूप से यदि उन पर किसी सार्वजनिक वित्तीय संस्था अथवा सरकार का कोई बकाया है तो उसका विवरण।

कार्यकाल—लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है, परन्तु प्रधानमन्त्री की संस्तुति पर राष्ट्रपति के द्वारा समय से पूर्व भी लोकसभा को भंग किया जा सकता है। संकटकाल की घोषणा लागू होने पर संसद विधि द्वारा लोकसभा के कार्यकाल में वृद्धि कर सकती है। यह अवधि एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी। प्रत्येक परिस्थिति में संकटकाल की अवधि समाप्त होने के 6 महीने के अन्तर्गत ही लोकसभा का चुनाव होना आवश्यक है।

लोकसभा का अधिवेशन—लोकसभा का अधिवेशन राष्ट्रपति द्वारा आहूत किया जाता है। इस सम्बन्ध में केवल यह नियम है कि लोकसभा की दो बैठकों में 6 माह से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। गणपूर्ति अथवा कोरम के लिए 1/10 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।

लोकसभा की शक्तियाँ एवं कार्य
(Powers and Functions of Lok Sabha)

लोकसभा की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

1. **वित्तीय अधिकार**—संविधान के अनुसार लोकसभा का राष्ट्रीय वित्त पर पूर्ण अधिकार तथा नियन्त्रण होता है और इस सम्बन्ध में राज्यसभा की स्थिति अत्यन्त गौण है। **अनुच्छेद 109** के अनुसार, वित्त विधेयक केवल लोकसभा में ही पहले प्रस्तावित किए जा सकते हैं। लोकसभा से पारित होने के बाद वित्त विधेयक राज्यसभा में भेजे जाते हैं, जिनकी स्वीकृति या अपनी संस्तुति करने के लिए राज्यसभा को 14 दिन का समय दिया जाता है। यदि राज्यसभा 14 दिन तक विधेयक को अपनी संस्तुति के साथ वापस नहीं भेजती है तो विधेयक दोनों सदनों से पारित हुआ मान लिया जाता है। इस प्रकार राज्यसभा वित्त विधेयक को अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रोक सकती है अर्थात् पारित होने में मात्र 14 दिन का विलम्ब कर सकती है।
2. **विधायी अधिकार**—भारतीय संसद को संविधान के अनुसार, संघीय सूची, समवर्ती सूची, अवशिष्ट विषयों और कुछ परिस्थितियों में राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। किसी भी विधेयक के कानून बनने से पूर्व उसको लोकसभा द्वारा पारित किया जाना अनिवार्य है।
   साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है परन्तु महत्त्वपूर्ण विधेयक प्राय: लोकसभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। यदि कोई विधेयक राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया हो तो उसका लोकसभा से पारित होना भी अति आवश्यक है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हों और उसे पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा दूर न किया जा सके तो राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की व्यवस्था संविधान में है। लोकसभा के सदस्यों की संख्या राज्यसभा के सदस्यों की संख्या की दोगुनी से भी अधिक है इसलिए संयुक्त बैठक में लोकसभा की स्थिति अत्यधिक उच्च है। राज्यसभा किसी साधारण विधेयक को अधिक-से-अधिक 6 माह तक रोक सकती है।
3. **कार्यपालिका पर नियन्त्रण**—केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यदि लोकसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देती है तो मन्त्रिपरिषद को त्याग-पत्र देना होता है। लोकसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव तथा काम रोको प्रस्ताव भी पारित कर सकती है। लोकसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं तथा स्थगन प्रस्ताव रख सकते हैं। सदस्यों को सरकार के विभिन्न विभागों की

आलोचना करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त संसद सरकारी विधेयक अथवा बजट को अस्वीकार करके अथवा मन्त्रियों के वेतन में कटौती करके मन्त्रिपरिषद् पर नियन्त्रण रखती है। अन्तिम रूप में लोकसभा के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद् को उसके पद से हटाया जा सकता है।

4. **चुनाव सम्बन्धी अधिकार**—लोकसभा के सदस्य स्वयं में से ही अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं तथा लोकसभा के सदस्य राज्यसभा के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन भी करते हैं। लोकसभा के सदस्य उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में भी भाग लेते हैं।
5. **संविधान संशोधन सम्बन्धी अधिकार**—लोकसभा संविधान के संशोधन में भी भाग लेती है। संविधान का संशोधन करने वाला विधेयक लोकसभा अथवा राज्यसभा में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्ताव पारित होने के लिए आवश्यक है कि वह संसद के दोनों सदनों में पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण सदस्य संख्या के बहुमत एवं उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से पारित होना चाहिए। यदि संविधान संशोधन विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद हो जाता है तो वह प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है क्योंकि इस हेतु संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है।
6. **जाँच सम्बन्धी अधिकार**—राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव लोकसभा और राज्यसभा दोनों ही प्रस्तुत कर सकती हैं। यदि राज्यसभा दोषारोपण करती है तो उसकी जाँच लोकसभा करती है। यदि राज्यसभा उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव पारित करे तो उस पर लोकसभा की स्वीकृति आवश्यक है परन्तु लोकसभा उपराष्ट्रपति को पदच्युत करने का प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सकती है। यदि किसी संकटकाल में विभिन्न घोषणाओं को जारी रखना है तो उन पर लोकसभा की स्वीकृति आवश्यक है।
7. **जनता की शिकायतों का निवारण**—लोकसभा के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं और वे ही सामान्य जनता की वास्तविक कठिनाइयों का सही ज्ञान रखते हैं। वे ही उनकी शिकायतें सरकार तक पहुँचाते हैं और उनको दूर करने के लिए प्रयत्न करते हैं। वस्तुत: यह लोकसभा का बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकसभा का भारतीय संसद में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी शक्तियाँ अद्वितीय तथा अतुलनीय हैं।

प्र.3. राज्यसभा के संगठन, कार्यों एवं शक्तियों की समीक्षा कीजिए।

उत्तर

राज्यसभा
(Rajya Sabha)

राज्यसभा भारतीय संसद का उच्च सदन (Upper Chamber) अथवा द्वितीय सदन (Second Chamber) है। भारत की संघीय व्यवस्था में राज्यसभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है।

राज्यसभा का संगठन या संरचना
(Composition of Rajya Sabha)

राज्यसभा के सदस्यों की वर्तमान में संख्या 245 है, जिनमें 233 भारतीय संघ के राज्यों की विधान सभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा चुनकर आते हैं। 12 सदस्यों को राष्ट्रपति मनोनीत (Nominate) करता है जो कला, साहित्य, विज्ञान, समाज-सेवा व सहकारिता में विशेष ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त व्यक्ति होते हैं। ये निर्वाचित सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक राज्य से, उसकी जनसंख्या के आधार पर, प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित होती है। संविधान के **अनुच्छेद 80** के अनुसार, राज्यसभा के सदस्यों की संख्या अधिक-से-अधिक 250 हो सकती है।

राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन—राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन राज्य की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एकल संक्रमणीय मत-पद्धति के आधार पर होता है। केन्द्र-शासित प्रदेशों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन इनकी क्षेत्रीय सभाओं के सदस्यों द्वारा होता है।

राज्यसभा का कार्यकाल—राज्यसभा एक स्थायी सदन है। यह कभी भंग नहीं होता है। इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष बाद सेवानिवृत्त हो जाते हैं। अमेरिका की सीनेट की तरह राज्यसभा का प्रत्येक सदस्य 6 वर्ष तक अपने पद पर बना रहता है।

राज्यसभा की सदस्यता की अर्हता—राज्यसभा की सदस्यता प्राप्त करने के लिए उम्मीदवारों में अग्रलिखित अर्हताएँ होनी आवश्यक हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से अधिक हो।
3. किसी सरकारी पद पर आसीन न हो।
4. पागल, दिवालिया या संसद की किसी भी विधि द्वारा अयोग्य न ठहराया गया हो।
5. अपराधी तथा सजायाफ्ता न हो।

राज्यसभा के पदाधिकारी—भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति (Ex-officio Chairman) होता है और इसको राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में 4 लाख रुपये मासिक वेतन तथा अन्य अनेक प्रकार के भत्ते मिलते हैं। राज्यसभा का एक उपसभापति भी होता है, जिसे राज्यसभा के सदस्य अपने सदस्यों में से निर्वाचित करते हैं। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति सभापति के कार्यों का सम्पादन करता है।

गणपूर्ति—राज्यसभा की बैठकों के लिए इसकी समस्त संख्या व दसवें भाग की उपस्थिति आवश्यक है, अन्यथा सदन की बैठक नहीं हो सकती।

सदस्यों के वेतन तथा भत्ते—राज्यसभा के सदस्यों को लोकसभा के सदस्यों की भाँति वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

राज्यसभा की शक्तियाँ एवं कार्य
(Powers and Functions of Rajya Sabha)

राज्यसभा की शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **विधायी शक्तियाँ**—धन विधेयक के अतिरिक्त अन्य विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। धन विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रस्तावित हो सकता है। साधारण विधेयक तब तक पारित नहीं समझा जाएगा, जब तक कि वह राज्यसभा से भी पारित न हो जाए। जब किसी साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, तब ऐसी स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक द्वारा उक्त विधेयक पर निर्णय लिया जाता है। ऐसी स्थिति में भी लोकसभा की सदस्य-संख्या अधिक होने से वही विजयी होती है; अत: राज्यसभा किसी भी विधेयक को कानून बनने से नहीं रोक सकती है। राज्यसभा किसी साधारण विधेयक को अधिक-से-अधिक 6 महीने तक रोक सकती है अथवा यह कहा जाए कि 6 माह का विलम्ब कर सकती है।
2. **संविधान में संशोधन**—संविधान में प्रत्येक संशोधन के लिए राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है, अन्यथा संशोधन नहीं हो सकता है। संविधान संशोधन विधेयक को पहले राज्यसभा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु अब तक केवल एक संशोधन विधेयक (40वाँ) को ही राज्यसभा में पहले प्रस्तुत किया गया था।
3. **राज्य सूची के विषयों के सम्बन्ध में शक्ति**—संविधान के **अनुच्छेद 249** के अनुसार, राज्यसभा राज्य सूची से सम्बन्धित किसी भी विषय को उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर सकती है। इस प्रस्ताव के बाद संसद को एक वर्ष तक उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। राज्यसभा उसे प्रति एक वर्ष बाद बढ़ा सकती है। यह शक्ति लोकसभा को प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार राज्यसभा, संसद को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान कर सकती है।
4. **न्यायिक शक्तियाँ**—अनेक उच्च पदस्थ अधिकारियों को पद की अवमानना करने की स्थिति में पदच्युत करने का अधिकार राज्यसभा को प्राप्त है, ऐसा वह लोकसभा की सहमति की स्थिति में ही कर सकती है। इस न्यायिक शक्ति का उपयोग उपराष्ट्रपति को पदच्युत करने में भी किया जाता है।
5. **धन विधेयक को पारित करने सम्बन्धी अधिकार**—धन विधेयक पहले लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है, राज्यसभा में नहीं। राज्यसभा धन विधेयक को अधिक-से-अधिक 14 दिन के लिए रोक सकती है। राज्यसभा पारित करे या न करे परन्तु 14 दिन बाद वह विधेयक राज्यसभा द्वारा भी पारित हुआ मान लिया जाता है।
6. **कार्यवाहिका सम्बन्धी अधिकार**—राज्यसभा केवल मन्त्रियों से प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछ सकती है, उनके कार्यों व नीतियों की आलोचना कर सकती है। राज्यसभा के सदस्य काम रोको व ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत करके कार्यपालिका पर नियन्त्रण कर सकते हैं परन्तु राज्यसभा मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं कर सकती है क्योंकि मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति ही उत्तरदायी होता है।

7. **विविध शक्तियाँ**—राज्यसभा भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के निर्वाचनों में भाग लेती है। राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन परिस्थितियों में समय-समय पर की गई उद्घोषणाओं को जारी करने के लिए लोकसभा के साथ राज्यसभा का अनुमोदन भी अति आवश्यक है। यदि घोषणा उस समय की गई है, जब लोकसभा विघटित हो गई हो तो उस समय घोषणा का राज्यसभा के द्वारा स्वीकृत होना अनिवार्य है।
8. **अखिल भारतीय सेवा के गठन की शक्ति**—संविधान के **अनुच्छेद 312** के अनुसार, राज्यसभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से नई अखिल सेवाएँ स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है। यह शक्ति भी लोकसभा को प्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राज्यसभा को लोकसभा की अपेक्षा कम शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु वह प्रभावहीन सदन नहीं है। उसकी भी स्थिति और शक्तियों का महत्त्व है। **प्रो० जितेन्द्र रंजन** के शब्दों में "राज्यसभा न केवल रचना की दृष्टि से विश्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ द्वितीय सदन है वरन् यह आधुनिक प्रजातन्त्र के योग्य तथा द्वितीय सदन के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से भी सर्वाधिक सन्तुलित द्वितीय सदन है।"

प्र.4. लोकसभा अध्यक्ष के कार्य व उसके पद के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

लोकसभा का अध्यक्ष
(Speaker of Lok Sabha)

लोकसभा स्वयं अपने सदस्यों में से अध्यक्ष का निर्वाचन करती है। इस रूप में पद धारण करने वाला यदि लोकसभा का सदस्य है तो उसे अपना पद रिक्त करना पड़ेगा तथा लोकसभा द्वारा उपस्थित सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित करके उसे पद से मुक्त किया जा सकता है किन्तु इस प्रयोजन हेतु कोई भी प्रस्ताव तब तक प्रस्तावित नहीं किया जा सकता जब तक कि यह सूचना 14 दिन पूर्व अध्यक्ष को न दे दी गई हो। यदि कभी लोकसभा का विघटन किया जाए तो विघटन के पश्चात् होने वाले लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के पहले दिन तक वह अपना पद रिक्त नहीं करेगा। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा। अध्यक्ष लोकसभा का सबसे बड़ा पदाधिकारी है। अत: इस पद हेतु बहुत ही योग्य व्यक्ति निर्वाचित होना चाहिए क्योंकि उसका पद अति महत्त्वपूर्ण है।

I. लोकसभा अध्यक्ष के कार्य

लोकसभा अध्यक्ष के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

1. वह लोकसभा की बैठकों का सभापतित्व करता है तथा सदन की समस्त कार्यवाहियों का संचालन करता है।
2. लोकसभा के नेता से परामर्श करके वह लोकसभा का कार्यक्रम निर्धारित करता है। राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद के लिए समय निर्धारित करता है। राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधन प्रस्तुत किए जाने आदि का कार्य अध्यक्ष ही करता है।
3. संसद और राष्ट्रपति के बीच समस्त पत्र-व्यवहार उसी के माध्यम से होता है।
4. लोकसभा के सदस्यों की विशेषाधिकारों की सुरक्षा करना भी अध्यक्ष का ही कार्य है। विरोधी दलो के हितों की सुरक्षा भी उसी के द्वारा की जाती है।
5. वह सदन की कुछ समितियों का पदेन (ex-officio) अध्यक्ष भी होता है; जैसे—नियम समिति, कार्यवाही समिति आदि।
6. 'काम रोको प्रस्ताव' (Adjournment Motion) भी उसी की अनुमति मिलने पर प्रस्तुत किया जा सकता है।
7. सदन में अनुशासन स्थापित करना भी उसी का कार्य है।
8. उसकी आज्ञा प्राप्त होने पर ही कोई सदस्य लोकसभा में भाषण दे सकता है।
9. वह विदेशों में जाने वाले संसदीय शिष्टमण्डल का नेतृत्व करता है।
10. वह आवश्यक होने पर सदन में दर्शकों तथा प्रेस-प्रतिनिधियों के प्रवेश पर रोक लगा सकता है।
11. अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि कौन-सा विधेयक वित्त विधेयक है।
12. साधारणतया अध्यक्ष मतदान में भाग नहीं लेता किन्तु बराबर मत होने की स्थिति में वह निर्णायक मत (Casting Vote) देता है।
13. लोकसभा के सभी भाषण उसी को सम्बोधित करके दिए जाते हैं।

14. यदि कोई सदस्य सदन में अव्यवस्था उत्पन्न करता है तो अध्यक्ष उसे चेतावनी दे सकता है। यदि कोई सदस्य उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता है तो वह उसे सदन से बाहर निकलवा सकता है। इस कार्य में उसकी सहायता के लिए मार्शल (Marshal) उपस्थित रहते हैं।
15. वह प्रश्नों को स्वीकार करता है तथा नियम के विरुद्ध होने पर अस्वीकार भी कर सकता है।
16. प्रवर समितियों के सभापतियों की नियुक्ति भी उसी के द्वारा की जाती है।
17. जब कोई विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो अध्यक्ष ही उस पर सबसे पहले हस्ताक्षर करता है क्योंकि संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता भी वही करता है।

II. लोकसभा अध्यक्ष के पद का महत्त्व

संसदीय शासन-प्रणाली में लोकसभा अध्यक्ष का पद गौरव एवं सम्मान का होता है। संसद राष्ट्र की सर्वशक्तिशाली संस्था है और अध्यक्ष इसकी प्रतिष्ठा का रक्षक है। अपने व्यक्तित्व से वह शासन की नीतियों को प्रभावित कर सकता है। वह अनेक राजनीतिक संस्थाओं का प्रधान होने के कारण राष्ट्रीय विचारों को प्रभावित करता है और सार्वजनिक जीवन की रचना में सहायक होता है। यद्यपि उसका देश के शासन पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं होता फिर भी वह अप्रत्यक्ष रूप से इसे प्रभावित कर सकता है। भारतीय लोकसभा के पूर्व महासचिव **एम०एन० कौल** के शब्दों में—"यद्यपि साधारणतया अध्यक्ष केवल अध्यक्षता करता है, निगरानी रखता है तथा विवादों को नियन्त्रित करता है लेकिन उसकी स्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी संकट में उसकी शक्तियाँ राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। उसकी दो शक्तियाँ—प्रश्नों, संशोधनों आदि के प्रस्तावों की स्वीकृति देना तथा कार्यविधि के नियमों को कड़ाई से लागू करना-राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। अध्यक्ष की ये शक्तियाँ साधारण प्रतीत होती हैं लेकिन संकट की स्थिति में संसद पर उसका प्रभाव बहुत अधिक होता है।" अध्यक्ष की निष्पक्षता ही उसकी गरिमा तथा महत्ता का सूचक है।

प्र.5. भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों एवं स्थिति की विवेचना कीजिए।

उत्तर राष्ट्रपति भारतीय संघ की कार्यपालिका का प्रधान है। कार्यपालिका का प्रधान कार्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों का अनुपालन कराना है। आधुनिक विद्वानों के मतानुसार राष्ट्रपति को अनेक कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हैं।

भारत के राष्ट्रपति की शक्तियाँ
(Powers of President of India)

I. कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान के **अनुच्छेद 53** के अनुसार भारतीय संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं। इनका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से कर सकता है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन सभी क्षेत्रों तक है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार है।
2. समस्त कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य राष्ट्रपति के नाम से ही किए जाते हैं।
3. प्रधानमन्त्री व अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। वह मन्त्रियों के बीच कार्यों का विभाजन भी करता है।
4. मन्त्रिपरिषद् में लिए गए निर्णयों तथा व्यवस्थापन के प्रस्तावों की जानकारी उसे प्रधानमन्त्री से प्राप्त करने का अधिकार है।
5. राष्ट्रपति किसी मन्त्री द्वारा लिए गए निर्णय को मन्त्रिपरिषद् के विचाराधीन रखवा सकता है।
6. नियुक्ति सम्बन्धी राष्ट्रपति की शक्तियाँ बहुत व्यापक हैं। वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, राज्य के राज्यपाल, केन्द्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल व प्रशासक, भारत के महान्यायवादी (Attorney General of India), भारत के सम्प्रेक्षक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India), निर्वाचन आयुक्त आदि की नियुक्ति करता है।
7. राष्ट्रपति अनेक आयोगों व उनके सदस्यों की नियुक्ति करता है; जैसे—संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति, राज-भाषा आयोग, चुनाव आयोग, भाषायी अल्पसंख्यक आयोग, वित्त आयोग, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए एक विशेष पदाधिकारी और पिछड़े वर्गों की दशा सुधारने सम्बन्धी आयोग आदि के सदस्यों व अध्यक्ष की नियुक्ति करता है।

8. राष्ट्रपति को उपर्युक्त पदाधिकारियों को उनके पद से हटाने का अधिकार भी प्राप्त है। किन्तु न्यायाधीशों व संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों को विशेष प्रक्रिया का पालन करते हुए ही हटाया जा सकता है।
9. वह राज्य सरकारों को नियन्त्रित और निर्देशित भी कर सकता है तथा राज्यों के पारस्परिक विवादों के समाधान के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन कर सकता है।
10. राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रधान है; अत: वह विदेशों में भारत के राजदूतों व अन्य प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में वह देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह विदेशों के राजदूतों तथा कूटनीतिक प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्रों (Credentials) को स्वीकार करता है।
11. राष्ट्रपति को युद्ध तथा सन्धि करने का भी अधिकार प्राप्त है किन्तु संसद द्वारा उनकी स्वीकृति आवश्यक है।
12. संघीय कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के कारण राष्ट्रपति को भारतीय सेना का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander) भी कहा जाता है। वह सेना के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति भी करता है।

II. विधायी शक्तियाँ

राष्ट्रपति की शक्तियों का क्षेत्र केवल कार्यपालिका शक्तियों तक ही सीमित नहीं है। **अनुच्छेद 79** के अनुसार, "संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम राज्यसभा और लोकसभा होंगे।" इस प्रकार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। यद्यपि वह संसद का सदस्य है लेकिन वो किसी सदन का सदस्य नहीं होगा, उसे निम्नलिखित विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं—

1. वह संसद के दोनों सदनों के अधिवेशनों को आहूत करता है तथा स्थगित (Adjournment) भी कर सकता है।
2. प्रधानमन्त्री के परामर्श पर वह लोकसभा को भंग कर सकता है।
3. राष्ट्रपति को दोनों सदनों की अलग-अलग या संयुक्त बैठक में अभिभाषण देने का अधिकार है।
4. वह किसी भी सदन को सन्देश भेज सकता है। अमेरिका में भी राष्ट्रपति को कांग्रेस में सन्देश भेजने का अधिकार है।
5. राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में ऐसे 12 सदस्यों को मनोनीत किया जाता है जो कला, साहित्य, विज्ञान या समाज-सेवा के क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं।
6. किसी विधेयक पर संसद के दोनों सदनों में मतभेद होने पर, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन भी बुला सकता है।
7. संसद द्वारा पारित कोई भी विधेयक राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बिना, कानून का रूप धारण नहीं कर सकता है। धन-विधेयक को छोड़कर अन्य सभी विधेयकों को वह पुनर्विचार के लिए संसद को लौटा सकता है। जब संसद द्वारा पुनर्विचार के पश्चात् विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है, तब राष्ट्रपति को उस पर अपने हस्ताक्षर अनिवार्य रूप से करने पड़ते हैं।
8. जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा हो तथा अचानक किसी विधि की आवश्यकता पड़े तो राष्ट्रपति को अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार है। अध्यादेशों का वही प्रभाव होता है जो संसदं द्वारा पारित अधिनियमों का होता है।
9. राज्यों के विधानमण्डलों में कुछ विशेष प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए ऐसा कोई विधेयक जो विदेश व्यापार या वाणिज्य अथवा अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगाता हो।
10. राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही कुछ विवरणों व रिपोर्टों को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है; जैसे—भारतीय सम्प्रेक्षक एवं महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट, वित्त आयोग की सिफारिशें, संघ लोक सेवा आयोग तथा अन्य आयोगों की रिपोर्ट।
11. राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कुछ विशेष प्रकार के विधेयकों को राज्यपाल, राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उसके पास भेज सकता है। राष्ट्रपति के अनुमोदन के उपरान्त ही वे कानून का रूप धारण कर सकते हैं।

III. न्यायिक शक्तियाँ

ब्रिटेन तथा अमेरिका के राज्याध्यक्षों की भाँति भारतीय राष्ट्रपति को निम्नलिखित न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं—

1. उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

TOUCH 'n' PASS

2. न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को दण्ड माफ करने, कम करने या कुछ समय के लिए स्थगित करने का अधिकार है। वह निम्नलिखित स्थितियों में दण्डित अपराधियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित शक्ति का प्रयोग कर सकता है—
   (i) उन सब अवस्थाओं में जिनमें सैनिक न्यायालय (Court Martial) ने दण्ड दिया हो।
   (ii) उन सब अवस्थाओं में जिनमें दण्ड संघ के किसी कानून का उल्लंघन करने के लिए मिला हो।
   (iii) जब किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड मिला हो।

इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति अपनी शक्ति का प्रयोग कर इन दण्डों को कम कर सकता है या पूरी तरह से समाप्त कर सकता है।

IV. वित्तीय शक्तियाँ

राष्ट्रपति को निम्नलिखित वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त हैं—

1. राष्ट्रपति ही प्रतिवर्ष संसद में बजट प्रस्तुत करने की आज्ञा देता है।
2. राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भी धन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
3. राष्ट्रपति की अनुमति से ही संसद में पूरक, अतिरिक्त और आपातकालीन अनुदानों की माँग की जाती है।
4. आकस्मिक निधि पर राष्ट्रपति का पूरा नियन्त्रण रहता है। इस निधि से वह किसी आकस्मिक व्यय के लिए संसद की पूर्व स्वीकृति के बिना ही सरकार को धन दे सकता है किन्तु इसके लिए बाद में संसद की स्वीकृति ली जानी चाहिए।
5. आयकर से प्राप्त धनराशि का संघ तथा राज्यों में बँटवारे के लिए अनुपात का फैसला भी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग करता है।
6. राष्ट्रपति समय-समय पर वित्त आयोग की नियुक्ति भी करता है। यह आयोग परामर्श देता है कि करों से प्राप्त होने वाली आय को संघ और राज्यों में किस अनुपात से बाँटा जाए और राज्यों को कितनी वित्तीय सहायता दी जाए।

राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति
(Defects Position of President of India)

44वें संविधान संशोधन से पहले यह एक विवादास्पद प्रश्न था कि राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति क्या है। 44वें संविधान संशोधन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि वह संवैधानिक प्रधान है और मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य है। वह ब्रिटेन के सम्राट की तरह है जो नाममात्र का प्रधान है और राष्ट्र का प्रतीक है। इस बारे में **डॉ० बी०आर० अम्बेडकर** ने कहा था—"राष्ट्रपति की स्थिति वही है, जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट की है। वह राज्य का प्रधान है न कि कार्यपालिका का। वह राष्ट्र का प्रतिनिधि है, शासक नहीं। प्रशासन में उसका स्थान एक चिह्न के रूप में या मुहर के समान है, जिसके द्वारा राष्ट्र के निर्णयों को जाना जाता है।"

प्रारम्भ में **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद** का भी यही मत था। संविधान सभा में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने भी कहा था—"राष्ट्रपति के लिए हमने कम या अधिक ब्रिटिश सम्राट जैसा स्थान अपनाया है। उसकी स्थिति संवैधानिक राष्ट्रपति की है।"

राष्ट्रपति के बारे में यह विवाद कि वह मन्त्रिपरिषद् के परामर्श को मानने के लिए बाध्य है अथवा नहीं—44वें संशोधन के साथ ही समाप्त हो जाता है। अब वह परामर्श मानने के लिए बाध्य है। इस प्रकार, राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का प्रश्न अब समाप्त हो गया है। यदि अब राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद के परामर्श को नहीं मानता है या संविधान का अतिक्रमण करता है तो उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है।

वस्तुत: भारत का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की भाँति संवैधानिक प्रधान है, न कि अमेरिकी राष्ट्रपति की भाँति वास्तविक कार्यपालिका का प्रधान। भारतीय संविधान बनाने वालों का दृष्टिकोण भी राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रधान बनाना ही था। भारत का विगत वर्षों का शासन भी इस बात का साक्षी है कि राष्ट्रपति ने सदैव संवैधानिक प्रधान के रूप में ही कार्य किया है। निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत हम यही विचार करेंगे कि भारत का राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान ही है—

1. **संवैधानिक अध्यक्ष**—भारतीय संविधान के निर्माताओं का वास्तविक इरादा राष्ट्रपति को केवल संवैधानिक प्रधान ही बनाना था, यह कुछ कथनों से स्पष्ट हो जाएगा। **डॉ० बी०आर० अम्बेडकर** ने राष्ट्रपति की स्थिति को स्पष्ट करते हुए संविधान सभा में कहा था—"भारत के प्रारूप संविधान में भारत संघ का अध्यक्ष जिस अधिकारी को बनाया गया है, उसे संघ का राष्ट्रपति कहा गया है।"

टी०टी० कृष्णामाचारी ने भी सभा में कहा था—"उत्तरदायी शासन में राष्ट्रपति की वह स्थिति नहीं है, जो अमेरिका जैसी प्रतिनिध्यात्मक सरकार में एक राष्ट्रपति की है। सभा में यह तर्क देने वाले कि राष्ट्रपति एक तानाशाह बन सकता है, गलत कह रहे हैं और वे भूल कर रहे हैं कि राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही कार्य करना होगा।"

पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी संविधान सभा में कहा था—"हम सरकार की इस मन्त्रिमण्डलीय विशेषता पर बल देना चाहते हैं कि मन्त्रिमण्डल और संसद में वास्तविक शक्ति निहित है, न कि राष्ट्रपति में।.....हमने अपने राष्ट्रपति को वास्तविक शक्तियाँ प्रदान नहीं की हैं वरन् हमने उसके पद को महिमामण्डित बनाया है।"

संविधान सभा में व्यक्त किए गए उपर्युक्त विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि संविधान बनाने वालों का दृष्टिकोण राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष बनाना ही था। 44वें संविधान संशोधन से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

2. **राष्ट्रपति का निर्वाचन**—राष्ट्रपति के निर्वाचन से भी यह स्पष्ट होता है कि भारत के संविधान बनाने वाले किसी भी रूप में उसे वास्तविक शक्तियाँ सौंपने के लिए उत्सुक नहीं थे। राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है जबकि प्रधानमन्त्री तथा उसके मन्त्रिमण्डल के सहयोगी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं; अत: संविधान बनाने वालों ने वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद् को ही प्रदान की हैं; अत: संविधान बनाने वालों की भावनाओं तथा दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, उसे प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही कार्य करना चाहिए। यही यथार्थ में उसकी संवैधानिक स्थिति भी है।
3. **भारत में उत्तरदायी अथवा संसदात्मक सरकार की स्थापना**—राष्ट्रपति की शक्तियों की आलोचना करने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई है। **अनुच्छेद 75** के अनुसार, "मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति को जो परामर्श देगी, उसके लिए वह लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।" संविधान में यह भी कहा गया है कि राष्ट्रपति अपने पद से सम्बन्धित किसी भी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं है। इस प्रकार उत्तरदायित्व मन्त्रिपरिषद् पर थोपा गया है और शक्तियाँ राष्ट्रपति को सौंपी गई हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मन्त्रिपरिषद् ही राष्ट्रपति की शक्तियों का वास्तविक उपयोग करेगी।

प्र.6. प्रधानमन्त्री की शक्तियों एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

प्रधानमन्त्री की शक्तियाँ एवं कार्य
(Functions and Powers of Prime Minister)

भारत में प्रधानमन्त्री कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होता है। उसकी शक्तियों की तुलना इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री तथा अमेरिका के राष्ट्रपति से की जा सकती है। **रैम्जेम्योर** लिखते हैं कि "उसको इतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो विश्व के किसी भी संवैधानिक प्रधान को प्राप्त नहीं हैं, यहाँ तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति को भी नहीं है।" प्रधानमन्त्री के द्वारा निम्न कार्य सम्पन्न किए जाते हैं—

1. **मंत्रिपरिषद का निर्माण**—प्रधानमन्त्री का सर्वप्रथम कार्य मंत्रिपरिषद का निर्माण करना होता है। वह मंत्रियों को चुनने के लिए स्वतन्त्र होता है। राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री द्वारा सुझाए गए व्यक्तियों को ही मन्त्री नियुक्त करता है। लेकिन यह प्रधानमन्त्री की स्थिति तथा लोकसभा में उसके दल के बहुमत पर भी निर्भर करता है कि वह अपनी इच्छा का प्रयोग किस सीमा तक कर सकता है। मंत्रियों का चुनाव पूर्णतया प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर रहता है। यह ठीक है कि प्रधानमंत्री अपने दल के प्रमुख नेताओं को मन्त्री बनाने के अधिकार का उल्लंघन कम ही करता है, परन्तु यदि वह चाहे तो दल के प्रमुख नेताओं को किसी-न-किसी बहाने मंत्रिपरिषद् की सदस्यता से वंचित कर सकता है।
2. **विभागों का वितरण**—मंत्रिपरिषद् के निर्माण के पश्चात् प्रधानमन्त्री मंत्रियों में विभागों का वितरण करता है। यह निर्णय वही करता है कि कौन-सा मन्त्री किस विभाग का अध्यक्ष होगा तथा कौन-सा मन्त्री कैबिनेट मन्त्री होगा तथा कौन-सा मन्त्री राज्य मन्त्री अथवा उपमन्त्री। विभाग बाँटने की शक्ति को प्रधानमंत्री की स्वेच्छाधारी शक्ति कहा जा सकता है। क्योंकि प्रधानमन्त्री विभागों के वितरण में स्वतन्त्र होता है लेकिन इस कार्य में वह मंत्रियों के अनुभव, वरिष्ठता, रुचि, योग्यता आदि को ध्यान में रखता है। महत्त्वपूर्ण विभाग; जैसे—विदेश, वित्त, मानव संसाधन, सूचना एवं प्रसारण, रक्षा, रेल आदि वरिष्ठ अनुभवी तथा योग्य मंत्रियों को प्रदान किए जाते हैं।
3. **मंत्रिपरिषद का पुनर्गठन**—सैद्धान्तिक रूप में मन्त्री, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद पर बने रहते हैं, परन्तु राष्ट्रपति मंत्रियों को पद से अलग करने का निर्णय प्रधानमंत्री के कहने पर ही करता हैं। अत: "व्यवहार में मन्त्री प्रधानमंत्री के

प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।'' प्रधानमन्त्री किसी भी मन्त्री को हटा सकता है, उसका विभाग बदल सकता है, उसके स्तर में परिवर्तन कर सकता है। वह चाहे तो सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् का पुनर्गठन भी कर सकता है। वह किसी नए व्यक्ति को मंत्रिपरिषद् में शामिल भी कर सकता है। यदि प्रधानमंत्री की दृष्टि में कोई मन्त्री कुशलता से कार्य नहीं कर रहा अथवा यदि वह मन्त्री प्रधानमंत्री के किसी निर्णय से सहमत नहीं है तो प्रधानमंत्री उस व्यक्ति को त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है, जो कि उस मन्त्री को देना ही होता है, अन्यथा प्रधानमंत्री राष्ट्रपति से कहकर उसे पदच्युत करवा सकता है। वास्तव में इस बात की नौबत नहीं आती। जब भी किसी मन्त्री को यह पता चल जाता है कि प्रधानमन्त्री उसे मंत्रिपरिषद् में नही रखना चाहता तो वह स्वयं त्यागपत्र दे देता है।

4. **मंत्रिमण्डल की कार्यवाही का संचालन**—प्रधानमन्त्री मंत्रिमण्डल की कार्यवाही के संचालन के लिए उसकी बैठक बुलाता है। बैठक का स्थान निर्धारित करता है। बैठक की कार्य सूची का निर्धारण करता है। बैठक में मंत्रियों को अपने विचार रखने की अनुमति देता है।
5. **मंत्रिमण्डल का नेता**—मंत्रिमण्डल के सभी सदस्य प्रधानमन्त्री के अधीन कार्य करते हैं। प्रधानमन्त्री किसी भी मन्त्री को कार्य के सम्बन्ध में निर्देश दे सकता है। महत्त्वपूर्ण मामलों पर निर्णय कर सकता है। मन्त्री को विशेष कार्य के सन्दर्भ में सलाह दे सकता है।
6. **लोकसभा का नेता**—प्रधानमन्त्री को लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है। अत: लोकसभा का अस्तित्व उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। वह लोकसभा की कार्यवाही के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोकसभा में विवाद को शान्त करने में सहायता करता है। लोकसभा में गतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में विपक्षी दलों के नेताओं से विचार-विमर्श करके उसे दूर करता है। यदि प्रधानमन्त्री लोकसभा का सदस्य न हो तो वह अन्य किसी सदस्य को अपने स्थान पर लोकसभा का नेता नियुक्त करता है।
7. **राष्ट्रपति एवं मंत्रिपरिषद /मंत्रिमण्डल के मध्य कड़ी**—राष्ट्रपति और मंत्रिमण्डल के मध्य कड़ी के रूप में प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल के निर्णयों की सूचना देता है। वह राष्ट्रपति के सन्देशों को मंत्रिमण्डल तक पहुँचाता है। संविधान के **अनुच्छेद 78** में व्यवस्था की गई है कि ''प्रधानमन्त्री का यह दायित्व है कि वह मंत्रिपरिषद् के सभी निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को देगा।''
8. **नियुक्तियाँ**—प्रशासन को चलाने की दृष्टि से राष्ट्रपति अनेक प्रकार की नियुक्तियाँ करता है। ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति अपनी इच्छा से नहीं, अपितु प्रधानमन्त्री की सलाह से करता है। इसमें राज्यों के राज्यपाल, चुनाव आयुक्त तथा मुख्य चुनाव आयुक्त, संघ लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्यों आदि की नियुक्तियों को सम्मिलित किया जाता है।
9. **अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का प्रतिनिधित्व**—अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के प्रधानमंत्री का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चाहे विदेश विभाग प्रधानमन्त्री के हाथ में न हो, फिर भी अन्तिम रूप से विदेश नीति का निर्धारण प्रधानमंत्री के द्वारा ही किया जाता है। वह महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श में भाग लेता है।
10. **सरकार का मुखिया**—प्रधानमन्त्री मंत्रिमण्डल अथवा वास्तविक कार्यपालिका का प्रमुख होता है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति उसी की सलाह से होती है। सरकार के किसी भी अंग के कार्यों के लिए प्रधानमन्त्री ही अन्तिम रूप से उत्तरदायी होता है। सरकार की नीतियों का निर्धारण वही करता है।
11. **लोकसभा को भंग करना**—लोकसभा को भंग करने का अधिकार यद्यपि राष्ट्रपति के पास है लेकिन राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह से ही लोकसभा को भंग करता है। परन्तु यदि प्रधानमन्त्री लोकसभा में अपना बहुमत खो दे तो राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है। भारत के प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा को भंग करवा सकता है। जैसा कि सन् 1977 में राष्ट्रपति फखरुद्दीन ने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। इसी प्रकार चौ. चरण सिंह की सलाह पर राष्ट्रपति नीलम संजीव रेडडी ने भी लोकसभा को भंग किया था। सन् 1997 में पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल के परामर्श पर भी राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया था और उसके पश्चात् नए चुनाव करवाए गए। इसी प्रकार सन् 1999 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के मंत्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया।

12. **प्रधानमन्त्री के आर्थिक कार्य**—वैश्वीकरण के दौर में आर्थिक नीतियों का संचालन प्रधानमन्त्री की देखरेख में ही किया जाता है। भारत किस देश को 'सबसे प्रिय देश' (Most Favoured Nation) का दर्जा देगा, यह निर्णय वित्त मन्त्रालय प्रधानमन्त्री की सलाह से ही करता है। प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियन्त्रण होता है। अर्थव्यवस्था की विफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। जुलाई, 1969 से लेकर जून, 1970 तक वित्त विभाग श्रीमती इन्दिरा गांधी के पास ही था। बजट का निर्माण वित्त मन्त्री प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है।
13. **सरकार और जनता के मध्य कड़ी**—सरकार के महत्त्वपूर्ण निर्णयों की जानकारी प्रधानमन्त्री ही जनता को प्रदान करता है। इसलिए प्रधानमन्त्री की ओर से राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित किए जाते हैं।
14. **प्रधानमंत्री की आपातकालीन शक्तियाँ**—भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियाँ दी गई हैं, लेकिन वास्तविक रूप में राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है, जैसे अक्टूबर, 1962 में चीन के आक्रमण के समय एवं 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान के आक्रमण के समय तथा 26 जून, 1975 को आन्तरिक व्यवस्था के खराब होने पर अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही आपातकालीन स्थिति की घोषणा की थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति-शासन भी प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार लगाया जाता है। 44वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति, अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल की घोषणा तभी कर सकता है, यदि मंत्रिमण्डल संकटकाल की घोषणा करने की लिखित सलाह दे। अप्रैल, 1977 को कार्यवाहक राष्ट्रपति **श्री बी०डी० जत्ती** ने प्रधानमंत्री की सलाह पर 9 विधानसभाओं को भंग किया।
15. **प्रधानमंत्री तथा सुरक्षा**—राष्ट्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। इसका कारण उसका रक्षा विभाग पर पूरा नियन्त्रण होता है। राष्ट्र की सुरक्षा और विदेश नीति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और वह दोनों ही विभागों के कार्यों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। देश की विजय-पराजय उसकी विजय-पराजय है।
16. **प्रधानमंत्री एवं विदेश नीति**—प्रधानमंत्री को विदेश मन्त्रालय से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना पड़ता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की नीति का स्पष्टीकरण करता है। विदेश नीति के सभी महत्त्वपूर्ण विषय उसी के द्वारा निश्चित किए जाते हैं। विदेशी राज्यों में प्रधानमंत्री की विचारधारा एवं नीतियाँ मान्य होती हैं। उसी के सुझावों पर किसी राज्य को मान्यता दी जाती है, राजदूत नियुक्त किए जाते हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर उन्हें वापस बुलाया जाता है। राज्यों के अध्यक्षों की बैठकों में या सम्मेलनों में वह भारत का प्रतिनिधित्व करता है। शान्ति, युद्ध एवं सन्धि के क्षेत्र में प्रधानमंत्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी देश के प्रतिनिधि के रूप में प्रधानमंत्री ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

प्र.7. मन्त्रिपरिषद् एवं राष्ट्रपति का मन्त्रिपरिषद् एवं लोकसभा के साथ सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

मन्त्रिपरिषद एवं राष्ट्रपति का सम्बन्ध
(Correlation between Council of Ministers and President)

भारत में कार्यपालिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से मन्त्रिपरिषद् का गठन इसे परामर्श देने के लिए किया जाता है किन्तु वास्तविक स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। मन्त्रिपरिषद् के निर्णय एवं परामर्श राष्ट्रपति को मानने ही पड़ते हैं। यद्यपि राष्ट्रपति इनके सम्बन्ध में अपनी व्यक्तिगत असहमति प्रकट कर सकता है किन्तु वह मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होता है। भारतीय संविधान में किए गए 42वें तथा 44वें संविधान संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् का परामर्श कानूनी दृष्टिकोण से मानने के लिए बाध्य है। वह मन्त्रिपरिषद् से केवल पुनर्विचार के लिए आग्रह ही कर सकता है। वह मन्त्रिपरिषद् की नीतियों को किस रूप में प्रभावित करता है, यह उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। मन्त्रिपरिषद् में लिए गए समस्त निर्णयों से राष्ट्रपति को अवगत कराया जाता है तथा राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् से किसी भी प्रकार की सूचना माँग सकता है। राष्ट्रपति ही मन्त्रिपरिषद् का गठन करता है तथा उसे शपथ ग्रहण कराता है। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर वह किसी भी मन्त्री को पदच्युत कर सकता है।

मन्त्रिपरिषद तथा लोकसभा का सम्बन्ध
(Correlation between Council of Ministers and House of the People)

संविधान के अनुसार मन्त्रिपरिषद् तथा लोकसभा परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। **बेजहॉट** का कथन है—"मन्त्रिपरिषद् अपने जन्म की दृष्टि से विधायिका से सम्बन्धित है।" मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। सामूहिक उत्तरदायित्व का तात्पर्य है कि एक मन्त्री की गलती सभी मन्त्रियों की गलती मानी जाती है जिसके परिणामस्वरूप जब एक मन्त्री के त्याग-पत्र देने की बात आती है तो सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् को त्याग-पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार समस्त मन्त्री एक-दूसरे से परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। लोकसभा; प्रश्नों, पूरक प्रश्नों, काम रोको, स्थगन तथा निन्दा प्रस्तावों द्वारा मन्त्रिपरिषद् पर नियन्त्रण रखती है तथा निम्न आधारों पर मन्त्रिपरिषद् को पदच्युत कर सकती है—

1. **अविश्वास प्रस्ताव द्वारा**—लोकसभा के सदस्य मन्त्रिपरिषद् से असन्तुष्ट होकर सदन के सामने अविश्वास का प्रस्ताव (No-confidence Motion) प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रस्ताव के पारित हो जाने पर मन्त्रिपरिषद् को त्याग-पत्र देना होता है।
2. **विधेयक की अस्वीकृति**—मन्त्रिपरिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक को यदि लोकसभा स्वीकृत न करे तो ऐसी दशा में भी मन्त्रिपरिषद् का त्याग-पत्र उसका नैतिक दायित्व बन जाता है क्योंकि यह इस बात का सूचक होता है कि सदन में मन्त्रिपरिषद् (अर्थात् बहुमत दल) ने विश्वास खो दिया है।
3. **किसी मन्त्री के प्रति अविश्वास**—यदि लोकसभा किसी मन्त्री विशेष के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दे तो भी सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।
4. **कटौती का प्रस्ताव**—जिस समय लोकसभा में वार्षिक बजट प्रस्तुत किया जाता है, उस समय यदि लोकसभा बजट में कटौती का प्रस्ताव पारित कर दे या किसी माँग को अस्वीकृत कर दे तो भी मन्त्रिपरिषद् को अपना त्याग-पत्र देने के लिए विवश होना पड़ता है।
5. **गैर-सरकारी प्रस्ताव**—लोकसभा किसी ऐसे गैर-सरकारी प्रस्ताव को स्वीकार कर ले जिसका मन्त्रिपरिषद् विरोध कर रही हो तो इस स्थिति में मन्त्रिपरिषद् को अपना पद त्यागना होगा।

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो मन्त्रिपरिषद् पर संसद द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है किन्तु व्यवहार में दलीय अनुशासन के कारण मन्त्रिपरिषद् ही संसद पर नियन्त्रण रखती है। मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकता है। मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही लोकसभा की कार्यविधि को निश्चित किया जाता है। सदन की लोकलेखा समिति तथा आकलन समिति मन्त्रिपरिषद् की गतिविधियों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखती है।

प्र.8. केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के संगठन, कार्य एवं शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद्
(Union Council of Ministers)

संविधान के **अनुच्छेद 74** में उपबन्धित है—"राष्ट्रपति को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होगा।" सैद्धान्तिक रूप से भारतीय संविधान द्वारा समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति को प्रदान की गई हैं और राष्ट्रपति को सहायता तथा परामर्श देने के लिए मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है परन्तु संविधान द्वारा अपनाई गई संसदात्मक शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवहार में राष्ट्रपति एक संवैधानिक शासक-मात्र है। वास्तविक रूप से कार्यपालिका की समस्त शक्ति 'सहायता और परामर्श देने वाली समिति' मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है। राष्ट्रपति के नाम पर शासन की समस्त शक्तियों का उपभोग मन्त्रिपरिषद् के द्वारा ही किया जाता है। भारतीय संविधान में केवल मन्त्रिपरिषद् का ही उल्लेख किया गया है, मन्त्रिमण्डल का नहीं। मन्त्रिमण्डल तो संसदीय प्रणाली की परम्पराओं की उपज है। मन्त्रिमण्डल का मन्त्रिपरिषद् पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। यह देश की वास्तविक कार्यपालिका है।

मन्त्रिपरिषद् का गठन—भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 75** के अनुसार, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होगी तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श से की जाएगी। मन्त्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में संवैधानिक स्थिति यह है कि राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। व्यवहार में राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री के परामर्श को मानना

आवश्यक है। यदि वह उसके परामर्श को न माने तो प्रधानमन्त्री स्वयं त्याग-पत्र देकर संवैधानिक संकट उत्पन्न कर सकता है। व्यवहार में प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय देश के समस्त भौगोलिक भागों एवं प्रदेशों का प्रतिनिधित्व, समस्त वर्गों, धर्मों एवं जातियों के प्रतिनिधित्व एवं राज्य सभा के कुछ सदस्यों के प्रतिनिधित्व का ध्यान रखता है।

मन्त्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या—मूल संविधान के द्वारा मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गई थी और आवश्यकतानुसार मन्त्रियों की संख्या बढ़ाई तथा घटाई जा सकती थी परन्तु अब संविधान के 97वें संशोधन के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि मन्त्रिपरिषद् की संख्या निम्न सदन (लोकसभा) की सदस्य संख्या के 15% से अधिक नहीं हो सकती है। मन्त्रिपरिषद् के गठन के बाद प्रधानमन्त्री द्वारा मन्त्रियों के बीच विभागों का विभाजन किया गया है। वैधानिक दृष्टि से इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री को पूर्ण शक्ति प्राप्त है।

मन्त्रियों द्वारा शपथ ग्रहण—पद ग्रहण करने से पूर्व प्रधानमन्त्री सहित प्रत्येक मन्त्री को राष्ट्रपति के समक्ष पद और गोपनीयता की शपथ लेनी होती है।

मन्त्रिपरिषद का कार्यकाल—मन्त्रिपरिषद् का कार्यकाल सामान्यतया लोकसभा के कार्यकाल के समान 5 वर्ष का होता है परन्तु वस्तुत: इसका कोई निश्चित कार्यकाल नहीं है। लोकसभा के बहुमत का विश्वास खो देने पर उसे त्याग-पत्र देना होता है।

मन्त्रिपरिषद के कार्य एवं शक्तियाँ
(Powers and Functions of Council of Ministers)

भारत में मन्त्रिपरिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **नीति-निर्धारण सम्बन्धी कार्य**—मन्त्रिपरिषद् का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय नीति को निर्धारित करना है। मन्त्रिपरिषद् यह निश्चय करती है कि आन्तरिक क्षेत्र में प्रशासन के विभिन्न विभागों के द्वारा और वैदेशिक क्षेत्र में दूसरे देशों के साथ सम्बन्धों के विषय में किस प्रकार की नीति अपनायी जाएगी। मन्त्रिपरिषद् द्वारा निर्धारित नीति के आधार पर ही समस्त प्रशासनिक व्यवस्था संचालित होती है। राष्ट्रीय नीति का निर्माण करते समय मन्त्रिपरिषद् अपनी पार्टी के घोषणा-पत्र, कार्यक्रमों तथा सिद्धान्तों को सदैव सम्मुख रखता है।
2. **राष्ट्रीय कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियन्त्रण**—कार्यपालिका का प्रमुख कार्य संसद द्वारा पारित विधि को क्रियान्वित करना तथा प्रशासन का संचालन करना है। मन्त्रिपरिषद् का प्रत्येक सदस्य (मन्त्री) किसी-न-किसी विभाग का अध्यक्ष होता है तथा उस विभाग का संचालन भी वही करता है। भारत में संघ सरकार की समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है परन्तु कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित है। मन्त्रिपरिषद् ही सरकार की नीति को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न विभागों को एक सूत्र में बाँधती है। व्यवहारत: राष्ट्रपति के अधिकारों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद् ही करती है इसलिए युद्ध, शान्ति या वैदेशिक नीति से सम्बन्धित प्रश्नों का निर्णय भी वही करता है। सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही की जाती हैं। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् देश की सर्वोच्च कार्यपालिका तथा राष्ट्रीय नीति की संचालक है।
3. **मन्त्रिपरिषद् का समन्वयकारी कार्य**—मन्त्रिपरिषद् का मुख्य कार्य शासन के विभिन्न विभागों का मार्गदर्शन तथा उनके कार्यों में समन्वय स्थापित करना है। किसी भी देश में जहाँ प्रशासकीय नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप का इतना अधिक विस्तृत क्षेत्र है, वहाँ नौकरशाही का भय सदैव बना रहता है। एक विभाग का कार्य दूसरे विभाग के कार्य में बाधा पहुँचा सकता है। उनमें अधिकार के लिए विवाद उत्पन्न हो सकता है। यह स्थिति उस समय बहुत हास्यास्पद हो जाती है जब प्रत्येक विभाग अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे और मन्त्रिपरिषद् की विस्तृत नीति की उपेक्षा करने लगे। विभागीय प्रशासन को इन मन्त्रियों के कारण एक समन्वयकारी अधिकारी की आवश्यकता हो जाती है। मन्त्रिपरिषद् इस आवश्यकता की पूर्ति करती है।
4. **वित्तीय शक्तियाँ**—देश की आर्थिक नीति निर्धारित करने का उत्तरदायित्व भी मन्त्रिपरिषद् का ही होता है। मन्त्रिपरिषद् द्वारा निर्धारित नीति के आधार पर ही वित्तमन्त्री बजट (देश की सम्भावित आय-व्यय का विवरण) तैयार करता है और उसे संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत करता है। अन्य समस्त वित्त विधेयक को भी वित्तमन्त्री ही संसद में प्रस्तुत करता है।
5. **नियुक्ति सम्बन्धी कार्य**—शासन के समस्त उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को है, जो अन्तत: मन्त्रिपरिषद् के हाथों में चला जाता है; जैसे—राज्यपाल, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक, राजदूत, वित्त आयोग और मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा निर्वाचन आयोग के सदस्यों की नियुक्तियाँ।

6. **व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्य**—मन्त्रिपरिषद् प्रत्यक्ष रूप से विधि-निर्माण नहीं करती है परन्तु जितनी भी विधियाँ संसद द्वारा पारित होती हैं, उनकी रूपरेखा प्राय: पहले मन्त्रिपरिषद् द्वारा निश्चित की जाती है। सम्बन्धित मन्त्री विधेयक को सदन में प्रस्तुत करता है और विधेयक से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देता है। इस प्रकार सदन में विधेयकों को पारित कराना मन्त्रिपरिषद् का ही कार्य है।
7. **वैदेशिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण**—मन्त्रिपरिषद द्वारा ही देश के वैदेशिक सम्बन्धों पर भी नियन्त्रण रखा जाता है। दूसरे शब्दों में, सन्धि-समझौते भी मन्त्रिपरिषद् के द्वारा किए जाते हैं। युद्ध की घोषणा करना तथा शान्ति की स्थापना करना मन्त्रिपरिषद् का ही उत्तरदायित्व है।
8. **जाँच-पड़ताल की शक्ति**—मन्त्रिपरिषद् पूर्व मन्त्रियों, मुख्यमन्त्रियों तथा अधिकारियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जाँच करने के लिए आयोग नियुक्त कर सकती है।
9. **अन्य शक्तियाँ**—भारतीय मन्त्रिपरिषद् को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त हैं, जो ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त नहीं हैं। संसद के सत्रों की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति के अध्यादेश जारी करने के अधिकार के अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद् को विधि-निर्माण का भी अधिकार है। आपातकालीन स्थिति में यह राष्ट्रपति के समस्त अधिकारों का उपभोग करती है तथा इस अवधि में मौलिक अधिकारों को निलम्बित भी कर सकती है। यह राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है परन्तु इन अधिकारों के प्रयोग के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक है। मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति को क्षमादान करने के सम्बन्ध में परामर्श देती है तथा विभिन्न उपाधियों के वितरण की संस्तुति भी करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संसदीय शासन-प्रणाली में शासन के एक महत्त्वपूर्ण तन्त्र के रूप में मन्त्रिपरिषद् की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों का वास्तविक रूप से उपभोग मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही किया जाता है। आन्तरिक तथा विदेश नीति का निर्माण, सभी प्रमुख नियुक्तियाँ, कानूनों को लागू करना एवं व्यवस्था को बनाए रखना, प्रशासन तथा वित्त पर नियन्त्रण इत्यादि अनेक कार्यों का सम्पादन मन्त्रिपरिषद् करती है। **लावेल** ने उसे "राजनीतिक वृत्तखण्ड के मेहराब के बीच का पत्थर" कहा है। मैरियट के अनुसार, "मन्त्रिपरिषद् वह धुरी है जिस पर प्रशासन-चक्र घूमता है।" **ग्लैडस्टोन** के शब्दों में—"मन्त्रिपरिषद् वह सूर्य पिण्ड है जिसके चारों ओर अन्य पिण्ड घूमते हैं।"

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विधानसभा के एक ऐसे अधिकार का उल्लेख कीजिए, जो कि विधानपरिषद् को प्राप्त नहीं है।

उत्तर विधानसभा राज्य की मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर सकती है जबकि विधानपरिषद् को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

प्र.2. राज्य विधानपरिषद् किसी धन विधेयक को कितने दिनों तक पारित होने से रोक सकती है?

उत्तर विधानपरिषद् किसी धन विधेयक को पारित होने से अधिकतम 14 दिनों तक रोक सकती है।

प्र.3. ऐसे दो राज्यों के नाम लिखिए जहाँ विधानपरिषदें हैं।

उत्तर विधानपरिषदों के अस्तित्व वाले दो राज्य हैं—उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र।

प्र.4. किसके परामर्श पर राज्यपाल विधानसभा को भंग कर सकता है?

उत्तर मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राज्यपाल विधानसभा को भंग कर सकता है।

प्र.5. इस प्रदेश का विधानमण्डल द्वि-सदनीय है अथवा एक सदनीय?

उत्तर इस प्रदेश (उत्तर प्रदेश) का विधानमण्डल द्विसदनीय है।

प्र.6. राज्य विधानमण्डल का सत्रावसान कौन करता है?

उत्तर राज्य विधानमण्डल का सत्रावसान राज्यपाल करता है।

प्र.7. राज्य की कार्यपालिका विधानमण्डल के किस सदन के प्रति उत्तरदायी होती है?

उत्तर राज्य की कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए विधानमण्डल के निम्न सदन अर्थात् विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

प्र.8. राज्य के विधानमण्डल को किन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है?

उत्तर राज्य का विधानमण्डल राज्य सूची में दिए गए सभी विषयों पर तथा समवर्ती सूची के विषयों पर उस सीमा तक कानून बनाने का अधिकार रखता है जिस सीमा तक वे संसद द्वारा पारित कानून का अतिक्रमण न करते हों।

प्र.9. आपके राज्य में विधानसभा के अध्यक्ष का चयन कौन करता है?

उत्तर हमारे राज्य में विधानसभा के अध्यक्ष का चयन विधानसभा के सदस्य अपने सदस्यों में से ही करते हैं।

प्र.10. विधानसभा और विधानपरिषद् के बीच किसी विधेयक के सम्बन्ध में गतिरोध उत्पन्न होने पर क्या दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाने का प्रावधान है?

उत्तर गतिरोध की अवस्था में राज्य के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करने का प्रावधान नहीं है।

प्र.11. राज्यपाल के किसी एक अधिकार का उल्लेख कीजिए।

उत्तर राज्य के महाधिवक्ता व उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करना।

प्र.12. राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है?

उत्तर राज्यपाल की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है।

प्र.13. राज्यपाल पद पर नियुक्ति हेतु अपेक्षित कोई दो अर्हताएँ लिखिए।

उत्तर 1. वह भारत का नागरिक हो तथा 2. उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. क्या राज्यपाल पर महाभियोग लगाया जा सकता है?

उत्तर राज्यपाल पर महाभियोग लगाने की कोई व्यवस्था नहीं है।

प्र.15. राज्यपाल अध्यादेश कब जारी करता है?

उत्तर जिस समय विधानसभा का अधिवेशन न चल रहा हो, उस समय राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता है।

प्र.16. राज्य की मन्त्रिपरिषद् में कितने प्रकार के मन्त्री होते हैं?

उत्तर राज्य की मन्त्रिपरिषद् में तीन प्रकार के मन्त्री होते हैं—कैबिनेट स्तर के मन्त्री, राज्य मन्त्री और उपमन्त्री।

प्र.17. राज्य की मन्त्रिपरिषद् का प्रधान कौन होता है?

उत्तर राज्य की मन्त्रिपरिषद् का प्रधान मुख्यमन्त्री होता है।

प्र.18. राज्य-मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता कौन करता है?

उत्तर राज्य-मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता मुख्यमन्त्री करता है।

प्र.19. राज्य की मन्त्रिपरिषद् का गठन कौन करता है?

उत्तर राज्य की मन्त्रिपरिषद् का गठन मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राज्यपाल करता है।

प्र.20. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति की आवश्यक शर्त बताइए।

उत्तर मुख्यमन्त्री की नियुक्ति की एक आवश्यक शर्त यह है कि उसे विधानसभा के बहुमत प्राप्त दल का नेता होना चाहिए।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विधानसभा विधानपरिषद से अधिक शक्तिशाली कैसे है? कोई दो कारण बताइए।

उत्तर विधानसभा विधानपरिषद् से अधिक शक्तिशाली होने के दो कारण निम्नलिखित हैं—

1. **वित्तीय क्षेत्र में**—धन विधेयक केवल विधानसभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं विधानपरिषद् में नहीं, किन्तु विधानपरिषद् से पारित होने के लिए प्रत्येक धन विधेयक उसके पास अवश्य भेजा जाता है, परन्तु विधेयक पर परिषद् द्वारा दी गई राय मानने के लिए विधानसभा बाध्य नहीं है।
2. **विधायी क्षेत्र में**—साधारण विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं, परन्तु ये विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। जब कोई साधारण विधेयक विधानसभा द्वारा स्वीकृत हो जाता है, तब उस पर विधानपरिषद् की स्वीकृति लेने के लिए उसे विधानपरिषद् के पास भेजा जाता है। यदि विधानपरिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तिथि से तीन माह तक उसे पारित न किया जाए तो विधानसभा पुनः इसे पारित करके विधानपरिषद् में भेजती है। इस बार भी यदि विधानपरिषद् इसे अस्वीकृत करती है या उसे संशोधित करती है अथवा एक महीने तक उस पर कोई निर्णय नहीं लेती है तो ऐसी स्थिति में साधारण विधेयक स्वीकृत मान लिया जाता है और उसे राज्यपाल के पास हस्ताक्षर हेतु भेज दिया जाता है।

प्र.2. विधानपरिषद् की उपयोगिता को समझाइए।

उत्तर राज्य विधानपरिषद् की उपयोगिता इस प्रकार है—

1. इस व्यवस्था द्वारा उन लोगों को भी विधायिका में सीधे अपना योगदान देने का अवसर मिलता है जिन्हें किन्हीं कारणों से प्रत्यक्ष चुनावों से नहीं चुना जा सका हो।
2. विधान मंडल का उच्च सदन विधान सभा के निर्णयों की समीक्षा करने और सत्तापक्ष के निरंकुशतापूर्ण निर्णयों पर अंकुश लगाने में सहायता करता है।
3. उच्च सदन शिक्षाविदों और बुद्धिजीवियों को एक मंच प्रदान करता है, जो सरकार की जन-कल्याण योजनाओं के माध्यम से राज्य के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देते हैं।
4. इस व्यवस्था को नियंत्रण और संतुलन (Check and Balance) सिद्धांत के अनुसार किसी भी लोकतांत्रिक सरकार के लिए आवश्यक माना जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. विधानपरिषद् एवं विधानसभा में तुलनात्मक अन्तर प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

विधानपरिषद् एवं विधान सभा की तुलना
(Comparison of Legislative Council and Legislative Assembly)

विधानपरिषद् एवं विधानसभा की तुलना निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है—

क्र०सं०	विधानपरिषद्	विधानसभा
1.	विधानपरिषद् राज्य विधामण्डल का उच्च सदन अथवा द्वितीय सदन होता है।	विधान सभा राज्य विधानमंडल का निम्न सदन अथवा प्रथम सदन होता है।
2.	विधान परिषद् एक स्थाई निकाय है जिसका विघटन नहीं किया जा सकता परन्तु एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष की समाप्ति के बाद सेनानिवृत्त हो जाते हैं तथा उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं। इनके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है।	विधान सभा का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है परन्तु कार्यकाल पूर्ण होने के पूर्व मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राजयपाल द्वारा इसे भंग किया जा सकता है।
3.	विधान परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत प्रणाली के आधार पर होता है।	विधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से पूर्व वयस्क मताधिकार के आधार पर साधारण बहुमत की पद्धति द्वारा होता है।
4.	विधान परिषद् राज्य के कुछ विशेष वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है।	विधान सभा अपने क्षेत्र की समस्त जनता का प्रतिनिधत्व करती है।
5.	राज्य की मन्त्रिपरिषद् के प्रति उत्तरदाई नहीं होती।	राज्य की मन्त्रिपरिषद विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।
6.	विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक राज्य की विधानसभा के सदस्यों की संख्या की एक-तिहाई होती है, परन्तु वह 40 से कम किसी अवस्था में नहीं हो सकती।	विधान सभा के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक 500 तथा कम से कम 60 हो सकती है।
7.	विधान परिषद् के सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन हेतु गठित निर्वाचक मंडल के सदस्य नहीं होते हैं। अर्थात् विधान परिषद् राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं ले सकती है।	विधान सभा के सभी निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन हेतु सदस्य गठित निर्वाचक मंडल के सदस्य होते हैं। अर्थात् विधानसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग ले सकते हैं।
8.	धन विधेयक विधान परिषद् में प्रस्तावित नहीं किया जा सकता।	धन विधेयक केवल विधानसभा में प्रस्तावित किया जा सकता है।
9.	विधान परिषद् मन्त्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत नहीं किया जा सकता। वह मन्त्रीपरिषद के कार्यों की जाँच, आलोचना ही कर सकती है। जो प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछकर तथा स्थगन प्रस्ताव द्वारा किया जाता है।	विधानसभा मन्त्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकता है।

प्र.4. राज्य विधायिका की शक्तियों पर प्रतिबन्धों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

राज्य विधायिका की शक्तियों पर प्रतिबन्ध
(Restrictions on Powers of State Legislative)

राज्य विधायिका की शक्तियों पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध होते हैं—

1. समवर्ती सूची के किसी विषय पर राज्य द्वारा बनाया गया कानून हो तथा उसी विषय पर बने केन्द्रीय कानून से विरोधाभास हो या टकराता है तो संसद द्वारा बनाया गया कानून प्रभावी होगा।
2. कुछ विधेयक भारत के राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना राज्य विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। जैसे-राज्य के भीतर अथवा अन्य राज्यों के साथ व्यापार और वाणिज्य पर पाबन्दी लगाने से सम्बन्धित विधेयक।

3. राज्य विधेयक पर स्वीकृति देने से पूर्व राज्यपाल विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ भेज सकता है। ऐसा विधेयक तभी कानून बनाता है जब राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है।
4. संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है यदि—
   (i) दो या दो से अधिक राज्य विधायिकाएँ या विधानमण्डल इस सम्बन्ध में आवेदन करती हैं।
   (ii) राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से ऐसा करने के आशय का प्रस्ताव पारित करती है।
   (iii) यदि कोई नियम अथवा कानून किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व को निभाने के लिए अनिवार्य बन जाता है।
5. राज्य विधायिका ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो। राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है यदि सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय उस कानून को असंवैधानिक पाते हैं या वह कानून संविधान के अनुरूप न हो।

प्र.5. राज्यपाल पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताओं एवं शर्तों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर संविधान के अनुच्छेद 157 के अनुसार कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होने का पात्र नहीं होगा जब तक वह भारत का नागरिक न हो तथा 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो। **अनुच्छेद 158** में, राज्य के राज्यपाल पद के लिए कुछ शर्तों का भी उल्लेख है, जो निम्नलिखित हैं—

1. राज्यपाल संसद अथवा किसी राज्य के विधानमण्डल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो संसद अथवा राज्य के विधानमण्डल का सदस्य हो तो उसके राज्यपाल नियुक्त हो जाने पर यह समझा जाएगा कि जिस दिन से उसने राज्यपाल का पद ग्रहण किया, उस दिन से संसद अथवा राज्य के विधानमण्डल से उसका पद रिक्त हो गया है।
2. राज्यपाल कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।
3. राज्यपाल को नि:शुल्क निवास स्थान मिलेगा, तथा उसे वे सब वेतन, भत्ते, उपलब्धियाँ तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जिन्हें संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। उसके वेतन तथा भत्तों में उसके कार्यकाल में कोई अलाभकारी परिवर्तन न होगा। उसके वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित होने के कारण **'मत-निरपेक्ष'** (Non-Votable) है। राज्यपाल को 1 जनवरी, 2016 से 3.50 लाख ₹ प्रतिमाह वेतन दिये जाने का प्रावधान किया गया है।
   अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल को उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सामने शपथ लेनी होती है जिसमें वह यह प्रतिज्ञा करता है कि राज्यपाल पद का कार्यपालन श्रद्धापूर्वक करेगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान तथा विधि का परीक्षण, संरक्षण तथा प्रतिरक्षण करेगा तथा राज्य की जनता की सेवा और कल्याण में लगा रहेगा। संविधान के अनुसार एक ही व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल भी नियुक्त किया जा सकता है।

प्र.6. राज्यपाल की वित्तीय और न्यायिक शक्तियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर वित्तीय शक्तियाँ—संविधान द्वारा राज्यपाल को निम्नलिखित वित्तीय अधिकार प्रदान किए गए हैं—

1. राज्य विधान सभा में राज्यपाल की सिफारिश के बिना धन विधेयक को पेश नहीं किया जा सकता।
2. राज्यपाल की अनुमति के बिना राज्य की आकस्मिक निधि से व्यय नहीं किया जा सकता।
3. राज्य के वित्तमंत्री के माध्यम से राज्यपाल, राज्य विधान सभा में राज्य का वार्षिक बजट पेश कराता है।
4. किसी प्रकार के अनुदान की माँग को या करों के प्रस्ताव को राज्यपाल के अनुमोदन से विधान सभा में पेश किया जाता है।

न्यायिक शक्तियाँ—राज्य सूची में दिए गए विषयों के सम्बन्ध में न्यायालय द्वारा दण्डित व्यक्तियों को राज्यपाल द्वारा क्षमा किया जा सकता है। वह दण्ड को निलम्बित तथा स्थगित कर सकता है। लेकिन **अनुच्छेद 161** के अन्तर्गत राज्यपाल की क्षमादान की शक्तियाँ, राष्ट्रपति को **अनुच्छेद 72** के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों से भिन्न हैं। मृत्युदण्ड को क्षमा प्रदान करना व सैनिक न्यायालयों द्वारा दिए गए दण्ड को क्षमा करना राष्ट्रपति के अधिकार क्षेत्र में है। राज्यपाल को इस प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल से परामर्श किया जाता है।

प्र.7. मन्त्रिपरिषद् की दो प्रमुख शक्तियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर मन्त्रिपरिषद् की दो प्रमुख शक्तियों का वर्णन निम्नलिखित है—

1. **शासन की नीति निर्धारित करना**—मन्त्रिपरिषद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य शासन की नीति निर्धारित करना है। चाहे गृह विभाग हो या शिक्षा, स्वास्थ्य अथवा कृषि शासन की नीति का निर्धारण मन्त्रिपरिषद् के द्वारा ही किया जाता है। मन्त्रिपरिषद् न केवल नीति निर्धारण करती है, वरन् उसे कार्य रूप में भी परिणत करती है।

2. **कानून निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करना**—मन्त्रिपरिषद न केवल शासन वरन कानून निर्माण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यदि यह कहा जाए कि मन्त्रिपरिषद विधानमण्डल की सहमति से कानूनों का निर्माण करती है तो इसमें कुछ अनुचित न होगा। विधानमण्डल में कौन-कौन से विधेयक तथा किस क्रम में प्रस्तुत किए जाएंगे, इसका निर्णय मन्त्रिपरिषद को ही करना होता है। प्राय: अधिकांश विधेयक शासन की ओर से ही प्रस्तुत किए जाते हैं और मन्त्रिपरिषद् अपने बहुमत के बल पर ही इन्हें स्वीकृत करती है। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् कानून निर्माण के क्षेत्र में विधानमण्डल का नेतृत्व करती है।

प्र.8. मुख्यमन्त्रियों के कार्यकाल, वेतन एवं भत्ते को समझाइए।

उत्तर मुख्यमंत्री हेतु निश्चित कार्यकाल नहीं है। इसका कार्यकाल राज्य विधान सभा के कार्यकाल के समान 5 वर्ष है। यदि विधान सभा का कार्यकाल बढ़ जाता है तो मुख्यमंत्री का कार्यकाल स्वयं बढ़ जाता है। इससे पूर्व भी मुख्यमंत्री स्वेच्छा से राज्यपाल को त्याग पत्र दे सकता है। वह राज्यपाल के प्रसादपर्यंत अपने पद पर रहता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राज्यपाल उसे किसी भी समय बर्खास्त कर सकता है। राज्यपाल द्वारा उसे तब तक बर्खास्त नहीं किया जा सकता जब तक उसे विधान सभा में बहुमत प्राप्त है। लेकिन यदि वह विधान सभा में विश्वास खो देता है तो उसे त्यागपत्र देना चाहिए अन्यथा राज्यपाल उसे निष्कासित कर सकता है।

मुख्यमन्त्री के वेतन एवं भत्ता का निधारण राज्य विधानमंडल द्वारा किया जाता है। राज्य विधानमण्डल के प्रत्येक सदस्य को मिलने वाले वेतन भत्ता सहित उसे विषयक भत्ते, नि:शुल्क आवास, यात्रा भत्ता और चिकित्सा सुविधाएँ मिलती हैं।

प्र.9. राज्य के प्रशासन में मुख्यमन्त्री की भूमिका का वर्णन कीजिए तथा राज्यपाल से उसके सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।

उत्तर राज्यपाल विधानमण्डल में बहुमत प्राप्त दल के नेता को मुख्यमन्त्री तथा मुख्यमन्त्री के परामर्श पर मन्त्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। यदि किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राज्यपाल स्वविवेक से मुख्यमन्त्री की नियुक्ति कर सकता है। वह मुख्यमन्त्री की सलाह पर मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों को मन्त्रिपरिषद् से हटा सकता है। मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राज्यपाल विधानसभा को भंग कर सकता है। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् अधिक प्रभावशाली रहती है। राज्यपाल मात्र वैधानिक प्रधान होता है, शासन का समस्त कार्यभार तो मन्त्रिपरिषद् ही सँभालती है। इसीलिए वह राज्यपाल के लगभग समस्त अधिकारों का उपभोग करती है। राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य होता है। वह मन्त्रिपरिषद् को केवल चेतावनी, परामर्श तथा प्रोत्साहन दे सकता है। वास्तव में राज्य के शासन-संचालन का कार्य वही सम्पन्न करती है। मन्त्रिपरिषद् ही राज्य के प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई होती है।

प्र.10. किन परिस्थितियों में राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् को भंग कर सकता है? समझाइए।

उत्तर राज्यपाल को मंत्रिपरिषद को भंग करने का अधिकार प्राप्त है। निम्नलिखित परिस्थितियों में राज्यपाल मंत्रिपरिषद को भंग कर सकता है—

1. जब विधान सभा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे और मंत्रिपरिषद त्यागपत्र न दे।
2. राज्यपाल को यह विश्वास हो जाए, कि मंत्रिपरिषद का विधानमण्डल में बहुमत नहीं रह गया है।
3. मंत्रिपरिषद की नीतियों से राष्ट्र का अहित सम्भाव्य हो या केन्द्र से संघर्ष होने की सम्भावना हो अर्थात् मंत्रिपरिषद संविधान के प्रावधानों के अनुसार कार्य न कर रहा हो, ऐसी स्थिति में राज्यपाल मंत्रिपरिषद को भंग कर सकता है।
4. जब मुख्यमंत्री को, किसी स्वतंत्र अधिकरण ने जाँच के पश्चात् भ्रष्टाचार में निहित पाया हो।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विधान सभा की संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर देश में केन्द्रीय शासन के प्रारूप पर ही प्रान्तीय शासन को अपनाया गया है। अत: देश के प्रान्तों में भी शासन के तीन अंगों को स्वीकार किया गया है। इनमें विधान बनाने वाले अंग को विधायिका या विधानमण्डल कहते हैं जो सर्वोच्च स्थिति रखता है। विधायिका जिन कानूनों का निर्माण करती है उनके अनुसार कार्यपालिका प्रशासन चलाती है और न्यायपालिका उन कानूनों की वैधता के निर्धारण का कार्य करती है।

विधानमण्डल का मूलभूत कार्य कानूनों का निर्माण करना ही है। विधानमण्डल में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं जो जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। विधायिका अपने प्रान्त की वित्त व्यवस्था पर भी पूरा नियन्त्रण रखती है। प्रान्तीय मन्त्रिपरिषद् लोकप्रिय सदन अर्थात विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।

राज्य की व्यवस्थापिका
(Legislature)

संविधान के अनुच्छेद 168 में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमण्डल होगा, जो राज्यपाल तथा कुछ राज्यों में दो सदनों से तथा कुछ में एक सदन से मिलकर बनेगा। जहाँ राज्य के विधानमण्डल में दो सदन हों, वहाँ एक विधानपरिषद् और दूसरा विधानसभा के नाम से जाना जाएगा।

इस प्रकार भारतीय संविधान के आधार पर प्रत्येक राज्य में एक विधानमण्डल या व्यवस्थापिका निर्मित की गई है। कुछ राज्यों में विधानमण्डल के दो सदन हैं तो कहीं एक सदन है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश इन छह राज्यों में विधानपरिषद् है। इस प्रकार इन राज्यों के विधानमण्डल में दो सदन हैं। अन्य राज्यों की व्यवस्थापिका में एक सदन है। जहाँ द्वि-सदनात्मक व्यवस्थापिका है, वहाँ प्रथम सदन को विधानसभा और दूसरे सदन को विधानपरिषद कहा जाता है। संसद को यह अधिकार है कि वह एक सदन वाले विधानमण्डलीय राज्यों में दूसरा सदन स्थापित कर सकती है और द्वि-सदनात्मक राज्यों से एक सदन को समाप्त कर सकती है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सम्बन्धित राज्य की विधानसभा अपने कुल बहुमत व उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पारित कर ले।

विधानसभा का गठन
(Composition of Legislative Assembly)

विधानमण्डल का प्रथम सदन विधानसभा कहलाता है। विधानसभा में सदस्यों की संख्या प्रत्येक राज्य में समान नहीं है, किन्तु किसी भी राज्य में इसकी सदस्य संख्या 60 से कम और 500 से अधिक नहीं हो सकती है। उस समय उत्तर प्रदेश की विधानसभा में 403 सदस्य हैं। विधानसभा के सदस्यों को एम०एल०ए० (MLA = Member of Legislative Assembly) कहते हैं।

1. **सदस्यों की अनिवार्य योग्यताएँ**—विधानसभा का चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवार को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होती हैं—
   (i) वह भारत का नागरिक हो, (ii) वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, (iii) वह पागल या दिवालिया घोषित न किया गया हो, (iv) उसका नाम विधानसभा की मतदाता सूची में हो, तथा (v) वह संसद द्वारा समय-समय पर निर्धारित समस्त शर्तें पूरी करता हो।
2. **निर्वाचन पद्धति**—विधानसभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा बहुमत-प्रणाली के आधार पर होता है। संविधान के अनुसार वह व्यक्ति (पुरुष अथवा नारी) जो 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका हो मतदान का अधिकारी होता है। चुनाव की सुविधा के लिए जनसंख्या के आधार पर राज्य को विभिन्न चुनाव क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें 'निर्वाचन-क्षेत्र' कहा जाता है। इसके बाद प्रत्येक क्षेत्र के मतदाताओं की सूची, जिसे 'मतदाता सूची' कहते हैं, तैयार की जाती है। इसके बाद निश्चित तिथि को चुनाव होता है। मतदाता मतदान-केन्द्र पर मतदान करने जाते हैं, जहाँ मतदाता सूची में नाम देखकर और पहचान पत्र द्वारा मतदाता की पहचान कर उन्हें मतदान की अनुमति दी जाती है। चुनाव की पूरी व्यवस्था देश का निर्वाचन आयोग करता है।
3. **अधिवेशन**—वर्ष में विधानसभा के दो अधिवेशन होने आवश्यक हैं और दोनों के मध्य 6 माह से अधिक का अन्तर होना चाहिए। असाधारण परिस्थितियों में विधानसभा का विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है।
4. **विधानसभा की कार्यविधि**—विधानसभा के सदस्यों का चुनाव 5 वर्ष के लिए होता है। 42वें संविधान संशोधन के आधार पर इसकी कार्यविधि बढ़ाकर 6 वर्ष कर दी गई थी किन्तु यह अवधि अब पुन: 5 वर्ष कर दी गई है। इस अवधि की समाप्ति पर इसके नए सदस्यों का चुनाव होता है किन्तु राज्यपाल इससे पूर्व भी मुख्यमन्त्री के परामर्श पर इसे भंग कर सकता है। संविधान द्वारा संसद को यह अधिकार प्राप्त है क वह कानून बनाकर आपातकाल की घोषणा करके विधानसभा के कार्यकाल को एक वर्ष के लिए बढ़ा दे।

विधान सभा की शक्तियाँ व कार्य
(Functions and Powers of Legislative Assembly)

जिन राज्यों में विधान मंडल एक सदनीय है वहाँ पर विधानमंडल की सभी शक्तियों का प्रयोग विधानसभा द्वारा किया जाता है तथा जिन राज्यों में विधान मडल द्विसदनीय है, वहाँ पर भी विधानसभा अधिक प्रभावशाली है। अतः विधानसभा की प्रमुख शक्तियाँ व कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **विधायी शक्तियाँ**—राज्य की विधान सभा और विधान परिषद में कोई भी साधारण विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु धन विधेयक हमेशा विधान सभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं और विधान परिषद् केवल 14 दिनों तक उसे रोककर रख सकती है जबकि साधारण विधेयकों को दो बार में चार माह तक लंबित रख सकती है। धन विधेयकों के अतिरिक्त कोई भी विधेयक विधान परिषद वाले राज्यों में किसी भी सदन में आरंभ हो सकते हैं। जहाँ तक धन विधेयकों से भिन्न विधेयकों का प्रश्न है, वे यद्यपि विधान सभा या विधानपरिषद किसी में आरंभ हो सकते हैं, तथापि उनके सम्बन्ध में भी विधान परिषद की शक्तियाँ सीमित हैं। यदि विधेयक विधानपरिषद से आरंभ होता है और वहाँ पारित होने के बाद विधान सभा को भेजा जाता है और वह उसे स्वीकार नहीं करती तो वह वहीं समाप्त माना जाएगा।
   यदि विधेयक विधान सभा में आरम्भ होता है और पारित होने पर विधानपरिषद मे भेजा जाता है और विधानपरिषद उसे अस्वीकार कर देती है या तीन माह तक उस पर कुछ नहीं करती या इस अवधि में विधेयक में संशोधन करती है तो विधेयक पुनः विधान सभा में भेजा जाता है। विधान सभा संशोधन स्वीकार नहीं करती और विधेयक पुनः उसी रूप मे पुनः पारित करती है तो विधेयक उसी रूप में पारित माना जाता है, जिस रूप में विधान सभा ने उसे पारित किया है।
2. **कार्यपालिका शक्तियाँ**—विधान सभा लोकप्रतिनिधि है। मंत्रिपरिषद अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी विभाग की नीति या विधि, विधान सभा में पारित न होने की स्थिति में संपूर्ण मंत्रिपरिषद उत्तरदायी है। एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास संपूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास माना जाता है। विधान सभा के सदस्य मंत्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं, आलोचना कर सकते हैं और अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकते हैं। अविश्वास प्रस्ताव पारित होने की स्थिति में सरकार को पदत्याग करना होता है।
3. **वित्तीय शक्तियाँ**—विधान सभा जनता का प्रतिनिधि सदन है। इसलिए इसे वित्तीय मामलों में पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। वित्त विधेयक पहले विधान सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं, इसके बाद ये विधानपरिषद को प्रेषित किए जाते हैं। विधानपरिषद के लिए आवश्यक है कि वह 14 दिनों के भीतर उस विधेयक को अपनी संस्तुतियों सहित विधान सभा को वापस कर दे। उन संस्तुतियों को स्वीकार करना या न करना विधान सभा की इच्छा पर निर्भर है और विधान सभा द्वारा जिस रूप में भी विधेयक को पुनः पारित कर दिया जाता है उसी रूप में विधेयक अंतिम रूप में पारित समझा जाता है। इस प्रकार विधान सभा ही वित्तीय क्षेत्र में शक्तिशाली है।
4. **संवैधानिक शक्तियाँ**—संविधान में संशोधन करने का कोई महत्वपूर्ण अधिकार राज्य विधानसभा को नहीं प्राप्त है। संशोधन करने का अधिकार संसद को ही प्राप्त है, परन्तु संविधान में कई ऐसे अनुच्छेद हैं जिनमें संसद अकेले संशोधन नहीं कर सकती है। ऐसे अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है अत: विधान परिषद के साथ मिलकर विधानसभा संविधान में भाग लेती है।
5. **चुनाव संबंधी शक्तियाँ**—राष्ट्रपति के चुनाव में विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों को भाग लेने का अधिकार है यह अधिकार विधान परिषद को नहीं प्राप्त है। विधान सभा के सदस्य विधानपरिषद के $\frac{1}{3}$ सदस्यों का चयन करते हैं। विधानसभा के सदस्य ही राज्यसभा में राज्य के प्रतिनिधियों को चुनकर भेजते हैं। राज्य विधानसभा के सदस्य अपने में से एक को अध्यक्ष तथा किसी दूसरे को उपाध्यक्ष चुनते हैं।

प्र.2. विधानपरिषद् का गठन किस प्रकार होता है? उसकी शक्तियों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

विधानपरिषद् का गठन
(Formation of Legislative Council)

1. **सदस्य संख्या**—राज्य के विधानमण्डल का द्वितीय या उच्च सदन विधानपरिषद होता है। संविधान में व्यवस्था की गयी है कि प्रत्येक राज्य की विधानपरिषद के सदस्यों की संख्या उसकी विधानसभा के सदस्यों की संख्या के 1/3 से अधिक न होगी, पर साथ ही यह भी कहा गया है कि किसी भी दशा में उसकी सदस्य संख्या 40 से कम नहीं होनी चाहिए।

2. **सदस्यों का निर्वाचन व मनोनयन**—विधानपरिषद के लगभग 5/6 सदस्यों को निर्वाचित किया जाता है तथा शेष लगभग 1/6 सदस्यों को मनोनीत किया जाता है। विधान परिषद् के ये सदस्य **अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं** तथा ये चुनाव **आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत** द्वारा होंगे। निम्नलिखित निर्वाचक मण्डल विधानपरिषद् के सदस्यों का चुनाव करते हैं—

(i) स्थानीय संस्थाओं का निर्वाचक मण्डल—समस्त सदस्यों का **यथाशक्य निकटतम (लगभग) एक-तिहाई** उस राज्य की नगरपालिकाओं, जिला परिषदों और ऐसी अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा चुना जाता है, जैसा कि संसद कानून द्वारा निर्धारित करे।

(ii) विधानसभा का निर्वाचक मण्डल—कुल संख्या के **यथाशक्य निकटतम एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन** विधानसभा के सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से करते हैं जो विधानसभा के सदस्य न हों।

विधानपरिषदों की सदस्य संख्या

राज्य का नाम	स्थानीय संस्थाओं से निर्वाचित	स्नातकों द्वारा निर्वाचित	शिक्षकों द्वारा निर्वाचित	विधानसभा द्वारा निर्वाचित	राज्यपाल द्वारा मनोनीत	कुल सदस्य संख्या
उत्तर प्रदेश	36	8	8	38	10	100
बिहार	24	6	6	27	12	75
महाराष्ट्र	22	7	7	30	12	78
कर्नाटक	21	6	6	21	9	63
आन्ध्र प्रदेश (सीमांध्र)	17	5	5	17	6	50
तेलंगाना	14	3	3	14	6	40

(iii) स्नातकों का निर्वाचक मण्डल—यह ऐसे शिक्षित व्यक्तियों का निर्वाचक मण्डल होता है जो इस राज्य में रहते हों, जिन्होंने स्नातक स्तर की परीक्षा पास कर ली हो और जिन्हें यह परीक्षा पास किये तीन वर्ष से अधिक हो चुके हों। यह निर्वाचक मण्डल कुल सदस्यों के **यथाशक्य निकटतम 1/12 भाग को चुनता है।**

(iv) अध्यापकों का निर्वाचक मण्डल—इसमें वे अध्यापक होते है, जो राज्य के अन्तर्गत किसी माध्यमिक पाठशाला या इससे उच्च शिक्षण संस्था में 3 वर्ष से पढ़ा रहे हों। यह निर्वाचक मण्डल कुल सदस्यों के **यथाशक्य निकटतम 1/12 भाग को चुनता है।**

(v) राज्यपाल द्वारा मनोनीत सदस्य—उपर्युक्त प्रकार से कुल सदस्य संख्या के लगभग 5/6 सदस्यों को तो निर्वाचित किया जाता है, शेष अर्थात् कुल संख्या के लगभग 1/6 सदस्य राज्यपाल द्वाग उन व्यक्तियों में से मनोनीत किए जाते हैं, जो साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्रों में विशेष रुचि रखते हों।

विधान परिषद् के चुनाव की विशेष बात—संसद द्वारा 28 अगस्त, 2003 ई० को 'जन प्रतिनिधि (संशोधन) कानून 2003' पारित किया गया जिसमें राज्यों की विधानपरिषदों के चुनाव के लिए '**खुली मतदान प्रणाली** (Open Ballot System) लागू करने का प्रावधान किया गया है। अब **राज्यसभा और विधानपरिषद् ये दो ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनके चुनाव गुप्त मतदान के आधार पर नहीं, वरन् खुले मतदान के आधार पर होते हैं।**

3. **सदस्यों की योग्यताएँ**—विधानपरिषद की सदस्यता के लिए भी वे ही योग्यताएँ हैं जो विधानसभा की सदस्यता के लिए हैं। अन्तर केवल यह है कि विधानपरिषद् की सदस्यता के लिए आयु 30 वर्ष होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त निर्वाचित सदस्य को इस राज्य की विधानसभा के किसी निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना चाहिए एवं नियुक्त किये जाने वाले सदस्य को उस राज्य का निवासी होना चाहिए जिसकी विधानपरिषद का वह सदस्य बनना चाहता है।

निर्वाचक मण्डलों द्वारा विधानपरिषद् के सदस्यों का यह निर्वाचन **आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत पद्धति** के अनुसार होता है। विधानसभा के निर्वाचक मण्डल के अतिरिक्त अन्य तीनों निर्वाचक मण्डल संसद कानून द्वारा निश्चित करती है।

4. **कार्यकाल**—विधानपरिषद इस दृष्टि से स्थायी है कि पूरी विधानपरिषद कभी भी भंग नहीं होती और इसे राज्यपाल द्वारा भी भंग नहीं किया जा सकता। विधानपरिषद् के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है। प्रति दो वर्ष के पश्चात् एक-तिहाई सदस्य अपना पद छोड़ देते हैं, और उनके स्थान के लिए नये निर्वाचन होते हैं।

विधानपरिषद् के अधिकार अथवा शक्तियाँ तथा कार्य
(Functions and Powers of Legislative Council)

विधानपरिषद के अधिकार तथा कार्यों का उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **कानून निर्माण सम्बन्धी कार्य**—वित विधेयक को छोड़कर अन्य विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं तथा विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। लेकिन इसके साथ ही संविधान के **अनुच्छेद 197** में कहा गया है कि यदि कोई विधेयक विधानसभा से पारित होने के पश्चात विधानपरिषद् द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है या परिषद् विधेयक में से संशोधन करती है जो विधानसभा को स्वीकार्य नहीं होते या परिषद के समक्ष विधेयक रखे जाने की तिथि से तीन माह तक विधेयक पारित नहीं किया जाता है तो विधानसभा उस विधेयक को पुन स्वीकृत करके विधानपरिषद को भेजती है। यदि परिषद विधेयक को पुन: अस्वीकृत कर देती है अथवा विधेयक रखे जाने की तिथि से एक माह बाद तक विधेयक पास नहीं करती या परिषद विधेयक में पुनः ऐसे संशोधन करती है जो विधानसभा को स्वीकार नहीं होते तो विधेयक विधानपरिषद द्वारा पारित किये जाने के बिना ही दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। **इस प्रकार विधानपरिषद् किसी साधारण विधेयक को केवल चार माह तक रोक सकती है। विधान परिषद् किसी विधेयक को समाप्त नहीं कर सकती।**
2. **कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य**—विधानपरिषद के सदस्य मन्त्रिपरिषद के सदस्य हो सकते हैं। विधानपरिषद प्रश्नों, प्रस्तावों तथा वाद-विवाद के आधार पर मन्त्रिपरिषद को नियन्त्रित कर सकती है, किन्तु उसे मन्त्रिपरिषद् को पदच्युत करने का अधिकार नहीं है। यह कार्य केवल विधानसभा के ही द्वारा किया जा सकता है।
3. **वित्त सम्बन्धी कार्य**—संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया है कि वित्त विधेयक केवल विधानसभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं, विधानपरिषद में नहीं। **विधानसभा जब किसी वित्त विधेयक को पारित कर सिफारिशों के लिए विधानपरिषद् के पास भेजती है तो विधानपरिषद 14 दिन तक वित्त विधेयक को अपने पास रोक सकती है।** यदि वह 14 दिन के भीतर अपनी सिफारिशों सहित विधेयक विधानसभा को नहीं लौटा देती है, तो वह विधेयक उस रूप में दोनों सदनों से पारित समझा जाता है जिस रूप में उसे विधानसभा ने पारित किया था। **यदि वित्त विधेयक के सम्बन्ध में विधानपरिषद् कोई सिफारिश करती है तो उन्हें मानना या न मानना विधानसभा की इच्छा पर निर्भर करता है।**

   इस प्रकार विधानपरिषद विधानसभा की तुलना में एक शक्तिहीन सदन है। सामान्यतया विधानपरिषद को कम उपयोगी समझा जाता है।

प्र.3. राज्य विधानसभा व विधानपरिषद् के मध्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

उत्तर

विधानसभा व विधानपरिषद् के मध्य सम्बन्ध
(Members of Legislative Assembly and Legislative Council)

विधानसभा एवं विधानपरिषद् राज्य विधानमण्डल के दो सदन हैं। विधानसभा निचला सदन तथा विधानपरिषद् उच्च सदन कहलाता है। इनको क्रमश: निम्न व उच्च सदन भी कहा जाता है। इन दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. **सदस्य संख्या**—विधानसभा की सदस्य संख्या विधानपरिषद् से अधिक होती है। विधानसभा में अधिक से-अधिक 500 सदस्य हो सकते हैं और कम से कम 60 सदस्यों का प्रावधान है। किसी भी राज्य की विधानपरिषद् में उस राज्य की विधानसभा के एक-तिहाई सदस्य हो सकते हैं किन्तु उनकी संख्या 40 से कम नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विधानपरिषद्, विधानसभा की तुलना में आकार में छोटी संस्था है।

2. **प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित**—विधानसभा राज्य की समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि विधानपरिषद् कुछ विशिष्ट वर्गों व संस्थाओं का ही प्रतिनिधित्व करती है।
3. **निर्वाचन के विषय में**—विधानसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मतदाताओं के माध्यम से होता है, जबकि विधानपरिषद् के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधित्व तथा एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा होता है।
4. **कार्यकाल के सम्बन्ध में**—विधानसभा के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है। राज्यपाल मुख्यमन्त्री की अनुशंसा पर इस सदन को पहले भी भंग कर सकता है। विधानपरिषद् एक स्थायी सदन है। विधानपरिषद के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है, परन्तु इनके एक-तिहाई सदस्य प्रति 2 वर्ष पश्चात् अवकाश ग्रहण करते हैं और उनके स्थान पर दूसरे सदस्य चुने जाते हैं।
5. **पदाधिकारियों के विषय में**—विधानसभा अपने सदस्यों में से ही अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करती है। विधानपरिषद् भी अपने सदस्यों में से सभापति एवं उपसभापति का चुनाव करता है।
6. **मन्त्रिपरिषद् का नियन्त्रण**—मन्त्रिपरिषद् के सभी सदस्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। निन्दा प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर मन्त्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है, परन्तु मन्त्रिपरिषद् के सदस्य विधानपरिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं। यह सदन केवल मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछते हैं, ध्यानाकर्षण व स्थगन आदि के प्रस्ताव पारित कर सकता है। लेकिन यह मन्त्रिपरिषद् को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।
7. **साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में**—साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और दोनों सदनों द्वारा पारित होने पर ही उसे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जा सकता है। परन्तु विधानसभा किसी विधेयक को पारित कर दे और विधानपरिषद् उसे ठुकरा दे अथवा विधानपरिषद् तीन माह तक उसे पारित नहीं करती या ऐसे संशोधन प्रस्तुत करती है जो विधानसभा को स्वीकार नहीं हैं तो इन तीनों ही परिस्थितियों में विधानसभा उस विधेयक पर पुनः विचार करती है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह विधानपरिषद के संशोधनों या सिफारिशों को स्वीकार कर ही ले। विधेयक को पुनः विधानपरिषद् के पास भेजा जाता है। यदि विधानपरिषद् पुनः उसे ठुकरा दे या ऐसे संशोधन रखे जो विधानसभा को स्वीकृत नहीं हैं और इस बीच एक माह का समय व्यतीत हो जाए तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाएगा। स्पष्ट है कि राज्यों में गतिरोध की स्थिति में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है और वनपरिषद विधानसभा द्वारा पारित विधेयक में कुल 4 माह की देरी ही कर सकती है।
8. **धन विधेयकों के सम्बन्ध में**—धन विधेयक निचले सदन (विधानसभा) में ही प्रस्तुत हो सकता है। विधानसभा द्वारा पारित होने पर उसे विधानपरिषद् को भेजा जाता है। विधानपरिषद् को 14 दिनों के भीतर उसे विधानसभा को लौटाना होगा। विधानपरिषद् द्वारा प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करना या न करना विधानसभा की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि 14 दिनों के भीतर विधानपरिषद् धन विधेयक नहीं लौटाता है तो भी वह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाएगा। स्पष्ट है कि धन विधेयकों में विधानपरिषद् केवल 14 दिन की देरी ही कर सकती है।
9. **संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में**—राज्य विधानमण्डल संविधान के कुछ विशेष प्रकार के आबन्धों पर संशोधन की पुष्टि करते हैं। इस सन्दर्भ मे दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हैं।
10. **राष्ट्रपति के निर्वाचन में**—राष्ट्रपति के चुनाव में विधानसभा के निर्वाचित सदस्य ही भाग लेते हैं, विधानपरिषद् के सदस्यों को मत देने का अधिकार नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि विधानपरिषद् की शक्तियाँ विधानसभा की शक्तियों की अपेक्षा काफी कम हैं। यही वजह है कि अनेक राज्यों में इस सदन को स्थापित नहीं किया गया है।

प्र.4. राज्यपाल की नियुक्ति कैसे होती है? उसके कार्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिए।

उत्तर राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मन्त्रिपरिषद होती है। संविधान के द्वारा राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई है। इस संसदात्मक व्यवस्था में राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है।

राज्यपाल
(Governor)

राज्य में राज्यपाल की वही स्थिति होती है, जो केन्द्र में राष्ट्रपति की होती है। राष्ट्रपति की तरह राज्यपाल भी राज्य की कार्यपालिका का संवैधानिक अध्यक्ष है। अन्तर इतना है कि राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश की कार्यपालिका का अध्यक्ष है किन्तु राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष है। राज्य के समस्त कार्य राज्यपाल के नाम से होते हैं, परन्तु कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति राज्य की मन्त्रिपरिषद् के पास होती है। वस्तुत: राज्यपाल केवल औपचारिक अथवा संवैधानिक अध्यक्ष होता है। संविधान के **अनुच्छेद 154** में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि राज्य की समस्त कार्यकारिणी शक्तियाँ उस राज्य के राज्यपाल में निहित होंगी, किन्तु इन शक्तियों का प्रयोग वह संविधान के अनुसार या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा। संविधान के अनुसार कुछ सीमा तक उसे स्वविवेक के आधार पर कार्य करने का भी अधिकार प्राप्त है।

राज्यपाल की नियुक्ति
(Appointment of Governor)

अनुच्छेद 156 के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। वह देश के किसी भी नागरिक को, जो निर्धारित शर्तें पूरी करे, राज्यपाल नियुक्त कर सकता है। साधारणत: एक राज्य के लिए दूसरे राज्य के निवासी को इस पद पर नियुक्त किया जाता है जिससे वह व्यक्ति दूसरे राज्य की राजनीति में सक्रिय भूमिका न निभा सके। राज्यपाल के पद के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होनी अनिवार्य हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
3. वह संसद या किसी राज्य के विधानमण्डल का सदस्य न हो।
4. वह सरकारी लाभ के किसी पद पर कार्य न कर रहा हो।

कार्यकाल—संविधान के **अनुच्छेद 156 (1)** के अनुसार, "राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त राज्यपाल पद धारण करेगा।" अर्थात् राज्यपाल उसी समय तक अपने पद पर बना रह सकता है, जब तक कि राष्ट्रपति का उसमें विश्वास है। साधारणत: राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए होती है; किन्तु वह स्वेच्छा से राष्ट्रपति के पास त्यागपत्र भेजकर निर्धारित अवधि से पूर्व भी अपना पद त्याग सकता है।

वेतन तथा भत्ते
(Salary and Allowances)

राज्यपाल के वेतन तथा भत्तों आदि के निर्धारण का अधिकार भारतीय संसद को प्राप्त है, राज्यपाल को 3.50 लाख मासिक वेतन मिलता है साथ ही विभिन्न प्रकार के भत्ते व अन्य सुविधाएँ भी मिलती हैं। उसके कार्यकाल में उसके वेतन और भत्तों आदि में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है। आवास हेतु राज्यपाल को बिना किराये का एक सरकारी भवन भी दिया जाता है जिसको **'राजभवन'** कहा जाता है।

राज्यपाल के अधिकार एवं कार्य
(Powers and Functions of Governor)

राज्यपाल के अधिकार एवं कार्यों को हम निम्नलिखित पाँच प्रमुख भागों में विभक्त कर सकते हैं—

I. कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार

राज्यपाल के कार्यपालिका से सम्बन्धित अधिकारों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

1. **शासन संचालन सम्बन्धी अधिकार**—राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का संवैधानिक अध्यक्ष होता है। राज्य के शासन के संचालन का दायित्व राज्यपाल पर होता है इसलिए उसे शासन सम्बन्धी अनेक अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त हैं। राज्य का सम्पूर्ण शासन राज्यपाल के नाम से ही संचालित किया जाता है। वह उन समस्त विषयों का शासन चलाता है जिनके सम्बन्ध में राज्य के विधानमण्डल को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। वह राज्य के शासन संचालन हेतु अनेक

कानूनों का निर्माण कराता है, मन्त्रियों में शासन सम्बन्धी कार्यों का वितरण करता है। वह अपने मन्त्रिपरिषद् के किसी भी सदस्य से कभी भी शासन सम्बन्धी सूचना प्राप्त कर सकता है अथवा प्रश्न पूछ सकता है। साथ ही मुख्यमन्त्री का यह कर्त्तव्य भी होता है कि वह मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों से राज्यपाल को अवगत कराता रहे। राज्यपाल को मुख्यमन्त्री से किसी भी प्रकार की सूचना माँगने का अधिकार है। वह मुख्यमन्त्री से किसी मन्त्री के व्यक्तिगत निर्णय को मन्त्रिपरिषद् के समक्ष पुनर्विचार के लिए रखने को कह सकता है।

2. **उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति**—राज्यपाल विधानसभा के बहुमत प्राप्त दल के नेता को मुख्यमन्त्री के पद पर पदासीन करता है लेकिन स्पष्ट बहुमत के अभाव में राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करता है। 1952 ई० से आज तक का अनुभव यह बताता है कि राज्यपाल ने सदैव स्वविवेक से ही कार्य किया है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में उसने केन्द्र सरकार के अभिकर्ता (agent) की भूमिका निभाई है। मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के उपरान्त वह मुख्यमन्त्री के परामर्शानुसार मन्त्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति भी करता है। मन्त्री अपने पद पर राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त तक ही रहते हैं। राज्यपाल किसी भी मन्त्री को मुख्यमन्त्री के परामर्श से हटा सकता है।
3. **विशेषाधिकार**—राज्यपाल को कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं, जिन्हें स्वविवेक के अधिकार कहा जाता है, क्योंकि इन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए राज्यपाल पूर्ण स्वतन्त्र होता है। इनका प्रयोग राज्यपाल अपने विवेक से करता है।
4. **आपातकालीन अधिकार**—यदि राज्यपाल यह अनुभव करता है कि राज्य में संविधान के अनुसार शासन का संचालन असम्भव हो गया है, तो वह राष्ट्रपति को इसकी सूचना देता है। उसकी सूचना के आधार पर राष्ट्रपति संविधान के **अनुच्छेद 356** के अन्तर्गत राज्य में आपातकाल की घोषणा कर देता है तथा राष्ट्रपति के आदेशानुसार वह राज्य के शासन का समस्त कार्यभार अपने हाथ में ले लेता है।

II. वित्त सम्बन्धी अधिकार

राज्यपाल के वित्तीय अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. **वार्षिक बजट**—राज्यपाल को विधानमण्डल में वार्षिक बजट प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त है। यह बजट राज्य की आय-व्यय का विवरण होता है। इसे राज्यपाल की ओर से वित्तमन्त्री द्वारा विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है।
2. **धन विधेयक**—राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त किए बिना कोई भी धन विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।
3. राज्य की संचित निधि उसके अधिकार में रहती है।
4. किसी भी अनुदान की माँग राज्यपाल की अनुमति से ही की जा सकती है।

III. विधायी अधिकार

राज्यपाल राज्य का अध्यक्ष होता है। उसे विधि-निर्माण से सम्बन्धित भी अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं। उसकी विधायी शक्तियाँ या अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. **कार्यवाही सम्बन्धी अधिकार**—विधायी क्षेत्र में राज्यपाल को विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। वह विधानमण्डल के अधिवेशन को आमन्त्रित करता है, स्थगित करता है तथा उसका सत्रावसान करता है। मुख्यमन्त्री के परामर्श अथवा संस्तुति पर वह विधानसभा का विघटन भी कर सकता है। विधानमण्डल के दोनों सदनों में से वह किसी में भी अपना भाषण दे सकता है। प्रत्येक वर्ष विधानमण्डल का प्रारम्भ राज्यपाल के अभिभाषण से ही होता है। आवश्यकतानुसार वह दोनों सदनों का एक संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है।
2. **विधानमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति**—राज्यपाल विधानपरिषद के 1/6 सदस्यों को मनोनीत करता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, सहकारी आन्दोलन तथा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखते हैं। राज्यपाल को विधानसभा के लिए एक एंग्लो-इण्डियन सदस्य को मनोनीत करने का भी अधिकार है।
3. **विधेयकों की स्वीकृति**—यद्यपि राज्यपाल विधानमण्डल का सदस्य नहीं होता किन्तु विधि-निर्माण में उसका बहुत महत्त्व होता है। विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बिना कानून का रूप धारण नहीं करते हैं। इसके विपरीत, धन विधेयकों के सम्बन्ध में राज्यपाल की स्थिति दुर्बल होती है।

राज्यपाल धन विधेयकों को न तो अस्वीकृत कर सकता है और न ही उन्हें पुनर्विचार के लिए विधानमण्डल के पास लौटा सकता है। इस सन्दर्भ में उसकी औपचारिक स्वीकृति ही ली जाती है।

विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयक पर राज्यपाल को यह अधिकार होता है कि वह अपनी स्वीकृति दे या न दे। वह विधेयक को पुनर्विचार हेतु विधानसभा को भी भेज सकता है या उसे राष्ट्रपति के पास विचारार्थ प्रस्तुत करने के लिए रोक सकता है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद विधेयक कानून बन जाते हैं तथा जो विधेयक वह विधानसभा को वापस विचारार्थ भेजता है, यदि विधानसभा उसे पुन: पारित कर दे तो इस स्थिति में राज्यपाल उस पर अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य होता है।

4. **अध्यादेश जारी करने का अधिकार**—राज्यपाल अपने राज्य के लिए अध्यादेश जारी करता है किन्तु वह उसी समय अध्यादेश जारी कर सकता है, जिस समय विधानमण्डल का अधिवेशन न चल रहा हो। इन अध्यादेशों को विधानमण्डल में अवश्य स्वीकृत कराना होता है। राज्यपाल के इन अध्यादेशों का प्रभाव विधानसभा के कानूनों जैसा ही होता है।

IV. न्यायिक अधिकार

संविधान के **अनुच्छेद 161** के अनुसार, राज्यपाल को अधिकार है कि वह राज्य सूची से सम्बन्धित किसी विधि के विरुद्ध दण्डित व्यक्ति के दण्ड को कम कर सकता है, दण्ड को कुछ समय के लिए रोक सकता है या पूर्णतया क्षमा भी कर सकता है, परन्तु प्राणदण्ड पाए व्यक्ति का दण्ड राज्यपाल क्षमा नहीं कर सकता है। यह अधिकार केवल राष्ट्रपति को ही प्राप्त है। राज्यपाल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को परामर्श भी देता है। वह जिला जजों की नियुक्ति तथा पदोन्नति आदि उच्च न्यायालय के परामर्श से करता है।

V. अन्य अधिकार

राज्यपाल के कुछ अन्य अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. राज्य लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन प्राप्त करना तथा इसे विधानसभा में प्रस्तुत करना।
2. संकटकाल की स्थिति में राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना।
3. संविधान के द्वारा किन्हीं राज्यों के राज्यपालों को कुछ विशेष कार्यों के सम्बन्ध में स्वविवेकी शक्तियाँ भी प्रदान की गई हैं।

भारत में संसदात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है, अत: मन्त्रिपरिषद् ही विधायिका के प्रति उत्तरदायी है। राज्यपाल तो मात्र संवैधानिक अध्यक्ष की भूमिका का निर्वाह करता है। वास्तविक शक्तियां मन्त्रिपरिषद् के हाथों में निहित होती हैं। राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करता है। संविधान राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता है।

उपर्युक्त शक्तियों में राज्यपाल की भूमिका मात्र संवैधानिक अध्यक्ष की है तथा उससे यह आशा की जाती है कि वह मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करें।

प्र.5. संविधान के द्वारा राज्यपाल को कौन-कौन सा स्व-विवेकाधिकार प्रदान किया गया है? समझाइए।

उत्तर संविधान का **अनुच्छेद 163(2)** राज्यपाल की स्वविवेकीय उत्तरदायित्वों व शक्तियों को परिभाषित करता है। कुछ शक्तियों के प्रयोग का निर्णय राज्यपाल स्वयं करता है तथा **अनुच्छेद 163(3)** के अनुसार "इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने किसी राज्यपाल को सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।" संविधान के द्वारा राज्यपाल को निम्नलिखित विवेकाधिकार प्रदान किया गया है—

1. **विधान सभा-सत्रावसान व भंग करना**—विधान सभा का सत्रावसान घोषित करते समय भी राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री तथा मंत्रिमण्डल द्वारा सलाह लेने की परम्परा है परन्तु यदि कोई मुख्यमन्त्री स्वयं बचने या अविश्वास प्रस्ताव से बचने के लिए विधान सभा को भंग करने की सलाह दे तो राज्यपाल को स्वविवेक के प्रयोग का अधिकार है। जहाँ तक विधान सभा भंग करने का प्रश्न है, कुछ परिस्थितियों में राज्यपाल के पास मुख्यमंत्री तथा उसके मंत्रिमण्डल की सलाह मानने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है, जैसे—सरकार बहुमत में होते हुए भी विधान सभा भंग करने का परामर्श दे या बिना बजट पारित किए मंत्रिमण्डल त्याग पत्र दे तो अनुच्छेद 356 के तहत राज्यपाल विधान सभा भंग कर सकता है। लेकिन यदि कोई सरकार बहुमत खो देने के भय से विधान सभा भंग करने की सलाह दे तो राज्यपाल का यह विवेकाधिकार है कि वह ऐसे परामर्श की उपेक्षा करे।

2. **राज्यपाल का सम्बोधन**—राज्यपाल के सभी भाषण मुख्यमंत्री व उसके मन्त्रिमण्डल द्वारा तैयार किए जाते हैं। सामान्यतया राज्यपाल द्वारा उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए लेकिन यदि भाषण में राज्यपाल के किसी पूर्ववर्ती कार्य की आलोचना हो, या कोई वाक्यांश केन्द्र-राज्य सम्बन्ध में बाधा उत्पन्न कर रहा हो या संवैधानिक भावना के अनुकूल न हो तो उन वाक्यांशों को न पढ़ना राज्यपाल का स्वविवेकाधिकार है।
3. **विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोकना**—संविधान के **अनुच्छेद 200** के अनुसार, राज्य विधायिका द्वारा पारित कोई विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ रोका जा सकता है यदि वह अनुभव करे कि विधेयक असंवैधानिक है। देश के व्यापक हित के विरुद्ध है; राष्ट्रीय महत्त्व का नहीं है। निदेशक तत्वों के विरुद्ध है; उच्च न्यायालय की स्थिति को खतरे में डालता है या सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से सम्बन्धित है। विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखना राज्यपाल का विवेकाधिकार है क्योंकि ऐसा करने की सलाह मुख्यमन्त्री द्वारा दी नहीं जा सकती। संविधान में यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसा विधेयक कब तक रोका जा सकता है या कितने दिन में इसे वापस आ जाना चाहिए। राज्यपाल द्वारा इस अधिकार के दुरुपयोग होने की सम्भावना रहती है।
4. **विधेयक पर हस्ताक्षर**—विधायिका से पारित विधेयक, राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिए भेजा जाता है, हस्ताक्षर के बाद ही वह कानून का रूप धारण कर सकता है। राज्यपाल का यह विवेकाधिकार है कि वह विधेयक पर हस्ताक्षर करे या उसे पुनर्विचार के लिए विधायिका के पास वापस भेज दे। यद्यपि पुनर्विचारित विधेयक संशोधन सहित या रहित, जिस भी रूप में वापस राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिए आता है तो राज्यपाल के लिए उस पर हस्ताक्षर करना आवश्यक है। लेकिन कोई विधेयक जब विधायिका में पहली बार वापस जाता है तो उस पर नवीन दृष्टि से विचार होता है। विभिन्न राज्यपालों ने समय-समय पर अपने इस अधिकार का प्रयोग किया है।

प्र.6. राज्य की मन्त्रिपरिषद् का गठन किस प्रकार होता है? स्पष्ट कीजिए। इसके कार्यों व शक्तियों का भी उल्लेख कीजिए।
***अथवा* मन्त्रिपरिषद् के विधानसभा तथा राज्यपाल से सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।**

उत्तर

राज्य की मन्त्रिपरिषद् का गठन
(Composition of State Council of Ministers)

संविधान के **अनुच्छेद 163** के अनुसार, "उन बातों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करता है, अन्य कार्यों को करने में उसकी सहायतार्थ एवं परामर्श के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी, जिसका अध्यक्ष मुख्यमन्त्री होगा।" मन्त्रिपरिषद् जो भी परामर्श राज्यपाल को देती है, उसकी जाँच करने का अधिकार किसी भी न्यायालय को नहीं होता। मन्त्रिपरिषद् के गठन से सम्बन्धित प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं—

1. **मन्त्रियों की योग्यता**—संविधान में मन्त्रियों के लिए किसी विशेष योग्यता का उल्लेख नहीं है, उन्हें मन्त्री बनने के लिए केवल विधानमण्डल के किसी भी सदन का सदस्य होना आवश्यक है। यदि किसी मन्त्री को मुख्यमन्त्री के परामर्श से राज्यपाल ने मन्त्री नियुक्त किया है और वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं है तो उसे छह माह की अवधि के अन्तर्गत किसी भी सदन की सदस्यता ग्रहण करनी होगी अन्यथा उसे अपना पद त्यागना पड़ेगा।
2. **मन्त्रियों की नियुक्ति**—राज्यपाल विधानसभा के बहुमत प्राप्त दल के नेता को मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। यदि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता तो राज्यपाल ऐसे दल के व्यक्ति को मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है, जो बहुमत प्राप्त करने में सक्षम हो सके तत्पश्चात् उसके परामर्श से वह मन्त्रिपरिषद् के अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।
3. **मन्त्रिपरिषद् की कार्यविधि**—संविधान के अनुसार, मन्त्रिपरिषद् अपने पद पर उस समय तक ही कार्यरत रहेगी, जब तक राज्यपाल की इच्छा होगी किन्तु व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् उस समय तक कार्यरत रहती है, जब तक उसे विधानसभा का विश्वास प्राप्त होता रहता है। सामान्य रूप से मन्त्रिपरिषद का कार्यकाल विधानसभा के कार्यकाल के समान 5 वर्ष ही है।
4. **सामूहिक उत्तरदायित्व**—मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है, अत: किसी एक मन्त्री के विभाग की आलोचना सभी मन्त्रियों के विभागों की आलोचना समझी जाती है। इस प्रकार नीति सम्बन्धी मामलों में भी मन्त्रिपरिषद् का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है।

5. **शपथ ग्रहण**—प्रत्येक मन्त्री को मन्त्री पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल के समक्ष अपने पद के प्रति निष्ठा एवं मन्त्रिपरिषद् के कार्यों को गुप्त रखने की शपथ लेनी पड़ती है।
6. **मन्त्रियों के वेतन और भत्ते**—मन्त्रियों के वेतन एवं भत्ते राज्य के विधानमण्डल द्वारा निश्चित किए जाते हैं, अत: भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों में इस सम्बन्ध में अन्तर है।
7. **मन्त्रियों की संख्या एवं उनके मध्य कार्यों का विभाजन**—संविधान ने मन्त्रियों की संख्या सुनिश्चित करने का अधिकार राज्य के मुख्यमन्त्री को दिया है। ऐसा इसलिए किया गया है कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न समय में आवश्यक कार्य कम या अधिक हो सकते हैं। अत: राज्य के मुख्यमन्त्री को आवश्यकतानुसार मन्त्रियों की संख्या घटा-बढ़ाकर उनके मध्य कार्यों का विभाजन करने का अधिकार होता है परन्तु अब किसी भी राज्य में मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या विधानसभा के सदस्यों के 15% से अधिक नहीं हो सकती है। राज्य स्तरीय मन्त्रिपरिषद् में भी तीन स्तर के मन्त्री होते हैं—कैबिनेट स्तर के मन्त्री, राज्यमन्त्री और उपमन्त्री।

मन्त्रिपरिषद् की शक्तियाँ और कार्य
(Powers and Functions of Council of Ministers)

मन्त्रिपरिषद् के कार्यों तथा शक्तियों का उल्लेख निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है—

1. **शासन की नीति निर्धारित करना**—मन्त्रिपरिषद् का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य शासन की नीति निर्धारित करना है। चाहे गृह विभाग हो या शिक्षा, स्वास्थ्य अथवा कृषि शासन की नीति का निर्धारण मन्त्रिपरिषद् के द्वारा ही किया जाता है। मन्त्रिपरिषद् न केवल नीति निधारण करती है, वरन् उसे कार्य रूप में भी परिणत करती है।
2. **उच्च पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल को परामर्श**—संविधान के अनुसार राज्यपाल महाधिवक्ता, राज्य लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों तथा अन्य उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। व्यवहार के अन्तर्गत राज्यपाल के द्वारा ये सभी नियुक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के आधार पर ही की जाती हैं। मन्त्रिपरिषद् ही राष्ट्रपति को उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में परामर्श देती है।
3. **विधानमण्डल में शासन का प्रतिनिधित्व**—विधानमण्डल की बैठकों में मन्त्रिगण शासन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मन्त्रिगण विधानसभा और विधानपरिषद में उपस्थित होकर सदस्यों के प्रश्नों तथा आलोचनाओं का उत्तर देते और शासन की नीति का समर्थन करते हैं।
4. **कानून निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करना**—मन्त्रिपरिषद न केवल शासन वरन कानून निर्माण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यदि यह कहा जाए कि मन्त्रिपरिषद विधानमण्डल की सहमति से कानूनों का निर्माण करती है तो इसमें कुछ अनुचित न होगा। विधानमण्डल में कौन-कौन से विधेयक तथा किस क्रम में प्रस्तुत किए जाएँगे, इसका निर्णय मन्त्रिपरिषद् को ही करना होता है। प्राय: अधिकांश विधेयक शासन की ओर से ही प्रस्तुत किए जाते हैं और मन्त्रिपरिषद् अपने बहुमत के बल पर ही इन्हें स्वीकृत करती है। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् कानून निर्माण के क्षेत्र में विधानमण्डल का नेतृत्व करती है।
5. **बजट तैयार करवाना**—राज्य का वार्षिक बजट वित्तीय वर्ष के आरम्भ के पूर्व वित्तमन्त्री द्वारा विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन यह बजट मन्त्रिपरिषद् द्वारा निश्चित की गयी नीति के आधार पर ही तैयार किया जाता है। बजट के पारित कराने का उत्तरदायित्व भी मन्त्रिपरिषद् का ही होता है।

संक्षेप में, मन्त्रिपरिषद् राज्य के प्रशासन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण इकाई होती है।

राज्य मन्त्रिपरिषद का विधानसभा से सम्बन्ध
(Relation of Council of Ministers with Legislative Assembly)

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मन्त्रिपरिषद् ही राज्य को वास्तविक कार्यपालिका होती है। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। विधानसभा अनेक प्रकार से मन्त्रिपरिषद् पर नियन्त्रण रखती है, परन्तु व्यवहार में बहुमत दल का नेतृत्व करने के कारण मन्त्रिपरिषद् ही विधानसभा पर अपना प्रभावशाली नियन्त्रण रखती है।

इस प्रश्न के प्रमुख नियन्त्रण निम्नलिखित हैं—

1. प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछना,
2. काम रोको प्रस्ताव पारित करना,
3. विधेयक या नीति की अस्वीकृति,
4. प्रशासनिक जाँच की माँग,
5. अविश्वास प्रस्ताव पारित करना,
6. बजट पर कटौती प्रस्ताव।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्य विधानसभा की बैठकों में भाग लेते हैं, वाद-विवाद करते हैं तथा विधेयक प्रस्तुत करते हैं। लगभग 95% विधेयक मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही तैयार किए जाते हैं तथा सदन में किसी न किसी मन्त्री के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। मन्त्रिपरिषद् का सदन में बहुमत होने के कारण इसके सभी विधेयक पारित हो जाते हैं। राज्य के वित्त पर विधानसभा का नियन्त्रण होता है, परन्तु वित्त विधेयक मन्त्री द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। बजट तैयार करना तथा विधानमण्डल में प्रस्तुत करना मन्त्रिपरिषद् का ही कार्य है। विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित करके मन्त्रिपरिषद् को हटा सकती है, परन्तु मुख्यमन्त्री चाहे तो राज्यपाल को परामर्श देकर विधानसभा को भंग भी करवा सकता है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो विधानसभा विभिन्न तरीकों को अपनाकर मन्त्रिपरिषद् को नियन्त्रण में रखती है, परन्तु व्यवहार में स्थिति विपरीत है क्योंकि व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् विधानसभा को विभिन्न साधनों के आधार पर नियन्त्रण में रखती है। जैसे—

1. मुख्यमन्त्री दलीय अनुशासन तथा बहुमत दल का नेता होने के कारण विधानसभा पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करता है।
2. कानून-निर्माण के क्षेत्र में भी नेतृत्व मन्त्रिमण्डल के द्वारा ही किया जाता है।
3. वित्तीय क्षेत्र में भी वित्तमन्त्री जिस रूप में विधानसभा के सम्मुख बजट प्रस्तुत करता है, विधानसभा उस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा देती है।
4. मुख्यमन्त्री राज्यपाल को परामर्श देकर विधानसभा को भंग भी करा सकता है।

राज्य मन्त्रिपरिषद का राज्यपाल से सम्बन्ध
(Relation of Council of Ministers with Governor)

राज्यपाल विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को मुख्यमन्त्री पद पर तथा उसके परामर्श पर मन्त्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। यदि किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राज्यपाल स्वविवेक से मुख्यमन्त्री की नियुक्ति कर सकता है। वह मुख्यमन्त्री के परामर्श पर मन्त्रिपरिषद के सदस्यों को मन्त्रिपरिषद् से हटा सकता है। मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राज्यपाल विधानसभा को भंग भी कर सकता है। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् अधिक प्रभावशाली रहती है। राज्यपाल मात्र संवैधानिक अध्यक्ष होता है, शासन का समस्त कार्यभार तो मन्त्रिपरिषद ही सँभालती है। मन्त्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका है जबकि राज्यपाल केवल संवैधानिक अध्यक्ष होता हैं, इसीलिए वह राज्यपाल के लगभग समस्त अधिकारों का उपभोग करती है। राज्यपाल शासन सम्बन्धी कोई भी जानकारी मुख्यमंत्री से प्राप्त कर सकता है। मुख्यमन्त्री का यह दायित्व है कि मन्त्रिपरिषद् के सभी निर्णयों की सूचना वह राज्यपाल को दे। मन्त्रिपरिषद् राज्य के प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई होती है।

प्र.7. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार होती है? उसके अधिकारों व कार्यों का वर्णन कीजिए।
***अथवा* मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।**

उत्तर राज्य की मन्त्रिपरिषद् के प्रधान को मुख्यमन्त्री कहा जाता है। मुख्यमन्त्री राज्य की कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है। अत: राज्य के प्रशासनिक ढाँचे में उसे लगभग वही स्थिति प्राप्त है जो केन्द्र में प्रधानमन्त्री की है।

मुख्यमन्त्री की नियुक्ति
(Appointment of the Chief Minister)

संविधान के **अनुच्छेद 164** में केवल यह कहा गया है कि मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। व्यवहार के अन्तर्गत राज्यपाल के द्वारा विधानसभा के बहुमत दल के नेता को ही मुख्यमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता है। मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में

राज्यपाल दो परिस्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। **प्रथम** विधानसभा में किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो और एक से अधिक पक्ष मुख्यमन्त्री पद के लिए दावा कर रहे हों। **द्वितीय**, स्थिति उस समय हो सकती है, जबकि विधानसभा के बहुमत दल का कोई सर्वमान्य नेता न हो। 1966 से लेकर 1970 और उसके बाद 1977-2014 ई० के काल में विशेष रूप से भारतीय संघ के कुछ राज्यों में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं।

मुख्यमन्त्री के अधिकार और कार्य
(Rights and Functions of Chief Minister)

मुख्यमन्त्री के अधिकार और कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **मन्त्रिपरिषद् का गठन**—मुख्यमन्त्री का सर्वप्रथम तथा महत्त्वपूर्ण कार्य मन्त्रिपरिषद् का गठन करना होता है। मुख्यमन्त्री मन्त्रियों का चयन करके उनकी सूची राज्यपाल को प्रेषित कर देता है, जिसे राज्यपाल स्वीकार कर लेता है।
2. **मन्त्रियों में विभागों का वितरण**—मुख्यमन्त्री ही मन्त्रियों के मध्य विभागों और अन्य प्रशासनिक कार्यों का वितरण करता है।
3. **नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार**—राज्यपाल को अनेक उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार होता है किन्तु इस अधिकार का उपयोग वास्तव में मुख्यमन्त्री ही करता है। राज्यपाल द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों के अन्तर्गत महाधिवक्ता एवं राज्य लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष तथा उसके सदस्यों की नियुक्ति उल्लेखनीय है।
4. **राज्यपाल का परामर्शदाता**—मुख्यमन्त्री ही राज्यपाल का प्रमुख परामर्शदाता है और वही राज्यपाल को विधानसभा भग करने का परामर्श दे सकता है, वही मन्त्रिपरिषद् के अनेक निर्णयों से उसे अवगत भी कराता है और राज्यपाल की आज्ञाओं एवं सन्देशों को अन्य मन्त्रियों तक पहुँचाता है। इस प्रकार वह राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद् के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।
5. **मन्त्रिपरिषद् का सभापतित्व**—मुख्यमन्त्री मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष होता है। वह मन्त्रिपरिषद् की सभाओं में सभापतित्व करता है। इस प्रकार मुख्यमन्त्री का मन्त्रिपरिषद् पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है।
6. **नीति-निर्धारण का अधिकार**—व्यावहारिक रूप में मुख्यमन्त्री को राज्य के शासन की वास्तविक नीति निर्धारित करने का अधिकार होता है।
7. **शासन-व्यवस्था का वास्तविक अधिकारी**—संवैधानिक रूप से राज्य का अध्यक्ष राज्यपाल होता है किन्तु व्यावहारिक रूप से राज्य के शासन का अधिकारी मुख्यमन्त्री होता है। वही मन्त्रियों के मध्य विभागों का वितरण करता है, उन पर नियन्त्रण रखता है तथा विभागों के मध्य मतभेद होने की स्थिति में उनमें सामंजस्य स्थापित करवाता है। मन्त्रियों को सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में उससे परामर्श आवश्यक रूप से करना होता है। इस प्रकार मुख्यमन्त्री कार्यपालिका का वास्तविक अधिकारी होता है।
8. **शासन के विभिन्न विभागों में समन्वय**—मुख्यमन्त्री इस बात का प्रयत्न करता है कि शासन के सभी विभागों में समन्वय बना रहे अर्थात् शासन के सभी विभाग एक इकाई के रूप में कार्य करें।
9. **विधानसभा का नेता**—मुख्यमन्त्री का दोहरा व्यक्तित्व होता है। एक ओर वह शासन का अध्यक्ष है तथा दूसरी ओर विधानसभा का नेता। विधानसभा के नेता के रूप में उसे कानून निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उसके परामर्श से ही विधानमण्डल के अधिवेशन बुलाए जाते हैं। मुख्यमन्त्री विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है और जब उस सदन में उसे बहुमत प्राप्त न रहे, तब उसके सामने दो रास्ते हैं—प्रथम, वह त्यागपत्र दे दे। द्वितीय, वह राज्यपाल को परामर्श देकर सदन का विघटन करा दे।
10. **सरकार का प्रमुख प्रवक्ता**—मुख्यमन्त्री राज्य सरकार का प्रमुख प्रवक्ता होता है। राज्य सरकार की ओर से अधिकृत घोषणा मुख्यमन्त्री द्वारा ही की जाती है।

TOUCH 'n' PASS

मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल का सम्बन्ध
(Relation of Chief Minister with Governor)

निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर मुख्यमन्त्री और राज्यपाल के सम्बन्धों का निर्धारण किया जा सकता है—

1. राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री की नियुक्ति होती है।
2. मुख्यमन्त्री के परामर्श पर मन्त्रिपरिषद् के अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3. यदि राज्य का शासन संविधान के अनुकूल नहीं चल रहा होता है तो राज्यपाल की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति राज्य मन्त्रिमण्डल को भंग भी कर सकता है।
4. मुख्यमन्त्री राज्यपाल का प्रमुख परामर्शदाता है।
5. मुख्यमन्त्री के परामर्श पर राज्यपाल विधानसभा को भंग कर सकता है।

मुख्यमन्त्री के कार्यों के विवरण के आधार पर राज्य के प्रशासन में मुख्यमन्त्री की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मुख्यमन्त्री राज्यपाल एवं मन्त्रिपरिषद् के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। वह राज्यपाल को मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों तथा विचाराधीन विधेयक के सम्बन्ध में सूचना देता है। राज्यपाल इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक जानकारी भी माँग सकता है। वास्तव में, मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष होने के नाते संविधान ने उसका यह कर्त्तव्य निश्चित किया है कि वह राज्यपाल को न केवल मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों के सम्बन्ध में सूचना ही दे, अपितु उसे शासन और विधान सम्बन्धी सुझावों के सम्बन्ध में भी सूचित करे। मुख्यमन्त्री के द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं के आधार पर राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् को परामर्श देने, प्रोत्साहित करने तथा चेतावनी देने के कार्य को सम्पादित करता है। इस प्रकार के परामर्श तथा चेतावनी के बावजूद मन्त्रिपरिषद द्वारा एक बार निर्णय कर लेने के उपरान्त राज्यपाल उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है। इसके साथ-साथ कुछ असामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल मुख्यमन्त्री के परामर्श के बिना स्वविवेक के आधार पर अनेक कार्यों का सम्पादन करता है; जैसे—राज्य में संवैधानिक तन्त्र की विफलता की रिपोर्ट राज्यपाल स्वविवेक के आधार पर ही राष्ट्रपति को भेजता है। मुख्यमन्त्री को राज्यपाल के कहने पर किसी भी ऐसे मामले को, जिस पर मन्त्रिपरिषद ने विचार न किया हो, मन्त्रिपरिषद् के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। इस प्रकार राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। राज्यपाल तथा मन्त्रिपरिषद् के मध्य यदि किसी विषय पर किसी कारणवश विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो उसका किस प्रकार से वैधानिक रूप से समाधान किया जाएगा, इस सम्बन्ध में संविधान में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

न्यायपालिका

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. न्यायापालिका से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सरकार का वह अंग, जिसका प्रमुख कार्य संविधान की व्याख्या करना तथा कानूनों को भंग करने वालों को दण्ड देना है, न्यायपालिका कहलाती है।

प्र.2. भारत में एकीकृत न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। इससे क्या तात्पर्य है?

उत्तर हमारे देश में अमेरिका की भाँति केन्द्र तथा राज्यों में पृथक्-पृथक् न्यायालय नहीं हैं। भारत में राज्यों के उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अधीन हैं तथा उसकी देख-रेख में ही कार्य करते हैं। इस प्रकार भारत में एकीकृत न्यायालयों की स्थापना की गई है।

प्र.3. न्यायिक पुनरीक्षण को परिभाषित कीजिए।

उत्तर **पैनोक एवं स्मिथ** के शब्दों में—"न्यायिक पुनरीक्षण न्यायपालिका को प्राप्त बह शक्ति है निसके आधार पर वह विधायिका, कार्यपालिका व प्रशासन द्वारा बनाए गए कानूनों अथवा आदेशों को संवैधानिक कानून के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है।"

प्र.4. उच्चतम न्यायालय में कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की क्या भूमिका है?

उत्तर जब मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो अथवा वह अनुपस्थित हो अथवा किसी अन्य कारण से अपना कार्य न कर सके तो उसके स्थान पर एक कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

प्र.5. उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति की किन्हीं दो उपयोगिताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर 1. उच्चतम न्यायालय संविधान की व्याख्या करके उसको परिवर्तित हुई परिस्थितियों के अनुकूल विकसित होने में सहायता प्रदान करता है।
2. मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करने के लिए न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति अति आवश्यक है।

प्र.6. उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित किन्हीं दो अपवादों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. सरकारों के मध्य विवाद किसी न्यायोचित अधिकार पर आधारित होना चाहिए। सरकारों के बीच जो विवाद किसी विधि पर आधारित न हो या जिनका आधार वैधानिक न हो, वे उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं।
2. उच्चतम न्यायालय को व्यक्तियों, सभाओं तथा स्थानीय संस्थाओं के विषय में भी कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है।

प्र.7. भारत के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनरीक्षण शक्ति पर लगी किन्हीं दो सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. न्यायालय केवल उन्हीं कानूनों को अवैधानिक घोषित कर सकता है जो उसके समक्ष मुकदमों के रूप में आते हैं।
2. इस बात पर सभी सहमत हैं कि कानून को अवैधानिक तब ही घोषित किया जाए, जब उस कानून की असंवैधानिकता बिना किसी भ्रम के स्पष्ट हो।

प्र.8. अमेरिका तथा भारत के उच्चतम न्यायालय कानून की वैधता की जाँच करने में कौन-सी प्रक्रिया का प्रयोग करते हैं?

उत्तर अमेरिका का उच्चतम न्यायालय कानून की वैधता की जाँच के लिए कानून की उचित प्रक्रिया (Due Process of the Law) का प्रयोग करता है जबकि भारत का उच्चतम न्यायालय कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by the Law) का प्रयोग करता है। इस सन्दर्भ में भारत के उच्चतम गायालय की स्थिति कमजोर है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.9. सेवानिवृत्ति के पश्चात् उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश किस प्रकार की सेवा कर सकता है?

उत्तर उच्चतम न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश अवकाश प्राप्ति के पश्चात् भारत की सीमा के अन्दर किसी भी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता परन्तु आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश को कोई विशेष कार्य सौंप सकता है। उस न्यायाधीश को इस कार्य का वेतन दिया जाता है।

प्र.10. उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति की किन्हीं दो उपयोगिताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर 1. उच्चतम न्यायालय संविधान की व्याख्या करके उसको बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल विकसित होने में सहायता प्रदान करता है।
2. मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करने के लिए न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति अत्यावश्यक है।

प्र.11. भारत के उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक न्याय के क्षेत्र में बहुत सराहनीय कार्य किया है। किन्हीं दो उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. भारत के उच्चतम न्यायालय ने अस्पृश्यों के मन्दिरों में प्रवेश के अधिकार को मान्यता प्रदान की है।
2. उच्चतम न्यायालय ने देवदासी के इस अधिकार को मान्यता प्रदान की है कि वह अपनी माँ की सम्पत्ति को विरासत में प्राप्त कर सके।

प्र.12. भारत के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनरीक्षण शक्ति पर लगी किन्हीं दो सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. न्यायालय केवल उन्हीं कानूनों को अवैधानिक घोषित कर सकता है जो उसके समक्ष मुकदमों के रूप में आते हैं।
2. इस बात पर सभी सहमत हैं कि कानून को अवैधानिक तब ही घोषित किया जाए, जब उस कानून की असंवैधानिकता बिना किसी भ्रम के स्पष्ट हो।

प्र.13. जनहित याचिकाएँ किन न्यायालयों में दायर की जा सकती हैं?

उत्तर जनहित याचिकाओं को उच्चतम न्यायालय या जिस प्रान्त से सम्बन्धित याचिका है उस प्रान्त के उच्च न्यायालय में दाखिल किया जा सकता है।

प्र.14. भारत का उच्चतम न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का प्रयोग किस आधार पर करता है?

उत्तर न्यायालय इस अधिकार का प्रयोग 'कानून द्वारा व्यवस्थित प्रक्रिया' के द्वारा करता है।

प्र.15. न्यायिक पुनरीक्षण को परिभाषित कीजिए।

उत्तर पैनोक एवं स्मिथ के शब्दों में—"न्यायिक पुनरीक्षण न्यायपालिका को प्राप्त वह शक्ति है जिसके आधार पर वह विधायिका, कार्यपालिका व प्रशासन द्वारा बनाए गए कानूनों अथवा आदेशों को संवैधानिक कानून के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है।"

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'न्यायपालिका की स्वतन्त्रता' को संक्षेप में समझाइए।

उत्तर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए अनेक संवैधानिक उपाय किए गए हैं जिनमें से मुख्य निम्न प्रकार हैं—

1. **नौकरी की सुरक्षा**—कई बार न्यायाधीशों को सरकार के विरुद्ध भी निर्णय देने पड़ते हैं इसलिए संविधान द्वारा दोनों सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नौकरी को बिल्कुल सुरक्षित बना दिया गया है। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है परन्तु राष्ट्रपति उन्हें उनके पद से हटा नहीं सकता। कभी जब ऐसा अवसर आता भी है तो संसद के दोनों सदन यदि अलग-अलग 2/3 बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास कर दें तो राष्ट्रपति किसी विशेष न्यायाधीश को हटा सकता है, अपने आप नहीं।
2. **वेतन एवं मिलने वाली अन्य सुविधाओं की सुरक्षा**—न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए यह भी व्यवस्था की गई है कि किसी न्यायाधीश का वेतन एवं अन्य सुविधाओं को उसके कार्यकाल में कम नहीं किया जा

सकता। न्यायाधीशों को वेतन और अन्य सुविधाएँ भी इतनी दी जा सकती हैं कि वे सम्मान का जीवन जी सकें और घूसखोरी आदि की ओर आकर्षित न हों।

3. **पेंशन की व्यवस्था**—अपने कार्यकाल के पश्चात् भी न्यायाधीश एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सके इसके लिए प्रत्येक न्यायाधीश को पेंशन देने की व्यवस्था भी की गई है।
4. **पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था**—न्यायाधीश बिना किसी डर के न्याय कर सकें, इसलिए उनके जीवन की सुरक्षा का भार राज्य अपने ऊपर ले लेता है। उनके निवास स्थान पर 24 घण्टे पुलिस का पहरा रहता है। उनके फैसलों की कोई आलोचना भी नहीं कर सकता, चाहे वह प्रैस हो या कोई और विशेष व्यक्ति।

प्र.2. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता से आशय है, कि न्यायाधीश स्वयं का निर्णय देते समय अपने विवेक से कार्य करें और बाह्य दबावों से स्वतन्त्र रहें अर्थात् विधायिका एवं कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतन्त्र रहें। **सी०एफ० स्ट्रांग** के अनुसार—"न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ है कि न्यायाधीशों में भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए और उन पर विधानमण्डल तथा कार्यकारिणी का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।" न्यायपालिका का स्वतन्त्र होना ही न्यायिक निष्पक्षता का आधार है। अत: न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ है—न्यायाधीशों को न्याय प्रदान करने में और कानूनों की व्याख्या करने में अपने विवेक का बिना किसी दबाव के प्रयोग करना, सरकार के अन्य दोनों अंगों के प्रभावों व शक्तियों से, राजनीतिक दलों व अन्य राजनीतिक या गैर-राजनीतिक संगठन एवं समूह या व्यक्ति विशेष के प्रभाव से सुरक्षित रखना है।

प्र.3. सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति
(Appointment of Chief Justice of Supreme Court)

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 124(2)** के अनुसार उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने पूर्ण अधिकारों के तहत करता है। इसके लिए वह आवश्यकतानुसार उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की भी सलाह ले सकता है। भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की एक समिति गठित की जाती है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय और देश के विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए संविधान के **अनुच्छेद 124(2)** और **217** के निर्वचन पर आधारित 'कॉलेजियम' व्यवस्था की जगह अब 'न्यायिक नियुक्ति आयोग' का गठन किया जा रहा है। इस आयोग में कुल 6 सदस्य होंगे। भारत का मुख्य न्यायाधीश इस आयोग का अध्यक्ष होगा। संविधान में मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कोई अलग प्रावधान नहीं है लेकिन मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में केवल दो मामलों को छोड़कर सदैव वरिष्ठता के सिद्धान्त को अपनाया गया। **उदाहरणार्थ**—प्रथम 1973 में जब ए०एन०रे को तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों से ऊपर भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया। पुन: 1975 में न्यायमूर्ति एच०आर० खन्ना को पीछे छोड़ते हुए न्यायमूर्ति एम० एच० बेग की नियुक्ति की गई। अन्तत: 1993 में उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से यह निर्णय दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश की ही नियुक्ति की जाएगी।

प्र.4. उच्च न्यामालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं योग्यताएँ लिखिए।

उत्तर

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति
(Appointment of Judges of High Court)

संविधान के **अनुच्छेद 216** के अनुसार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। **अनुच्छेद 217** के अनुसार, मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल की सलाह लेता है।

अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल के अतिरिक्त उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह लेना राष्ट्रपति के लिए अनिवार्य है परन्तु संविधान में ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति के लिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानना अनिवार्य है या नहीं। परन्तु 1993 के सर्वोच्च न्यायालय के एक महत्त्वपूर्ण निर्णय ने यह निश्चित कर दिया है कि भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति के बिना किसी उच्च न्यायालय में किसी

न्यायाधीश की नियुक्ति नहीं हो सकती है। यदि उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश का स्थान किसी कारणवश अस्थायी रूप से रिक्त हो जाए तो राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश को कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की योग्यताएँ
(Qualifications for Judges of High Court)

संविधान के **अनुच्छेद 217(2)** के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. भारत में कम से कम 10 वर्ष तक किसी न्यायिक पद पर आसीन रहा हो तथा
3. किसी भी राज्य के उच्च न्यायालय में या एक से अधिक राज्य के उच्च न्यायालयों में कम से कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

प्र.5. न्यायिक सक्रियतावाद के आशय को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर न्यायिक सक्रियतावाद का आशय है—**"संविधान, कानून और अपने दायित्वों के प्रसंग में कानूनी व्याख्या से आगे बढ़कर सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों और सामाजिक-आर्थिक न्याय की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए संविधान और कानून की रचनात्मक व्याख्या करते हुए जन साधारण के हितों की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना।"** इसके अन्तर्गत यह बात सम्मिलित है कि जन सामान्य के हित की दृष्टि से आवश्यक होने पर शासन को निर्देश देना और शासन की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाना न्यायपालिका का दायित्व है। न्यायिक सक्रियतावाद के एक पक्षधर न्यायाधीश **पी० एन० भगवती** ने 1982 में कहा था— **"सर्वोच्च न्यायालय ने विगत दो वर्षों से देश में विद्यमान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए समस्त व्यवस्था में सक्रिय दृष्टिकोण अपना लिया है।"** 1980-2014 ई० के काल में न्यायिक सक्रियता में निरन्तर वृद्धि ही हुई है। **मई 2010** में **एच० एच० कपाड़िया** के मुख्य न्यायाधीश के पद को ग्रहण किये जाने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने और अधिक सक्रिय भूमिका तथा भ्रष्टाचार को लेकर अधिक गंभीर रुख का परिचय दिया। फरवरी 2012 ई० में तो सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा दूर-संचार के क्षेत्र में दिये गये 122 लाइसेंस रद्द कर दिये और सरकार को निर्देश दिया कि **'खुली नीलामी की प्रक्रिया'** को अपनाते हुए नये लाइसेंस जारी किये जाएँ। परम्परागत रूप में यह सोचा जाता रहा है कि न्यायपालिका को राज व्यवस्था में मात्र 'निषेधात्मक भूमिका' ही प्राप्त है, न्यायिक सक्रियतावाद के आधार पर न्यायपालिका को निषेधात्मक भूमिका के साथ-साथ एक सकारात्मक भूमिका, वस्तुतः एक रचनात्मक भूमिका प्राप्त हो जाती है। इसी आधार पर कुछ विद्वान **'न्यायिक सक्रियतावाद'** के स्थान पर **'न्यायिक रचनात्मकता'** या **'न्यायपालिका की रचनात्मक भूमिका'** शब्दों का प्रयोग करते हैं।

प्र.6. जनहित याचिकाओं के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर जनहित याचिकाओं का महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. **सामान्य जनता की आसान पहुँच**—जनहित याचिकाओं के द्वारा आम नागरिक भी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से न्याय के लिए न्यायालय के दरवाजे खटखटा सकता है। जनहित याचिकाओं के लिए किन्हीं विशेष कानूनी प्रावधानों के चक्कर में उलझना नहीं पड़ता है। व्यक्ति सीधे उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय में अपना वाद प्रस्तुत कर सकता है।
2. **शीघ्र निर्णय**—जनहित याचिकाओं पर न्यायालय तुरन्त न्यायिक प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देता है तथा उन पर शीघ्र ही सुनवाई होती है। उच्चतम न्यायालय ने **अनुच्छेद 21** तथा **32** की राज्य द्वारा अवज्ञा के मामलों को बहुत ही गम्भीरता से लिया है। जनहित याचिकाओं पर तुरन्त सुनवाई के कारण बहुत जल्दी निर्णय लिया जाता है।
3. **प्रभावी राहत**—अधिकांश जनहित याचिकाओं में यह देखने को मिलता है कि इसमें पीड़ित पक्ष को बहुत अधिक राहत प्राप्त हो जाती है तथा इसमें प्रतिवादी को सजा देने का भी प्रावधान है।
4. **कम व्यय**—जनहित याचिकाओं में याचिका प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का व्यय बहुत कम होता है क्योंकि इसमें सामान्य न्यायिक प्रक्रिया से गुजरना नहीं पड़ता है। यदि न्यायालय याचिका को निर्णय के लिए स्वीकार कर लेता है तो उस पर तुरन्त कार्यवाही के कारण शीघ्र निर्णय हो जाता है। इससे पीड़ित पक्ष को कम खर्च में शीघ्र न्याय प्राप्त हो जाता है।

प्र.7. न्यायिक पुनर्विलोकन के विभिन्न संवैधानिक आधारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 13, 32, 132, 226, 246** एवं **368** में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का उल्लेख किया गया है। संवैधानिक प्रावधानों के कारण उच्चतम न्यायालय मर्यादित रहकर इनका प्रयोग करता है। शुरू में उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी कानून का न्यायिक पुनर्विलोकन अग्र आधारों पर किया जाता था—

1. जिस विधायिका ने किसी कानून का निर्माण किया है, क्या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 के अनुसार वह ऐसा करने हेतु अधिकृत है।
2. वह कानून अनुच्छेद 13 के अनुसार संविधान के भाग-3 में वर्णित मूलाधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं करता।
3. इसमें 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' का उल्लंघन तो नहीं किया गया है। बाद में **केशवानन्द भारती (1978), श्रीमती मेनका गांधी** एवं **1980** का **मिनर्वा मिल** के प्रकरणों के पश्चात् से न्यायिक पुनर्विलोकन की कसौटियाँ निम्नांकित हैं—
   (i) अनुच्छेद 246 के अनुरूप विधायी सामर्थ्य का अतिक्रमण न हो।
   (ii) अनुच्छेद 13 के अनुरूप मूलाधिकारों का दुष्प्रभाव न पड़े।
   (iii) किसी व्यक्ति को मुलाधिकारों से वंचित करने वाली प्रतिक्रिया अनुच्छेद 14 में निहित नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप हो।
   (iv) कानून संविधान के मूल ढाँचे का अतिक्रमण न करे। मूल ढाँचे का निर्धारण उच्चतम न्यायालय अलग-अलग प्रकरणों में करता है। तदनुसार लोकतन्त्र, संघवाद, न्यायिक पुनर्विलोकन, पंथ निरपेक्षता इत्यादि संविधान के मूल ढाँचे के अन्तर्गत आते हैं।

प्र.8. भारत के उच्चतम न्यायालय की स्थिति या भूमिका का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर भारत में सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति एवं भूमिका बहुत ही महत्त्वपर्ण है। ये देश की न्याय प्रक्रिया की सर्वोच्च संस्था है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय न केवल संविधान का संरक्षक है बल्कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन में भी मुख्य भूमिका निभाता है। सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति एवं भूमिका का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है—

1. भारत के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायपालिका में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है। उसके निर्णय अन्तिम होते हैं और उसके विरुद्ध अन्यत्र अपील भी नहीं की जा सकती है।
2. देश के सभी उच्च एवं निम्न न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं।
3. संविधान की अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को ही प्राप्त है।
4. सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है। इसके तहत सर्वोच्च न्यायालय संसद एवं कार्यपालिका के निर्णयों की वैधता की समीक्षा करता है।
5. सर्वोच्च न्यायालय जनहित याचिकों सुन सकता है और उन पर अन्तिम निर्णय देकर उसके अनुसार सरकार को कार्य करने का निर्देश दे सकता है।
6. सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका एवं प्रशासन को किसी विशेष कार्य को पूर्ण करने का निर्देश दे सकता है।
7. सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक है।
8. सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संघात्मक व्यवस्था के मध्य उत्पन्न विवादों का अन्तिम निर्णायक है।
9. महिलाओं के अधिकारों से सम्बन्धित विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय ने कई महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक निर्णय दिए हैं।

प्र.9. उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का वर्णन कीजिए।

उत्तर सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को दो वर्गों में रखा जा सकता है—

1. **प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार—दुर्गादास बसु** का कहना है कि **"यद्यपि हमारा संविधान एक सन्धि या समझौते के रूप में नहीं है फिर भी संघ तथा राज्यों के बीच व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकारों का विभाजन किया गया है। अतः अनुच्छेद 131 संघ तथा राज्यों या राज्यों के बीच न्यायिक विवादों के निर्णय का प्रारम्भिक तथा एकमेव क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौंपता है।"** सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत अग्र विषय आते हैं—

(i) भारत सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्यों के बीच विवाद।
(ii) भारत सरकार, राज्य या कई राज्यों तथा एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद।
(iii) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद, जिसमें कोई ऐसा प्रश्न अन्तर्निहित हो जिस पर किसी वैध अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो।

सर्वोच्च न्यायालय को केवल संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के पारस्परिक विवादों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं अर्थात् उपर्युक्त प्रकार के विवाद केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही उपस्थित किये जा सकते हैं।

2. **समवर्ती प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार**—संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को भी अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान के **अनुच्छेद 32(1)** द्वारा विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय को उत्तरदायी ठहराया गया है कि वह **''मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए समुचित कार्यवाही करे।''** इस प्रकार मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी के भी द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है।

प्र.10. दीवानी या नागरिक मामले में मुकदमे की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

दीवानी न्यायालय
(Civil Court)

जिला जज का न्यायालय सबसे बड़ा दीवानी न्यायालय होता है। इस न्यायालय में सम्पदा सम्बन्धी या धन सम्बन्धी अन्य मुकदमे सुने जाते हैं। इसके अन्तर्गत सिविल जज, मुन्सिफ, लघुवाद न्यायालय तथा न्याय पंचायत होती हैं। दीवानी मामलों में यह मौलिक, प्रादेशिक और आर्थिक अधिकार क्षेत्र है जो मामले को जिला अदालत में भेजने से पहले का चरण है। दीवानी या नागरिक मामले में मुकदमे की प्रक्रिया निम्नलिखित है—

1. **जिला जज**—जिला जज को किसी भी मूल्य तक के विवादों की प्रारम्भिक सुनवाई का अधिकार प्राप्त है। जिला जज के न्यायालयों को पाँच लाख रुपये मूल्य तक के विवादों की अपीलें तथा एक लाख रुपये तक के रिवीजन की सुनवाई का अधिकार है।
2. **सिविल जज (सीनियर डिवीजन)**—जिला जज के न्यायालय के नीचे सिविल जज का न्यायालय होता है। सिविल जज को भी एक लाख रुपये तक के दीवानी विवादों की अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है जो उच्च न्यायालय के विवेकानुसार अधिकतम पाँच लाख ₹ तक किया जा सकता है।
3. **सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/मुन्सिफ न्यायालय**—पहले इसे मुंसिफ न्यायालय के नाम से जाना जाता था, अब इसे सिविल जज का नाम दिया गया है। इसे एक लाख रुपये मूल्य तक के दीवानी विवादों की सुनवाई प्राप्त है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा अपने विवेकानुसार पाँच लाख रुपये तक किया जा सकता है।
4. **लघुवाद न्यायालय**—ये न्यायालय भी दीवानी विवादों का निस्तारण करते हैं। उत्तर प्रदेश में कुछ बड़े जिलों में लघुवाद न्यायालय होते हैं। ये न्यायालय पाँच हजार रुपये तक के उन लघु वादों की सुनवाई करते हैं जिनमें धन वसूली की माँग की गई हो। इसके अतिरिक्त लघुवाद न्यायालय किराया वसूली व मकान-दुकानों से किराएदार की बेदखली ₹ 25 हजार मूल्य तक के वादों की सुनवाई कर सकते हैं।
5. **न्याय पंचायत**—ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे निचले स्तर पर न्याय पंचायतें होती हैं। इसमें ₹ 500 तक के मुकदमे सुनने का अधिकार होता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. न्यायपालिका का अर्थ व परिभाषा को स्पष्ट करते हुए न्यायपालिका के कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

न्यायपालिका का अर्थ व परिभाषा
(Meaning and Definition of Judiciary)

न्यायपालिका से तात्पर्य है, सरकार का वह अंग, जिसका प्रमुख कार्य संविधान की व्याख्या करना तथा कानूनों को भंग करने वालों को दण्ड देना है। इस प्रकार कानूनों की व्याख्या करने व उनका उल्लंघन करने वाले सदस्यों को दण्डित करने की संस्थागत

व्यवस्था ही न्यायपालिका कहलाती है। यह उन सदस्यों का समूह है जिन्हें न्याय करने का अधिकार प्राप्त है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का वह भाग है जो सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति के अत्यधिक केन्द्रीकरण की रोकथाम एवं नागरिकों की बहुमत के निरंकुश शासन से उनके स्वतन्त्रता व अधिकारों की सुरक्षा करती है। कुछ विद्वानों ने न्यायपालिका को अग्र रूप में परिभाषित भी किया है—

वाल्टन एच० हेमिल्टन के अनुसार—"न्यायिक प्रक्रिया न्यायाधीशों के द्वारा मुकदमों का निर्णय करने की मानसिक प्रविधि है।"

लास्की के अनुसार—"न्यायपालिका अधिकारियों का ऐसा समूह है, जिसका कार्य, राज्य के किसी कानून विशेष के उल्लंघन की शिकायत, जो विभिन्न नागरिकों व राज्य के बीच एक दूसरे के खिलाफ होती है, का समाधान व फैसला करना है।"

रॉले के अनुसार—"न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जिसका कार्य अधिकारों का निश्चय और उन पर निर्णय देना, अपराधियों को दण्ड देना तथा निर्बलों की अत्याचार से रक्षा करना है।"

ब्राइस के अनुसार—"न्यायपालिका किसी सरकार की उत्तमता को जाँचने की कसौटी है।"

अत: कहा जा सकता है कि न्यायपालिका सरकार की निरंकुशता से नागरिकों को बचाने वाला सरकार का ही एक अंग है। जो कानून की व्याख्या करने के साथ-साथ अनुचित कार्य करने वालों को दण्ड भी देता है। गार्नर द्वारा इसे सभ्य समाज का मेरुदण्ड कहा गया है।

न्यायपालिका के कार्य
(Functions of Judiciary)

किसी भी देश में न्यायपालिका के निम्नलिखित कार्य हो सकते हैं—

1. **न्याय करना**—न्यायपालिका का मुख्य कार्य न्याय प्रदान करना है। जो व्यक्ति विधि का उल्लंघन करता है, उसे कार्यपालिका द्वारा न्यायालयों के सामने पेश किया जाता है। न्यायपालिका द्वारा फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुकदमों में न्याय किया जाता है। प्राय: दीवानी विवाद नागरिकों के मध्य होते हैं, जबकि फौजदारी मुकदमों में एक ओर सरकार तथा दूसरी ओर नागरिक होते हैं। साक्ष्य के आधार पर न्यायपालिका सभी विवादों में विधि के अनुसार अपराधी को उचित दण्ड देती है तथा उस व्यक्ति के साथ न्याय किया जाता है, जो प्रभावित होते है।
2. **कानून की व्याख्या करना**—कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की व्याख्या न्यायपालिका करती है। कई बार अस्पष्ट व संविधान के विरुद्ध कानून होते हैं। उनको बिना व्याख्या किए लागू करने का तात्पर्य होगा—मानव अधिकार व स्वतन्त्रताओं पर आघात करना। सर्वोच्च शक्ति की अधिकारी होने के कारण ऐसे कानूनों की अन्तिम व्याख्याकार न्यायपालिका ही होती है। भारत एवं अमेरिका की न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि कोई कानून अस्पष्ट हो तो न्यायाधीश स्वयं की बुद्धि, विवेक एवं नैतिकता के आधार पर निर्णय प्रदान करे। कानूनों के स्पष्टीकरण हेतु न्यायालयों द्वारा दी गई व्याख्याएँ सामान्य कानूनों की भाँति ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। ये कानून भी निर्णयमूलक कानून के रूप में संविधान का अंग बन जाते हैं।
3. **संविधान की रक्षा करना**—न्यायपालिका संविधान की प्रमुख संरक्षक भी होती है। वह संविधान की पवित्रता को बनाए रखने के लिए, विधायिका एवं कार्यपालिका द्वारा बनाए गए-कानूनों को संविधान के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है। भारतीय तथा अमेरिकी न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। इसके अनुसार वह संविधान की निष्पक्षता व प्रभावशीलता को बनाए रखने हेतु असंवैधानिक निर्णयों को पलट देती है। इस प्रकार न्यायपालिका संविधान की रक्षक भी है।
4. **नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करना**—प्रत्येक देश में नागरिकों की स्वतन्त्रता व अधिकारों की रक्षक न्यायपालिका ही मानी जाती है। न्यायपालिका सरकार की निरंकुशता से नागरिकों की रक्षा करती है और मौलिक अधिकारों को किसी भी नागरिक या संस्था द्वारा हानि पहुँचाने के प्रयास में दण्डित भी करती है। इनकी सुरक्षा हेतु वह न्यायादेश भी प्रस्तावित कर सकती है। व्यक्ति न्यायपालिका की शरण ले सकता है जब किसी व्यक्ति के अधिकारों व स्वतन्त्रता को कोई हानि पहुँचती है। न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए विधायिका एवं कार्यपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों को भी अवैध घोषित करने का अधिकार रखती है। इस प्रकार न्यायपालिका नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों की सुरक्षा करती है।

5. **संघ की संरक्षक**—संघात्मक शासन प्रणाली युक्त देशों में केन्द्र व राज्यों में शक्तियों का विभाजन होने के कारण उनके शक्तियों के प्रयोग एवं व्याख्या को लेकर उनमें परस्पर विवाद होने की संभावना अधिक होती है। इन विवादों का समाधान न्यायपालिका ही करती है। संविधान के अन्तर्गत शक्ति विभाजन की उचित व्याख्या न्यायपालिका ही करती है और राज्य व केन्द्र को स्वयं के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोकती है। इस प्रकार वह संघ की संरक्षक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभती है।
6. **सलाहकारी कार्य**—न्यायपालिका कुछ देशों में सरकार को परामर्श भी प्रदान करती है। किन्तु न्यायपालिका की सलाह स्वीकारना या न स्वीकारना सरकार पर निर्भर करता है। सरकार को इसके लिए न्यायपालिका बाध्य नहीं कर सकती। इंग्लैण्ड में. सलाहकारी भूमिका के रूप में न्यायपालिका के सम्मान में अधिक वृद्धि हुई है। भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय की सलाह, राष्ट्रपति ने अनेक विवादों में प्राप्त की है। जैसे, रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद पर केन्द्र सरकार द्वारा कई बार सर्वोच्च न्यायालय की ही सलाह प्राप्त की गयी है। न्यायपालिका की सलाह कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्वीडन, पनामा आदि देशों में प्राप्त की जाती है।
7. **राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व व शांति कायम रखना**—राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध न्यायपालिका ही कठोरता अपनाती है। वह सदस्य या संस्था देशद्रोह का अपराधी माना जाता है, जो राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व से छेड़छाड़ करता है। राजनीतिक स्थायित्व को कायम रखने का प्रमुख उत्तरदायित्व न्यायपालिका का ही है। न्यायपालिका ही सरकार के प्रति जनता का विश्वास सरकार के कार्यों को औचित्यता प्रदान करके कायम रखती है। न्यायपालिका इस कार्य के लिए विधायिका व कार्यपालिका के कानूनों का परीक्षण करती रहती है। राजनीतिक स्थायित्व में वृद्धि होना स्वाभाविक है, क्योंकि आज न्यायपालिका न्यायिक सक्रियतावाद के द्वारा जनहित के कार्य भी करने लगी है। देश में शांति बनाए रखने में न्यायपालिका ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे राजनीतिक स्थायित्व बना रहता है। न्यायपालिका इसके लिए पुलिस व सेना तक का भी सहयोग प्राप्त करती है। न्यायपालिका अपराधी को उसके अपराध के अनुसार ही दण्ड देती है ताकि कानून का शासन बना रहे। इसलिए राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व तथा समाज में शान्ति कायम रखने में भी न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
8. **प्रशासनिक कार्य**—न्यायपालिका को स्वयं का प्रशासन चलाने हेतु अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग की भी आवश्यकता पड़ती है। इसलिए प्रशासन में सहयोग प्राप्त करने के लिए वह स्थानीय पदाधिकारियों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति करती है। ये अधिकारी सभी आवश्यक दस्तावेजों व अभिलेख को सुरक्षित रखते हैं इससे न्यायपालिका को आवश्यकता पड़ने पर उन्हें उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

अन्य कार्य—उपर्युक्त वर्णित कार्यों के अतिरिक्त भी न्यायपालिका अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी पूर्ण करती है; जैसे—

1. मृतक सदस्यों की सम्पत्ति का प्रबन्ध करना,
2. नागरिक विवाह की अनुमति प्रदान करना,
3. विवाह विच्छेद की अनुमति प्रदान करना,
4. शस्त्र लाइसेन्स प्रस्तावित करना,
5. उच्च अधिकारियों को शपथ दिलवाना,
6. निर्वाचन सम्बन्धी अपीलें सुनना सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रन्यासियों (Trustees) को नियुक्त करना,
7. अल्पवयस्कों के संरक्षकों को नियुक्त करना, वसीयतनामे तैयार करना आदि।

प्र.2. उच्चतम न्यायालय के संघटन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान निर्माता एक ऐसा अखिल भारतीय सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय बनाने के लिए कृत संकल्प थे जिसे फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार का क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। उच्चतम न्यायालय इसी संकल्पना की पूर्ति करता है।

उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court)

न्याय सभ्य समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। संघात्मक शासन में स्वतन्त्र, उच्चतम तथा निष्पक्ष न्यायालय की बहुत आवश्यकता होती है। उच्चतम न्यायालय संविधान के संरक्षक और संविधान के आधिकारिक व्याख्याता के रूप में कार्य करता है।

वह नागरिकों की स्वतन्त्रता और अधिकारों की भी सुरक्षा करता है। इस सम्बन्ध में **एम०सी० सीतलवाड** के विचार उल्लेखनीय हैं—"संविधान की अन्तिम व्याख्या के रूप में, चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ और राज्यों के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानून और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र, राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यन्त्रस्वरूप, उच्चतम न्यायालय के प्रभाव पर बल देना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।" **एम०वी० पायली** के अनुसार, "अपनी विविध और व्यापक शक्तियों के कारण उच्चतम न्यायालय देश के न्याय-क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ संस्था है तथा देश के संविधान का रक्षक है।"

उच्चतम न्यायालय का संघटन
(Composition of Supreme Court)

संविधान के अनुच्छेद 124 के अनुसार, उच्चतम न्यायालय के लिए एक मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई थी। सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार अब मुख्य न्यायाधीश सहित न्यायाधीशों की कुल संख्या 34 कर दी गई है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या, उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों का वेतन व सेवा-शर्तें निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। कार्य को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रपति अस्थायी न्यायाधीश (ad hoc Judge) की भी नियुक्ति कर सकता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति
(Appointment of Judges)

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के ऐसे अन्य न्यायाधीशों से परामर्श लेता है, जिनसे वह इस विषय में परामर्श लेना आवश्यक समझता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए यह परम्परा सुस्थापित है कि मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति वरिष्ठताक्रम के आधार पर की जाए। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में वर्तमान व्यवस्था यह है कि उच्चतम न्यायालय में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में मुख्य न्यायाधीश को अपनी संस्तुतियाँ प्रेषित करने से पूर्व उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श किया जाना आवश्यक है। यदि दो न्यायाधीश भी विपरीत मत व्यक्त करते हैं, तो मुख्य न्यायाधीश को सरकार को अपनी संस्तुति नहीं भेजनी चाहिए।

न्यायाधीशों की योग्यताएँ
(Qualifications of Judges)

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. या तो—
   (i) पारंगत विधिवेत्ता हो, या
   (ii) एक या अधिक उच्च न्यायालयों में 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो, या
   (iii) एक या अधिक उच्च न्यायालयों में 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

कार्यकाल तथा पदच्युति
(Tenure and Dismissal)

उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर आसीन रह सकता है। इस अवस्था से पूर्व वह स्वयं त्याग-पत्र दे सकता है। कदाचार अथवा असमर्थता के कारण महाभियोग द्वारा न्यायाधीश को पदच्युत किया जा सकता है। यदि संसद के दोनों सदन पृथक्-पृथक् अपने कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई बहुमत से उसको अयोग्य या आपत्तिजनक आचरण करने वाला प्रमाणित कर देते हैं, तो भारत का राष्ट्रपति ऐसे न्यायाधीश को उसके पद से हटा सकता है। न्यायाधीश को पदच्युत करने वाला प्रस्ताव संसद के एक ही सत्र में स्वीकृत होना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

वेतन, भत्ते आदि
(Salary and Allowances etc.)

संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ₹ 2.80 लाख मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों को ₹ 2.50 लाख मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों को रहने के लिए बिना किराये का घर तथा अन्य भत्ते मिलते हैं। अवकाश-ग्रहण करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को पेंशन भी प्राप्त होती है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र बनाने के लिए संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के पश्चात् उसके वेतन, भत्ते तथा अन्य सुविधाओं में कमी नहीं की जा सकती परन्तु आर्थिक संकट की उद्घोषणा के बाद राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते आदि में कटौती करने सम्बन्धी आदेश दे सकता है।

प्र.3. उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार का वर्णन करते हुए उसकी शक्तियों की समीक्षा कीजिए।

उत्तर

उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार
(Jurisdiction of Supreme Court)

भारतीय संविधान के द्वारा उच्चतम न्यायालय को व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। इसके क्षेत्राधिकार का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

I. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को दो वर्गों में रखा जा सकता है—

1. **प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार**—प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत वे वाद आते हैं, जो सीधे उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत किए जाते हैं, किसी और न्यायालय में नहीं।
   उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया गया है—
   (i) केन्द्र तथा एक या एक से अधिक राज्यों के मध्य विवाद।
   (ii) जब केन्द्र तथा एक या एक से अधिक राज्य एक पक्ष में हों तथा एक या अधिक राज्य विपक्ष में हो।
   (iii) जब कोई विवाद दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य हो।
2. **प्रारम्भिक समवर्ती क्षेत्राधिकार**—मौलिक अधिकारों की व्याख्या करने और सुरक्षा करने के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को भी अधिकार प्रदान किया गया है अत: मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित वाद उच्च न्यायालयों अथवा उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।
3. **राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करना**—39वें संविधान संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार उच्चतम न्यायालय को था तथा उसका निर्णय अन्तिम होता था। 39वें संविधान संशोधन ने इस अधिकार को समाप्त कर दिया परन्तु जनता पार्टी की सरकार के द्वारा किए गए 44वें संविधान के अनुसार वर्तमान में यह स्थित है कि राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित सभी सन्देहों तथा विवादों की जाँच उच्चतम न्यायालय करेगा तथा उच्चतम न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा।

II. अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के साथ-साथ अपीलीय क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया गया है। यह भारत का अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। इसे समस्त राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—संवैधानिक, दीवानी एवं फौजदारी।

1. **संवैधानिक**—संविधान के **अनुच्छेद 132** के अनुसार, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है, तो उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण पत्र न भी दे तो उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसी अपील की अनुमति प्रदान कर दे जिसमें उसको भी विश्वास हो कि इसमें संविधान से सम्बन्धित कोई प्रश्न निहित है।

2. **दीवानी**—मूल संविधान के अनुसार, दीवानी मामलों में 20 हजार रुपये से अधिक की धनराशि या जायदाद की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती थी परन्तु संविधान के 30वें संशोधन के अनुसार धनराशि की उपर्युक्त सीमा हटा दी गई है। अब यह निश्चित कर दिया गया है कि उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में ऐसे प्रत्येक दीवानी मामलों के विरुद्ध अपील की जा सकेगी, जिसमें उच्च न्यायालय ने यह प्रमाणित कर दिया हो कि इस विवाद में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई प्रश्न निहित है।
3. **फौजदारी**—फौजदारी के क्षेत्र में उन विवादों में उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, जिनमें—
   (i) उच्च न्यायालय के नीचे के न्यायालय के किसी निर्णय को रद्द करके अभियुक्त को मृत्युदण्ड दे दिया हो,
   (ii) उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय में चल रहे किसी विवाद को अपने यहाँ मँगवाकर अभियुक्त को मृत्युदण्ड दे दिया हो,
   (iii) उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के योग्य है।

III. अपील की विशेष आज्ञा का अधिकार

कुछ ऐसे वाद हो सकते हैं, जो उपर्युक्त श्रेणी में नहीं आते हैं परन्तु जिनमें उच्चतम न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक प्रतीत होता है। **अनुच्छेद 136** के अनुसार, उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि सैन्य न्यायालय को छोड़कर वह भारत के अन्य किसी भी न्यायालय अथवा न्यायमण्डल के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान कर सकता है। अपीलीय क्षेत्राधिकार की दृष्टि से भारत का उच्चतम न्यायालय विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली है।

IV. परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार

संविधान ने उच्चतम न्यायालय को परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया है। **अनुच्छेद 143** के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उसके समक्ष उत्पन्न हुआ है, जो सार्वजनिक महत्त्व का है तो वह उस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय से परामर्श माँग सकता है। न्यायालय के परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करता है।

V. अभिलेख न्यायालय

अनुच्छेद 129 उच्चतम न्यायालय को अभिलेख न्यायालय की स्थिति प्रदान करता है। अभिलेख न्यायालय के दो आशय हैं—**प्रथम**, इस न्यायालय के निर्णय समस्त अधीनस्थ न्यायालयों में साक्षी के रूप में स्वीकार किए जाएँगे और इन्हें किसी भी न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने पर उनकी प्रामाणिकता के विषय में प्रश्न नहीं उठाया जाएगा तथा **द्वितीय**, इस न्यायालय के द्वारा 'न्यायालयीय अवमानना' (Contempt of Court) के लिए किसी भी प्रकार का दण्ड दिया जा सकता है।

VI. मौलिक अधिकारों का संरक्षक

भारत का उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। **अनुच्छेद 32** उच्चतम न्यायालय को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराता है कि वह मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे। न्यायालय मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण आदि लेख जारी कर सकता है। किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन होने पर वह सीधे उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है।

VII. संविधान का संरक्षक-न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति

उच्चतम न्यायालय संविधान की सर्वोपरिता एवं पवित्रता की सुरक्षा करता है अत: संविधान के द्वारा उच्चतम न्यायालय को संविधान के संरक्षण का कार्य भी प्रदान किया गया है, जिसका अर्थ है कि उच्चतम न्यायालय को संसद अथवा राज्य विधानमण्डलों के द्वारा निर्मित कानूनों की वैधानिकता की जाँच करने का अधिकार प्राप्त है। **अनुच्छेद 131** और **132** उच्चतम न्यायालय को संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विधियों के पुनरावलोकन का अधिकार प्रदान करते हैं अत: यदि संसद अथवा राज्य विधानमण्डल, संविधान के अनुच्छेदों का अतिक्रमण करते हैं या संविधान के विरुद्ध विधि का निर्माण करते हैं तो संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित ऐसी प्रत्येक विधि को उच्चतम न्यायालय अवैधानिक घोषित कर सकता है। उच्चतम न्यायालय की इस शक्ति को **'न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति'** (Power of Judicial Review) कहा जाता है।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियों की समीक्षा
(Evaluation of Powers of Supreme Court)

उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उच्चतम न्यायालय को संघीय व्यवस्था और मौलिक अधिकारों के संरक्षक तथा भारतीय संघ के अन्तिम अपीलीय न्यायालय के रूप में बहुत ही व्यापक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय के कार्य-क्षेत्र की इस व्यापकता को देखकर ही भारत के पूर्व महान्यायवादी **एम०सी० सीतलवाड** ने कहा था—"उच्चतम न्यायालय का न्याय-क्षेत्र और उसकी शक्तियाँ राष्ट्रमण्डल के किसी भी देश के उच्चतम न्यायालय तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के कार्य-क्षेत्र तथा शक्तियों से व्यापक हैं।" वास्तव में, उच्चतम न्यायालय की शक्ति का उद्देश्य वैधानिक कार्यों की अपेक्षा कार्यपालिका के अत्याचारों तथा अनधिकार चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगाना है। उच्चतम न्यायालय यह सुनिश्चित करता है कि न तो संसद और न ही कार्यपालिका संविधान द्वारा लिखित क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करे।

उच्चतम न्यायालय की अब तक की गतिविधियों का विश्लेषण करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि संघीय व्यवस्था, मौलिक अधिकार और संविधान की सुरक्षा करके उच्चतम न्यायालय ने सदैव ही निष्पक्षता, निर्भीकता और न्यायपरायणता का परिचय दिया है।

प्र.4. न्यायिक पुनर्विलोकन से आप क्या समझते हैं? भारत के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रकृति एवं सीमाएँ तथा उसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

उच्चतम न्यायालय का न्यायिक पुनर्विलोकन (पुनरीक्षण) का अधिकार
(Supreme Court's Power of Judicial Review)

संविधान के **अनुच्छेद 13 (1),13 (2), 131, 132** तथा **246** द्वारा भारत के उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया है। यदि संसद अथवा राज्यों के विधानमण्डल कोई कानून इन मौलिक अधिकारों के विरुद्ध पारित करते हैं तो उच्च न्यायालय राज्यों के कानून और उच्चतम न्यायालय केन्द्र व राज्य दोनों के कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है। भारत में संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है। संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने का दायित्व संविधान निर्माताओं ने स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायाधीशों को सौंपा है। इसलिए उच्चतम न्यायालय को संविधान का संरक्षक कहा जाता है। न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करके संविधान की सुरक्षा के दायित्व का निर्वाह करता है।

न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ
(Meaning of Judicial Review)

न्यायिक पुनर्विलोकन का तात्पर्य न्यायालय द्वारा कानूनों तथा प्रशासकीय नीतियों की संवैधानिकता की जाँच, तदुपरान्त ऐसे कानूनों एवं नीतियों को असंवैधानिक घोषित करना है जो संविधान के किसी अनुच्छेद का अतिक्रमण करती है। **कार्विन** के शब्दों में—"न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है जो उन्हें अपने न्याय-क्षेत्र के अन्तर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में तथा कानूनों को लागू करने के सम्बन्ध में प्राप्त है, जिन्हें वे अवैध तथा व्यर्थ समझे।"

भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन-प्रकृति तथा सीमाएँ
(Judicial Review of India Nature and Limitations)

भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार सीमित है। केन्द्र सरकार यदि किसी ऐसे कानून को देश के लिए हितकर समझती है, जिसको उच्चतम न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया है तो वह संविधान में सरलता से आवश्यक संशोधन कर उस कानून को वैध कर सकती है। अनेक बार संविधान में इस प्रकार के संशोधन किए भी जा चुके हैं। उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश **एस०आर० दास** ने स्वयं स्वीकार किया है—"हमारे देश में अमेरिका की तरह न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है।" अतः भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार उतना विस्तृत नहीं है जितना कि अमेरिका में है। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र अमेरिका की तुलना में बहुत सीमित है। इसके अग्रलिखित कारण हैं—

1. भारत के संविधान में संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन कर दिया गया है। विवादों से बचने के लिए समवर्ती सूची का भी उल्लेख कर दिया गया है; अत: अमेरिका की तरह भारत के उच्चतम न्यायालय को किसी शब्द का व्यापक अर्थ लगाने के असीमित अधिकार प्राप्त नहीं हैं।
2. मौलिक अधिकारों तथा उनके प्रतिबन्धों (restrictions) के विस्तृत वर्णन के कारण भी न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र सीमित हो गया है। अमेरिका के संविधान में मौलिक अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। स्वाभाविक है कि प्रतिबन्धों का निर्णय न्यायालय करता है।
3. भारत का संविधान अमेरिका के संविधान की भाँति अत्यधिक कठोर नहीं है। यदि उच्चतम न्यायालय संसद के किसी कानून को अवैध घोषित भी कर दे, तो संसद संविधान में संशोधन करके उस कानून को वैध घोषित कर सकती है।

भारत तथा अमेरिका में प्रयुक्त न्यायिक पुनर्विलोकन के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अन्तर इन दोनों देशों की संवैधानिक व्यवस्थाओं में ही निहित है। अमेरिका के संविधान में कानून की उचित प्रक्रिया (Due Process of Law) शब्दावली को अपनाया गया है जबकि भारतीय संविधान में अमेरिकी संविधान की शब्दावली के स्थान पर जापानी संविधान की शब्दावली 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure Established by Law) को अपनाया गया है। संविधान में की गई इस व्यवस्था के आधार पर अमेरिकी उच्चतम न्यायालय किसी भी कानून की वैधानिकता का परीक्षण दो तथ्यों के आधार पर कर सकता है—(1) संघ तथा राज्य, जिसके भी विधानमण्डल ने उस कानून को बनाया है, उसके द्वारा इसका निर्माण उसकी कानून-निर्माण की क्षमता के अन्तर्गत था भी अथवा नहीं। (2) वह कानून की उचित प्रक्रिया की शर्तों को पूर्ण करता है अथवा नहीं। इस प्रकार यदि विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून पूर्णतया उसकी शक्ति के अन्तर्गत हैं, तो भी यदि वह कानून की उचित प्रक्रिया के अर्थात् प्राकृतिक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, तो उसे उच्चतम न्यायालय असंवैधानिक घोषित कर सकता है। परन्तु भारतीय संविधान में 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' की शब्दावली को अपनाया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत का उच्चतम न्यायालय संघीय अथवा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित किसी कानून को असंवैधानिक तब ही घोषित कर सकता है जबकि सम्बन्धित विधानमण्डल ने इस कानून का निर्माण करने में अपनी कानून-निर्माण की क्षमता का अतिक्रमण किया हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत का उच्चतम न्यायालय यह निश्चित करने में कि कोई भी कानून संवैधानिक है अथवा असंवैधानिक अथवा उचित-अनुचित आदि तथ्यों पर ध्यान नहीं देता है। भारत में न्यायाधीश अपनी बुद्धि, तर्क, प्राकृतिक न्याय अथवा उचित क्या है, अनुचित क्या है, के आधार पर कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकते हैं। वे तब ही किसी कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकते हैं, जब वह कानून संविधान के लिखित अनुच्छेदों के विरुद्ध हो।

न्यायिक पुनर्विलोकन का महत्त्व
(Importance of Judicial Review)

न्यायिक पुनर्विलोकन के महत्त्व को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

1. यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन की बहुत आलोचना हुई है, तथापि इसके महत्त्व को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है। इसी कारण वर्तमान समय तक इस विषय में उच्चतम न्यायालय के अधिकार सीमित नहीं किए गए हैं। इस शक्ति के आधार पर उच्चतम न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा निजी सम्पत्ति के अधिकारों की भी सुरक्षा की है। **प्रो० के०सी० ह्वीयर** के अनुसार, "संविधान को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना उच्चतम न्यायालय का ही कार्य है।"
2. उच्चतम न्यायालय ने संविधान को अपनी व्याख्याओं के द्वारा प्रगतिशील बनाया है।
3. उच्चतम न्यायालय ने संघीय तथा राज्यों की सरकारों के वैधानिक विवादों का निर्णय करके उनको अपने-अपने क्षेत्राधिकार में रखा है। **फाइनर** के अनुसार, "यह एक सीमेण्ट है, जिसने सम्पूर्ण संघीय ढाँचे को स्थिरता प्रदान की है।"
4. उच्चतम न्यायालय ने विधायिका तथा कार्यपालिका को एक-दूसरे के क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप करने से रोका है। संघीय शासन-व्यवस्था में उच्चतम न्यायालय का यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5. यदि उच्चतम न्यायालय पुनरीक्षण का कार्य न करता, तो संविधान कभी भी श्रेष्ठ कानून नहीं बन सकता था और संसद व राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा हजारों कानून इसके विरुद्ध बन जाते तथा संविधान कोरा कागज मात्र बनकर रह जाता। इसीलिए अपनी स्वस्थ एवं सुन्दर व्याख्याओं के द्वारा उच्चतम न्यायालय ने संविधान की सुरक्षा की है, उसे गतिशील बनाया है और संघीय सरकार तथा राज्यों की सरकारों को मनमानी करने से रोका है।

प्र.5. भारत के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

उत्तर

न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना
(Criticism of Judicial Review)

यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग का अध्ययन किया जाय, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्यतया सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्वक ही किया है, लेकिन कुछ निर्णयों में, विशेषतया 1967 में गोलकनाथ विवाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में ऐसी कुछ प्रवृत्तियाँ देखी गयी हैं, जिन्होंने उसे आलोचना का पात्र बना दिया है। इस प्रकार की आलोचना के प्रमुख आधार निम्न प्रकार हैं—

1. **अनुदारवादी शक्ति के रूप में कार्य**—इसमें सन्देह नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक व्यक्ति स्वातन्त्र्य और नागरिक अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य किया है, लेकिन यह भी तथ्य है कि सम्पत्ति सम्बन्धी प्रश्नों पर इसने एक अनुदारवादी न्यायालय और अनुदारवादी शक्ति के रूप में कार्य किया। 1950-51 में इसने जमींदारी और जागीरदारी उन्मूलन के अन्तर्गत पारित कुछ भूमि सुधार कानूनों को अवैध घोषित किया; 1953 में, **'शोलापुर स्पिनिंग एण्ड बीविंग कम्पनी'** के शासन द्वारा अधिग्रहण को अवैध ठहराया और **'कुन्हीकोमान** बनाम **केरल राज्य'** में, केरल कृषि सम्बन्धी अधिनियम को अवैध घोषित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी अनुदारवादिता का सर्वाधिक परिचय 1967 के **'गोलकनाथ विवाद'** में 6-5 के बहुमत से यह निर्णय देकर दिया कि **''संसद ऐसा कोई अधिनियम पारित नहीं कर सकती, जो मौलिक अधिकारों को छीनता या सीमित करता हो।''** इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण और प्रिवीपर्स के अन्त सम्बन्धी आदेशों को अवैध घोषित किया।

   एक जनकल्याणकारी राज्य में न्यायपालिका से यह आशा की जाती है कि वह राज्य को जनकल्याण की दिशा में आगे बढ़ाने में सहायक होगी, लेकिन भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कुछ निर्णयों के आधार पर इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक बनने के बजाय बाधक होने का ही कार्य किया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदर्शित इस अनुदारवादिता के कारण ही समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय को पुनर्गठित करने और इसके अधिकारों को सीमित करने की माँग की जाती रही है।

2. **सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने पूर्व निर्णयों में परिवर्तन**—सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के प्रयोग पर एक प्रमुख आपत्ति यह की जाती है कि सर्वोच्च न्यायालय अपने पूर्व निर्णयों में अनवरत परिवर्तन करता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप संवैधानिक कानून की समस्त व्यवस्थाओं के प्रति भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को वैधानिक दृष्टि से यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने निर्णयों पर पुनर्विचार कर उनमें परिवर्तन कर सकें और **न्यायमूर्ति हेगड़े इसे 'न्यायिक पुनर्विलोकन' का अनिवार्य अंग मानते हैं।** लेकिन 1967-71 के काल में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों को जिस प्रकार से परिवर्तित किया है, उसे उचित नहीं कहा जा सकता है।

   मोहनकुमार मंगलम ने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्ध में प्रमुख रूप से तीन उदाहरण दिये हैं—

   प्रथम, 1952 में शंकरी प्रसाद और **1965 में सज्जनसिंह** के मामले में, प्रथम में सर्वसम्मत और द्वितीय में बहुमत निर्णय से, सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात को स्वीकार किया कि संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, यदि इस सम्बन्ध में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाय, लेकिन 1967 के 'गोलकनाथ विवाद' में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि ''संसद को संविधान के भाग 3 के किसी उपबन्ध को इस तरह से संशोधित करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा, जिससे कि मौलिक अधिकार छिन जायें या सीमित हो जायें।''

   द्वितीय, 1969 के **'गुजरात राज्य** बनाम **शान्तिलाल मंगलदास'** के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान के चतुर्थ संशोधन के बाद क्षतिपूर्ति की पर्याप्तता या अपर्याप्तता पर विचार करना न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर है, लेकिन जब 1969 में ही **'बैंक राष्ट्रीयकरण अधिनियम'** को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी, तो सर्वोच्च न्यायालय ने इसे इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया कि इसमें निहित क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त अप्रासंगिक हैं।

तृतीय, 1965 के **'उस्मान अली खान** बनाम **सागरमल'** के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्मति से निर्णय दिया कि देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय और प्रिवीपर्स आदि से सम्बन्धित समस्त व्यवस्था राजनीतिक है, न कि वैधानिक और इससे सम्बन्धित दायित्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन 1971 में जब प्रिवीपर्स की समाप्ति और नरेशों की मान्यता वापस लेने से सम्बन्धित आदेशों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी तो सर्वोच्च न्यायालय ने शासन के आदेश को अवैध घोषित कर दिया।

मोहनकुमार मंगलम निष्कर्ष रूप में लिखते हैं—"सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों में अनवरत परिवर्तन ने कानून की अनिश्चित अवस्था को जन्म दिया है और इससे अधिक हानिप्रद और कुछ नहीं हो सकता कि देश का कानून ही अनिश्चित हो।"

3. **संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण**—सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा 1967-71 के काल में जिस प्रकार से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग किया गया, उससे यह नितान्त स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए भारतीय राज-व्यवस्था में वह भूमिका अदा करने की चेष्टा की जो संविधान निर्माता उसे नहीं देना चाहते थे। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन को अपनाते हुए भी उसकी सीमाएँ निर्धारित की गयी हैं और भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन उस विस्तार तक नहीं है, जिस विस्तार तक यह व्यवस्था अमरीका में है। भारत में न्यायिक पूनर्विलोकन की सीमाएँ स्पष्ट करते हुए **पं० नेहरू** ने संविधान सभा में कहा था—"इन सीमाओं के भीतर कोई भी न्यायाधीश या सर्वोच्च न्यायालय अपने आपको विधानमण्डल का तृतीय सदन नहीं बना सकता है। कोई भी सर्वोच्च न्यायालय या न्यायपालिका सम्पूर्ण जनता की प्रतिनिधि संसद की इच्छाओं का विरोध नहीं कर सकती। यदि हम यहाँ-वहाँ कोई त्रुटि करते हैं, तो वह हमें हमारी त्रुटि बता सकती है, लेकिन अन्तिम रूप में जहाँ तक समुदाय के भविष्य का सम्बन्ध है, कोई न्यायपालिका इसमें बाधक नहीं हो सकती है। "

न्यायालय भी सामान्यतया अपनी इन सीमाओं को स्वीकार करता है। स्वयं न्यायमूर्ति **एस०आर० दास** के शब्दों में, "न्यायालय संविधान का विश्लेषण एवं व्याख्या कर सकता है तथा उसके वास्तविक अर्थ का पता लगा सकता है, परन्तु एक बार इस कार्य को सम्पन्न करने के बाद वह उसकी बुद्धिमत्ता या नीति को चुनौती नहीं दे सकता। संविधान सर्वोच्च है। न्यायालय के द्वारा संविधान को उसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, जैसा कि वह है, चाहे वह उसके आदर्श संविधान के पूर्वाग्रहों से मेल न खाता हो।"

लेकिन 1967 के गोलकनाथ विवाद और तदुपरान्त दिये गये कुछ निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर संविधान द्वारा लगायी गयी सीमाओं का अतिक्रमण किया है।

4. **सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता**—न्यायिक पुनर्विलोकन के कारण सदैव ही इस बात का भय रहता है कि संसद द्वारा निर्मित कानून और शासन द्वारा अपनायी गयी नीति न्यायपालिका द्वारा सदैव अवैध घोषित की जा सकती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता का वातावरण बना रहता है जो कि निश्चित रूप में समस्त व्यवस्था के लिए बहुत अधिक हानिकारक है। न्यायिक पुनर्विलोकन के आलोचकों का कथन है कि न्यायपालिका के द्वारा अपने आपको कानूनी प्रश्नों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। भूतपूर्व विधिमन्त्री **गोखले** के अनुसार, "न्यायालय कानूनी मामलों पर ही अपन निर्णय दे सकते हैं, राजनीतिक तथा आर्थिक मामलों पर उन्हें निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं है।"

5. **संसद और न्यायपालिका के बीच संघर्ष की स्थिति को जन्म**—न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के कारण जब संसद द्वारा निर्मित कानूनों को न्यायपालिका के द्वारा अवैधानिक घोषित कर दिया जाता है तो संसद और न्यायपालिका के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा होती है और जब राज-व्यवस्था के दो प्रमुख अंगों के बीच ऐसी स्थिति हो, तो शासन ठीक प्रकार से नहीं चल सकता।

प्र.6. जनहित याचिका को समझाइए तथा इसके महत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उत्तर

जनहित याचिकाएँ
(Public Interest Litigation)

संविधान के द्वारा भारत के नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि यदि नागरिकों को राज्य के कानूनों द्वारा कोई हानि पहुँचती है तो वे उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय में विभिन्न प्रकार की याचिकाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। जनहित याचिका का तात्पर्य

यह है कि लोक सन्धि (हित) के किसी भी मामले में कोई भी व्यक्ति या समूह जिसने व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से सरकार के हाथों किसी भी प्रकार से हानि उठाई हो, **अनुच्छेद 21 तथा 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय तथा अनुच्छेद 226 के अनुसार उच्च न्यायालय की शरण ले सकता है।**

जनहित याचिका तथा न्यायिक सक्रियता एक-दूसरे के साथ गहन रूप से सम्बद्ध हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गरीब, अपंग अथवा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के मामले में आम जनता का कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष 'वाद' प्रस्तुत कर सकता है। न्यायाधीश **कृष्णा अय्यर** के अनुसार 'वाद कारण' तथा पीड़ित व्यक्ति की संकुचित धारणा का स्थान अब 'वर्ग कार्यवाही तथा लोकहित में कार्यवाही' ने ले लिया है। जनहित याचिका की विशेष बात यह है कि न्यायालय अपने समस्त तकनीकी तथा कार्यविधि सम्बन्धी नियमों की परवाह किए बिना एक सामान्य पत्र के आधार पर भी कार्यवाही कर सकेगा। जनहित याचिकाओं के द्वारा सामाजिक न्याय की प्राप्ति सम्भव हो सकी है। समाज के ऐसे अनेक पिछड़े तथा शोषित वर्गों को जनहित याचिकाओं के माध्यम से ही न्याय प्राप्त कराना सम्भव हो सका है क्योंकि ये आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग थे तथा इसी कारण न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में असमर्थ थे।

जनहित याचिकाओं (अभियोग) का प्रारम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने किया था। भारत में इसका प्रारम्भ भागलपुर जेल में विचाराधीन बन्दी रखे गए कैदियों से हुआ था। बिहार की इस जेल तथा अन्य जेलों में सैकड़ों विचाराधीन कैदी किसी अदालत की कार्यवाही के बिना ही वर्षों से जेलों में अमानवीय जीवन व्यतीत कर रहे थे। राज्य तथा केन्द्र सरकार के द्वारा पिछले कुछ वर्षों में अनेक ऐसे कार्य किए गए जिनसे जनता के सामान्य हितों को काफी हानि का सामना करना पड़ा। इस स्थिति से निपटने के लिए समाज में बुद्धिजीवियों, वकीलों तथा अनेक प्रगतिशील स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा उच्चतम न्यायालय में जनहित याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं, जिनके आधार पर न्यायालय ने नागरिकों को अनेक गम्भीर मामलों में राहत पहुँचाने का कार्य किया।

जनहित याचिकाओं का महत्त्व
(Importance of Public Interest Litigations)

जनहित याचिकाओं के महत्त्व को देखते हुए जनता में इसके प्रति काफी रुचि बढ़ी है। अब न्यायालयों में जनहित यचिकाओं की बाढ़-सी आ गई है। जनहित याचिकाओं का महत्त्व निम्नवत् है—

1. **सामान्य जनता की आसान पहुँच**—जनहित याचिकाओं के द्वारा आम नागरिक भी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से न्याय के लिए न्यायालय के दरवाजे खटखटा सकता है। जनहित याचिकाओं के लिए किन्हीं विशेष कानूनी प्रावधानों के चक्कर में उलझना नहीं पड़ता है। व्यक्ति सीधे उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय में अपना वाद प्रस्तुत कर सकता है।
2. **शीघ्र निर्णय**—जनहित याचिकाओं पर न्यायालय तुरन्त न्यायिक प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देता है तथा उन पर शीघ्र ही सुनवाई होती है। उच्चतम न्यायालय ने **अनुच्छेद 21** तथा **32** की राज्य द्वारा अवज्ञा के मामलों को बहुत ही गम्भीरता से लिया है। जनहित याचिकाओं पर तुरन्त सुनवाई के कारण बहुत जल्दी निर्णय लिया जाता है।
3. **प्रभावी राहत**—अधिकांश जनहित याचिकाओं में यह देखने को मिलता है कि इसमें पीडित पक्ष को बहुत अधिक राहत प्राप्त हो जाती है तथा इसमें प्रतिवादी को सजा देने का भी प्रावधान है।
4. **कम व्यय**—जनहित याचिकाओं में याचिका प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का व्यय बहुत कम होता है क्योंकि इसमें सामान्य न्यायिक प्रक्रिया से गुजरना नहीं पड़ता है। यदि न्यायालय याचिका को निर्णय के लिए स्वीकार कर लेता है तो उस पर तुरन्त कार्यवाही के कारण शीघ्र निर्णय हो जाता है। इससे पीड़ित पक्ष को कम खर्च में शीघ्र न्याय प्राप्त हो जाता है।

   जनहित याचिकाओं के कारण सस्ता तथा सुलभ न्याय जनता को प्राप्त होता है। किसी विद्वान ने उचित ही कहा था कि यदि न्याय प्रदान करने में देरी की जाती है तो न्याय प्रदान करने की मनाही समझी जाती है (if justice delayed, justice denied)। जनहित याचिकाओं के द्वारा न्याय शीघ्र प्राप्त होने के कारण जनता में न्याय प्राप्त न होने की शंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं तथा न्यायालय के प्रति सम्मान, श्रद्धा तथा विश्वास की भावना जाग्रत हो जाती है। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि न्यायिक प्रक्रिया में जनहित याचिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्र.7. जनहित याचिकाओं की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए इसकी व्यावहारिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

जनहित याचिकाओं की आलोचना
(Criticism of Public Interest Litigations)

जनहित याचिका की अवधारणा की आलोचना भी हुई है। आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

1. **वादों की संख्या में वृद्धि**—सामान्य पत्र के आधार पर यदि मूल अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित अभियोग दायर किए गए, तो विचाराधीन वादों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाएगी तथा इसे महत्त्वपूर्ण मामलों की सुनवाई में अनावश्यक विलम्ब होगा।
2. **सरकार के अंगों के बीच गतिरोध की स्थिति**—इससे सरकार के तीनों अंगों में आवश्यक विवाद तथा तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। जनहित याचिकाओं के द्वारा 'न्यायिक सक्रियता' के क्षेत्र में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है। न्यायपालिका ने जनहित याचिकाओं पर त्वरित कार्यवाही करते हुए सरकार को अनेक आदेश तथा निर्देश दिए हैं। अनेक प्रशासनिक अधिकारियों को उनकी लापरवाही के लिए दण्डित भी किया है। इसको सरकार अपने आन्तरिक मामलों में न्यायालय का हस्तक्षेप मान रही है। इस स्थिति ने कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न कर दी है।
3. **व्यावहारिक कठिनाइयाँ**—जनहित याचिकाओं के सम्बन्ध में न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय वस्तुतः लागू होंगे, व्यवहार में इस बात का कोई ठोस आधार नहीं है।

जनहित याचिकाओं में व्यावहारिक स्थिति
(Practical Status of Public Interest Litigations)

जनहित याचिकाओं की व्यावहारिक स्थिति निम्न प्रकार है—

1. **महिला संरक्षण गृह, आगरा प्रकरण**—महिला संरक्षण गृह, आगरा में लगभग 70-80 लड़कियाँ रहती थीं। इन लड़कियों के बारे में 'इण्डियन एक्सप्रेस' समाचारपत्र में यह खबर छपी कि उनके साथ मानवीय स्तर का व्यवहार नहीं हो रहा है। इन लड़कियों के रहने और कार्य करने के लिए मानवोचित परिस्थितियाँ प्रदान नहीं की गई हैं। यहाँ तक कि उनके लिए कोई स्नानघर नहीं है और शौचालय भी दरवाजे रहित हैं। इन लड़कियों के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे अपने अधिकारों के लिए न्यायालय में जा सकें क्योंकि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से वे अत्यन्त कमजोर थीं। ऐसी स्थिति में उच्चतम न्यायालय ने कानून के दो प्रोफेसरों को इन लड़कियों की ओर से पैरवी की स्वीकृति प्रदान की।
2. **बिहार (भागलपुर) जेल के विचाराधीन कैदियों का मामला**—इस मामले की शुरुआत पुलिस आयोग के सदस्य **के०एफ० रुस्तमजी** के द्वारा इण्डियन एक्सप्रेस में लिखे गए एक लेख से हुई। इस लेख में उन्होंने लिखा कि बिहार की जेलों में सैकड़ों कैदी सड़ रहे हैं, उनके मामले वर्षों से विचाराधीन पड़े हैं। लेख में ऐसे सात कैदियों के नाम दिए गए जिन्हें जेल में पाँच साल से भी अधिक समय हो गया था और उन पर अभी तक मुकदमा प्रारम्भ नहीं हुआ। इस खबर के आधार पर **एडवोकेट श्रीमती हिगोंरानी** ने संविधान के **अनुच्छेद 32** के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर की। इस याचिका के आधार पर भारत का उच्चतम न्यायालय सक्रिय हो गया और न्यायिक सक्रियता के आधार पर कार्यवाही प्रारम्भ की। न्यायालय ने बिहार राज्य को नोटिस दिया और उससे पूछा कि वह उन कैदियों की सूची मय हलफनामे के उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत करे जिनके मामले वर्षों से विचाराधीन हैं तथा जिनको जेलों में 18 महीनों से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है।
3. **बम्बई के पटरीवासियों का मामला**—यह मामला भी सार्वजनिक हित संरक्षण से सम्बन्धित है। मुख्य न्यायाधीश के सामने एक पत्रकार **ओल्गा तेलिस** ने बम्बई के पटरीवासियों का मामला उठाया और न्यायालय ने अन्तरिम आदेश जारी करके पटरीवासियों की सुरक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित की।
4. **सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन प्रकरण**—सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन के प्रकरण में एक आजीवन कारावास का दण्ड भुगत रहे कैदी के साथ जेल वार्डन द्वारा क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध एक दूसरे कैदी ने पत्र न्यायालय को इस अमानवीय घटना की सूचना प्रेषित की। न्यायालय ने इस पत्र को बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट मानकर जेल-अधिकारियों के विरुद्ध निर्देश जारी किया कि उक्त कैदी के साथ अमानवीय व्यवहार न किया जाए और अपराध व्यक्ति को दण्ड देने की उचित कार्यवाही की जाए।

5. **पुलिस ड्राइवर प्रकरण**—उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की बैंच ने दिल्ली पुलिस के एक ड्राइवर सिपाही की उस रिट याचिका को स्वीकार कर लिया जिसमें अन्य विभागों के ड्राइवरों की तुलना में उसको नीची वेतन शृंखला देने को चुनौती दी गई थी। रिट याचिका स्वीकार करते हुए बैंच ने स्पष्ट किया कि **अनुच्छेद 14** में राज्यों को स्पष्ट निर्देश है कि 'कानून के समक्ष समानता' के सिद्धान्त से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है।
6. **तिलोनिया (अजमेर जिला) के श्रमिकों का प्रकरण**—तिलोनिया के श्रमिकों का प्रकरण **बंकर राय** ने, जोकि वहाँ एक शोध संस्थान चलाते हैं, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि वहाँ जो अनुसूचित जाति की महिलाएँ कार्य करती हैं उन्हें कम मजदूरी दी जाती है। यह मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से भी कम है और उसमें से भी कुछ मजदूरी की पेनाल्टी क्लाज के अन्तर्गत कटौती कर दी जाती है। न्यायालय का अभिमत है कि न्यूनतम मजदूरी दिए बिना कार्य लेना **अनुच्छेद 23** का उल्लंघन है और यह एक प्रकार से बेगार की स्थिति को सिद्ध करता है। यह मामला अभी न्यायालय के पास विचाराधीन है और यह एक सार्वजनिक हित संरक्षण याचिका है।
7. **बँधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ**—इस मामले में एक स्वयंसेवी संस्था ने पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय को सूचित किया कि हरियाणा राज्य के फरीदकोट जिले की पत्थर खानों में कार्यरत श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। उनमें से अनेक बँधुआ श्रमिक भी हैं। न्यायालय ने पत्र को रिट मानकर दो अधिवक्ताओं का एक आयोग नियुक्त किया जिसने जाँच करके न्यायालय को रिपोर्ट दी कि संस्था द्वारा लगाया गया आरोप सत्य है।
8. **रूदल शाह बनाम बिहार राज्य**—इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसे **अनुच्छेद 32** के अधीन राज्य के कार्यों द्वारा पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकार प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है। प्रस्तुत मामले में रूदल शाह को किसी अपराध में अभियोजित किया गया था किन्तु सेशन न्यायालय द्वारा उसे 30 जून, 1968 को विमुक्त कर दिया गया था। किन्तु उसके बावजूद राज्य अधिकारियों के अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण के कारण उसे 14 वर्ष तक हजारीबाग जेल में यातनाएँ सहन करनी पड़ी और 16 जून, 1982 को उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने पर जेल से रिहा किया गया।

प्र.8. न्यायिक सक्रियता की आलोचना की व्याख्या करते हुए इसके महत्त्व एवं सीमाओं पर भी प्रकाश डालिए।

उत्तर

न्यायिक सक्रियता की आलोचना
(Criticism of Judicial Activism)

जब न्यायिक सक्रियता के आधार पर न्यायपालिका ने अपने लिए समस्त राज व्यवस्था में बहुत अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त कर ली, तब न केवल न्यायिक सक्रियता की प्रवृत्ति, वरन् स्वयं न्यायपालिका भी तीखी आलोचना का विषय बनी। कांग्रेस के तत्कालीन महासचिव **बी० पी० मौर्य ने** दिसम्बर '96 में कहा—"सर्वोच्च न्यायालय संविधान द्वारा निर्धारित भूमिका का उल्लंघन कर कानून निर्माता बन रहा है। वह कार्यपालिका और नौकरशाही को विविध प्रकार के आदेश निर्देश देते हुए **'व्यवस्थापिका के तीसरे सदन'** की भूमिका निभाने की चेष्टा कर रहा है। **आलोचकों के अनुसार,** "न्यायाधीशों की प्रचार पाने की भूख ने उन्हें न्यायिक सक्रियता के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है।"

न केवल **बी० पी० मौर्य** की श्रेणी के राजनीतिज्ञों वरन् कुछ बहुत प्रमुख न्यायविदों और विधिवेत्ताओं ने भी न्यायिक सक्रियता की आलोचना की है। प्रसिद्ध विधिवेत्ता **ननी पालखीवाला** न्यायिक सक्रियता पर कड़ी आपत्ति प्रकट करते हुए इसे **'एक तरह की न्यायिक तानाशाही'** कहते हैं और न्यायमूर्ति **एच० आर० खन्ना** का कहना है कि, 'न्यायालयों का मुख्य कार्य विवादों का अविलम्ब निबटारा करना है। न्यायालयों ने अपने इस कार्य पर ध्यान न देकर न्यायिक सक्रियता के रूप में जिस स्थिति को अपनाया है, वह स्वेच्छाचारिता है, न्यायालयों की यह स्वेच्छाचारिता न केवल अनौचित्यपूर्ण वरन् तर्क विरुद्ध भी है।' इस बात को तो भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश **ए० एम० अहमदी** भी स्वीकार करते हैं कि 'सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में अतिशयता को अपना लिया है।' दो अन्य पूर्व मुख्य न्यायाधीश **जे० एस० वर्मा** और **वी० एन० खरे** भी चेतावनी देते हैं कि न्यायपालिका स्वयं को उस जगह से ऊपर नहीं रख सकती, जहाँ उसे संविधान ने रखा है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत 'कोई गैर निर्वाचित संस्था' (न्यायपालिका) नीति निर्धारक निकाय का रूप नहीं ले सकती है।

आलोचकों का कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के कुछ निर्णयों मात्र से व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन हो पाना सम्भव नहीं है। 1982 का 'बँधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ' का मामला इस बात का मोटा उदाहरण है। 'बँधुआ मुक्ति मोर्चा के स्वामी अग्निवेश ने अपनी याचिका के द्वारा फरीदाबाद की पत्थर खदानों में काम कर रहे बाल मजदूरों के मूल अधिकारों का

प्रश्न उठाया था। वे कहते हैं—"सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस प्रसंग में जारी 21 निर्देशों में से किसी पर भी अब तक अमल नहीं हुआ है।" इस स्थिति का एक कारण यह रहा है कि सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र की यथार्थ परिस्थितियों को ध्यान में न रखते हुए निर्णय दे दिये गये। प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता, बँधुआ मजदूरी का अन्त और बाल श्रम की समाप्ति आदि विषय ऐसे नहीं हैं, जिनके सम्बन्ध में मात्र न्यायिक निर्णय से लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इन लक्ष्यों की प्राप्ति एक ओर तो जन संघर्ष तथा दूसरी ओर राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न अंगों के विवेकपूर्ण सामंजस्य तथा सहयोग से ही सम्भव है। अकेली न्यायपालिका इस प्रसंग में कुछ नहीं कर सकती है।

आलोचकों के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय समस्त प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के लिए प्रयत्नशील है, लेकिन निचली अदालतों में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार, जिससे हम सभी परिचित हैं, के प्रति वे पूर्णतया उदासीन हैं। उच्च स्तर की न्यायपालिका का, 'न्यायिक सम्मान के प्रति अत्यधिक भावुकतापूर्ण दृष्टिकोण' उचित नहीं कहा जा सकता है। न्यायालय जिस प्रकार से न्यायालय अवमान की प्रक्रिया को अपनाते हैं, उसके सम्बन्ध में **न्यायमूर्ति खन्ना** लिखते हैं—"उचित रूप में की गई आलोचना स्वीकार की ही जानी चाहिए। न्यायालय-अवमान के अन्तर्गत दण्डात्मक कार्यवाही सकारात्मक आलोचना का उत्तर नहीं है। कुछ सर्वाधिक योग्य न्यायाधीशों ने अपने निर्णयों में इस बात पर बल दिया है कि न्यायालय अवमान की कार्यवाही के प्रसंग में अत्यधिक संयम बरता जाना चाहिए।" नागरिकों और प्रेस को न्यायिक प्रक्रिया की सत्यनिष्ठता को परखने का अधिकार होना ही चाहिए। यदि न्यायपालिका सरकार के प्रत्येक अंग को जवाबदेह बनाना चाहती है, लेकिन स्वयं किसी के प्रति जवाबदेह नहीं होना चाहती तो इसे **'न्यायिक निरंकुशता'** (Judicial absolution) ही कहना होगा।

न्यायिक सक्रियतावाद : महत्त्व और सीमाएँ
(Judicial Activism : Importance and Limitations)

न्यायिक सक्रियतावाद के प्रति की गईं इन आलोचनाओं में 'सत्य के अंश' होने के बावजूद यह तथ्य है कि न्यायिक सक्रियतावाद के सम्बन्ध में आज की स्थिति के लिए स्वयं न्यायपालिका उत्तरदायी नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय ने परिस्थितियों से प्रेरित और बाध्य होकर ही न्यायिक सक्रियता की स्थिति को अपनाया था और अपनाए हुए है। यदि केन्द्रीय और राज्य स्तर की विधायी और कार्यपालिका संस्थाएँ अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनी रहतीं। यदि इन संस्थाओं ने संविधान के आदर्शों के प्रति आस्था और सार्वजनिक हित के प्रति संवेदनशीलता को अपनाया होता तो न्यायिक सक्रियता की कोई आवश्यकता नहीं थी। तथ्य यह है कि विधायी संस्थाएँ मात्र अव्यवस्था और शोर-शराबे का प्रतीक बनकर रह गईं तथा कार्यपालिका ने कुछ मामलों में अकर्मण्यता और अन्य कुछ मामलों में मनमाने आचरण की स्थिति को अपना लिया। इसके अतिरिक्त इस सदी के अन्तिम दशक में तो भ्रष्ट आचरण के कुछ ऐसे काण्ड और घोटाले प्रकाश में आये, जिनमें करोड़ों-अरबों रुपयों की धनराशि निहित थी और जिनमें सन्देह की सुईयाँ कार्यपालिका के उच्चतम स्तरों तक जाती थीं। राजनीति में अपराधी तत्वों की बड़ी संख्या में मौजूदगी भी नितान्त स्पष्ट हो चुकी थी। ये ऐसी स्थितियाँ थीं, जिन्होंने सामान्य जनता के लोकतन्त्र, संविधान और समस्त राजव्यवस्था के प्रति विश्वास को आघात पहुँचाया। ऐसी स्थिति में जब न्यायिक सक्रियता की स्थिति देखी गई, तो राज व्यवस्था की कम-से-कम एक संस्था न्यायपालिका के प्रति जनता का विश्वास बना रहा। जनता ने सोचा कि अभी भी आशा की किरण शेष है और इस बात ने सामान्य जन के मन-मस्तिष्क में राज-व्यवस्था के प्रति विश्वास को कुछ सीमा तक बनाये रखने में योगदान किया।

❑

UNIT-VIII

संघ-राज्य सम्बन्ध एवं निर्वाचन आयोग

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संविधान के दो संघात्मक लक्षण बताइए।

उत्तर 1. लिखित संविधान तथा 2. स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका।

प्र.2. भारतीय संघ में एकात्मकता के दो लक्षण बताइए।

उत्तर 1. इकहरी नागरिकता तथा 2. निर्वाचन आयोग।

प्र.3. भारतीय संविधान संघात्मक है या एकात्मक?

उत्तर भारतीय संविधान में संघात्मक व एकात्मक दोनों गुणों का समावेश है, इसलिए इसको अर्ध-संघात्मक स्वरूप का माना गया है।

प्र.4. "भारत में केन्द्र अधिक शक्तिशाली दिखाई देता है, परन्तु वास्तव में राज्यों की शक्तियाँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं"—यह कथन किसका है?

उत्तर पॉल एपलबी का।

प्र.5. संघ सूची में कितने विषय हैं?

उत्तर संघ सूची में 97 विषय हैं।

प्र.6. समवर्ती सूची के दो विषयों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. फौजदारी विधि एवं प्रक्रिया और 2. शिक्षा।

प्र.7. कोई ऐसी एक परिस्थिति बताइए जिसमें संसद, राज्यसूची के विषयों पर कानून बना सकती है।

उत्तर यदि राज्यसभा घोषित कर दे कि राष्ट्रहित में यह आवश्यक है कि संसद की राज्यसूची के मामले में कानून बनाना चाहिए, तब संसद इस मसले पर कानून बनाने के लिए अधिकृत हो जाएगी।

प्र.8. संघ सूची में सम्मिलित किन्हीं दो विषयों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. रक्षा तथा 2. वैदेशिक मामले।

प्र.9. समवर्ती सूची के विषयों पर किसे कानून बनाने का अधिकार है?

उत्तर समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों दोनों को ही कानून बनाने का अधिकार है।

प्र.10. केन्द्र और राज्य के बीच धन के बँटवारे के सम्बन्ध में कौन सिफारिशें करता है?

उत्तर केन्द्र और राज्य के बीच धन के बँटवारे के सम्बन्ध में भारत का संविधान सिफारिशें करता है।

प्र.11. भारतीय संविधान ने केन्द्र और राज्यों में कितने प्रकार के सम्बन्धों की व्यवस्था की है?

उत्तर भारतीय संविधान ने केन्द्र तथा राज्यों में तीन प्रकार के सम्बन्धों की व्यवस्था की है—
1. विधायी सम्बन्ध, 2. प्रशासनिक सम्बन्ध तथा 3. वित्तीय सम्बन्ध।

प्र.12. संघ के अधिकार में कौन-से राजस्व कर आते हैं?

उत्तर 1. निगम कर,
2. सीमा शुल्क,

TOUCH 'n PASS

3. व्यक्तियों तथा कर्मचारियों की सम्पत्तियों के पूँजी मूल्य पर कर,
4. आय कर पर अधिभार आदि
5. संघ-सूची के विषयों से संबंधित फीस (संघ-सूची)

प्र.13. राज्यों के अधिकार में कौन-से राजस्व कर आते हैं?

उत्तर राज्यों के अधिकार में कर राजस्व—

1. भू-राजस्व
2. विक्रय कर
3. पथ-कर
4. स्थानीय क्षेत्रों में माल के प्रवेश पर कर
5. संविदा शुल्क, उत्तराधिकार शुल्क और कृषि भूमि पर आय-कर
6. भूमि और भवनों पर कर, खनिज अधिकारों पर कर
7. अंतर्देशीय जल मार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर कर
8. संघ-सूची में सम्मिलित दस्तावेजों के अतिरिक्त अन्य दस्तावेजों पर स्टाम्प शुल्क
9. जीव-जंतु एवं नौकाओं पर कर, वाहनों पर कर, विज्ञापनों पर कर, विद्युत के उपभोग पर कर, विलास वस्तुओं और मनोरंजन पर कर आदि।

प्र.14. क्षेत्रीय परिषद के उद्देश्य बताइए।

उत्तर क्षेत्रीय परिषद के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

1. राष्ट्रीय अखण्डता बनाए रखना।
2. पूर्णरूप से प्रादेशिक संचेतना, क्षेत्रीयता, भाषिकता और विशिष्टीकृत प्रवृत्ति को रोकना।
3. केन्द्र एवं राज्यों के मध्य सहयोग को मजबूत करना तथा विचारों एवं अनुभवों के आदान-प्रदान को बढ़ावा देना।
4. विकासपरक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के तीव्र एवं सफल कार्यकरण हेतु राज्यों के मध्य आपसी सहयोग का वातावरण तैयार करना।

प्र.15. असम के स्वायत्त क्षेत्र लिखिए।

उत्तर 1. उत्तरी-कचार पहाड़ी जिला (दीमा होलांग)
2. बोडोलैंड क्षेत्रीय जिला
3. काबरी-ऐंगलोंग जिला

प्र.16. निर्वाचन आयोग के दो कार्य लिखिए।

उत्तर निर्वाचन आयोग के दो कार्य निम्नलिखित हैं—

1. चुनाव आयोग मतदान के लिए मतदान केन्द्र स्थापित करता है।
2. चुनाव आयोग विभिन्न दलों को चुनाव-चिह्न प्रदान करता है और चुनाव-चिह्नों से सम्बन्धित झगड़ों को निपटाता है।

प्र.17. निर्वाचन आयोग निष्पक्ष और स्वतन्त्र निर्वाचन हेतु क्या कार्यवाही करता है?

उत्तर चुनाव आयोग स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए चुनाव व्यवहार संहिता निर्धारित करता है। चुनाव व्यवहार संहिता का राजनीतिक दलों, स्वतन्त्र उम्मीदवारों और सरकार द्वारा पालन किए जाने के लिए चुनाव आयोग आवश्यक निर्देश जारी करता है।

प्र.18. प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया का परिचय दीजिए।

उत्तर 1. **प्रत्यक्ष निर्वाचन**—इसमें मतदाता प्रत्यक्ष रूप से मतदान में भाग लेकर विधानमण्डल के प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं। भारत में लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन से होता है।

2. **अप्रत्यक्ष निर्वाचन**—अप्रत्यक्ष निर्वाचन के अन्तर्गत मतदाता विधानमण्डल के सदस्यों का प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन नहीं करते हैं और पुनः ये चुने हुए प्रतिनिधि विधानमण्डल के सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। हमारे देश (भारत) में राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष निर्वाचन विधि से होता है।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय संघात्मक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **लिखित संविधान**—भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है, जिसका निर्माण एक संविधान सभा ने किया था।
2. **कठोर संविधान**—भारतीय संविधान एक कठोर संविधान है। इसमें साधारण विषयों को छोड़कर महत्त्वपूर्ण विषयों पर संशोधन करने के लिए संघीय संसद के 2/3 बहुमत के साथ-साथ कम-से-कम आधे राज्यों के सहयोग की भी आवश्यकता होती है।
3. **शक्तियों का विभाजन**—संघ सरकार की मुख्य विशेषता केंद्र तथा राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन है। स्थानीय महत्त्व वाले विषय राज्य सरकारों को तथा राष्ट्रीय महत्त्व वाले विषय, केंद्र को प्रदान किए गए हैं। अत: भारतीय संविधान में तीन सूचियाँ वर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं-संघ-सूची, राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची।
4. **संविधान की सर्वोच्चता**—देश का सर्वोच्च कानून भारतीय संविधान को माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए संविधान के अनुसार निर्मित कानूनों का पालन करना अनिवार्य है। कोई भी संविधान के विरुद्ध चाहे वह सरकारी अधिकारी अथवा देश का शासक हो, कोई कार्य नहीं कर सकता है। संविधान के किसी अनुच्छेद के विरुद्ध संसद या राज्य विधानमंडल किसी भी कानून का निर्माण नहीं कर सकता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्समीक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके अनुसार न्यायालय, संसद के ऐसे कानून को अथवा कार्यपालिका के ऐसे आदेश को संवैधानिक नही मान सकता है, जो संविधान में लिखित किसी प्रावधान का उल्लंघन करते हों।
5. **स्वतंत्र न्यायपालिका**—संघात्मक प्रणाली में संविधान की पुनर्व्याख्या करने की अंतिम शक्ति न्यायालयों को प्राप्त है, जिससे संवैधानिक प्रावधानों का संघ तथा राज्य सरकारों द्वारा उल्लंघन न हो सके। भारत में सर्वोच्च न्यायालय कों शक्तियों के वितरण तथा संवैधानिक प्रावधानों को संरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है।

प्र.2. भारतीय संघात्मक व्यवस्था में निहित एकात्मक लक्षणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान द्वारा स्थापित संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक व्यवस्था के निम्नलिखित तत्त्व पाए जाते हैं—

1. भारत में संघ तथा राज्यों का एक ही संविधान है। अमेरिका की तरह इकाई राज्यों को अपने-अपने संविधान बनाने का अधिकार नहीं है तथा न ही राज्यों को संविधान में संशोधन करने में पहल करने का अधिकार है।
2. शक्तियों का विभाजन केन्द्र के पक्ष में किया गया है अर्थात् केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। संघ सूची में 97 विषय, राज्य सूची में 66 विषय तथा समवर्ती सूची में 47 विषय रखे गए हैं।
3. संघात्मक शासन व्यवस्था होते हुए भी व्यक्तियों को इकहरी नागरिकता प्रदान की गई है।
4. भारतीय संघ में सम्पूर्ण भारत के लिए एकीकृत न्यायालयों की व्यवस्था की गई है।
5. संसद के उच्च सदन (राज्यसभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया है।
6. संघ की कार्यपालिका के अध्यक्ष राष्ट्रपति के द्वारा राज्य के प्रमुखों (राज्यपालों) की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।
7. राज्य की सीमाओं के पुनर्निर्धारण का अधिकार संसद को दिया गया है।
8. राज्य आर्थिक दृष्टिकोण से केन्द्र पर निर्भर करते हैं।
9. अन्तर्राज्य परिषदों की व्यवस्था की गई है।
10. संकटकाल में शासन व्यवस्था पूर्ण रूप से एकात्मक हो जाती है।
11. इकाई राज्यों को केन्द्र से पृथक् होने का अधिकार नहीं है।
12. भारत में कुछ प्रशासनिक दृष्टियों से भी सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही व्यवस्था की गई है।
13. भारत में संविधानेतर संस्थाओं का विकास भी हुआ है जिनमें 'आयोग' (Planning Commission) [इसे खत्म करके 1 जनवरी, 2015 को इसके स्थान पर 'नीति आयोग' का गठन किया गया है।] और 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' (National Development Council) उल्लेखनीय हैं।

प्र.3. केन्द्र तथा राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों पर चर्चा कीजिए।

उत्तर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग–11 के अध्याय 1 में अनुच्छेद 245-254 में की गई है।

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है जिन्हें संघ सूची (Union list), राज्य सूची (State list) व समवर्ती सूची (Concurrent list) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

संघीय सूची

इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति को अपनाना आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों में विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय हैं जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं—रक्षा, वैदेशिक मामले, युद्ध व सन्धि, देशीकरण व नागरिकता, विदेशियों का आना–जाना, रेलें, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाकतार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खानें व खनिज, आदि।

राज्य सूची

इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को प्राप्त है। इस सूची में 66 विषय हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं : पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और सड़कें, आदि।

समवर्ती सूची

औपचारिक रूप में और कानूनी दृष्टि से इन तीनों सूचियों के विषयों की संख्या वही बनी हुई है, जो मूल संविधान में थी। इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं, जिनका महत्व संघीय और क्षेत्रीय, दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्यों दोनों को ही कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के किसी विषय पर संघ तथा राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हों, तो सामान्यत: संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख विषय हैं—फौजदारी, विधि तथा प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह और विवाह–विच्छेद, दत्तक और उत्तराधिकार, कारखानें, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, पुनर्वास और पुरातत्व, शिक्षा और वन आदि।

प्र.4. अनुसूचित जनजाति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रत्येक जनजाति अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में नहीं आती है। भारतीय संविधान के लागू होने के पश्चात् 26 जनवरी, 1950 ई० को जनजातियों एवं जनजातीय समुदायों को 'अनुसूचित जनजातियों' को विशिष्ट दर्जा देने की आवश्यकता पड़ी। 'पिछड़ी जनजातियों' का सन्दर्भ भारत सरकार के अधिनियम 1935 ई० में भी मिलता है। भारत सरकार के तेरहवीं अनुसूची के अन्तर्गत मध्य प्रान्त, असम, उड़ीसा, बिहार, बम्बई तथा मद्रास की कुछ जनजातियों को 'पिछड़ी जनजातियों की श्रेणी में रखा गया था। अनुसूचित जनजाति से अभिप्राय, 'संविधान के प्रावधानों के अनुकूल सूचीबद्ध की गई जनजाति' से है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के खण्ड 1 में वर्णित है कि, ''अनुसूचित जनजातियाँ वे जनजातियाँ अथवा जनजातीय समुदाय या उनका कोई हिस्सा या इन जनजातियों का कोई समूह है जिन्हें राष्ट्रपति की सार्वजनिक सूचना द्वारा अनुच्छेद 342 (i) के अन्तर्गत रखा गया है।'' भारत सरकार द्वारा तथा प्रदेश सरकारों द्वारा समय–समय पर विभिन्न जनजातियों को अनुसूचित श्रेणी के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। इस सूची में अधिकांश जनजातियों को सम्मिलित करने के साथ ही उनके विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं।

प्र.5. अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान की आवश्यकता क्यों होती है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर आदिवासी समुदाय के वे लोग जिन्हें ''अनुसूचित जनजाति'' वर्ग में रखा गया है, अधिकाशत: देश के विभिन्न जंगल एवं पहाड़ी इलाकों में रहते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एवं संविधान लागू होने से पहले ब्रिटिश सरकार की अलगाववादी नीति आदिवासी लोगों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करने के कारण ये लोग पुन: जंगल एवं पहाड़ों की तरफ रच–बस गये। इसी अलगाव के कारण ही आदिवासी लोग गरीब, अशिक्षित, और पिछडे बने रह गये। वे उन्हीं प्राचीनकाल की पुरातनवादी कानून और रिवाज को मानते हैं। जिसमें से कुछ लोग खेती पर निर्भर हैं जबकि बाकी लोग अभी भी शिकार करना, भोजन इकट्ठा कर अपना गुजारा करने पर निर्भर हैं। इस प्रकार इनके जीवनयापन का मुख्य स्रोत 'भूमि' और 'जंगल' हैं। वे अपनी जमीन और जंगल से बेहद प्रेम करते हैं और यह उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक समृद्धि और सम्मान प्रदान करता है। इन्ही आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को समझते

हुए संविधान निर्माताओं ने "अनुसूचित जनजाति" के लिए संविधान में कुछ बदलाव करने पर विचार किया, जिसका उद्देश्य इनकी पहचान को बनाये रखने, शोषण से बचाने के लिए और सम्पूर्ण विकास को बढ़ावा देना था। संविधान में पाँचवीं और छठी अनुसूची का जुडना इन्हीं उपायों में से एक है। इसके अलावा अनुच्छेद 275 (1) में यह प्रावधान भी दिया गया है कि इन दोनों सूचियों के लिए भारत की संचित निधि से फंड दिया जाए जिससे इनके कल्याण के कार्यों को पूरा किया जा सके। इसके फलस्वरूप, जब संविधान अपनाया गया तब यह परिकल्पना की गयी कि इससे निचले स्तर पर प्रशासनिक तंत्र को मजबूती मिलेगी तथा आदिवासी इलाकों में विकास कार्य तेजी से होंगे। इसलिए संविधान में पाँचवीं और छठी अनुसूची शामिल की गयी ताकि इन लोगों की अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके और इन्हें भी देश के पहले पायदान पर लाया जा सके।

प्र.6. संविधान द्वारा निर्वाचन आयोग के गठन की क्या प्रक्रिया है?

उत्तर भारतीय संविधान निर्माताओं ने स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव के महत्त्व को समझते हुए एक स्वतन्त्र निर्वाचन-तन्त्र की स्थापना करनी चाही। मौलिक अधिकारों की उप-समिति (The Fundamental Rights Sub-Committee) ने इस बात पर जोर दिया कि स्वतन्त्र चुनावों को कार्यपालिका के हस्तक्षेप से बचाए रखने के लिए इनका वर्णन मौलिक अधिकारों के अध्याय में किया जाए। संविधान सलाहकार समिति (Advisory Committee) ने उपसमिति के इस सुझाव को न मानते हुए यह कहा कि चुनाव-सम्बन्धी धाराओं को मौलिक अधिकारों के अध्याय में न देकर इनको एक अलग अध्याय में दिया जाए। संघीय संविधान समिति (Union Constitution Committee) ने सलाहकार समिति के इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। प्रारम्भ में प्रारूप समिति (Draft Committee) ने संघ तथा राज्यों के लिए अलग-अलग निर्वाचन-आयोगों की व्यवस्था की थी। परन्तु संविधान सभा में **डॉ० अम्बेडकर** (Dr Ambedkar) ने एक संशोधन प्रस्ताव द्वारा पूरे देश के लिए एक ही निर्वाचन आयोग की व्यवस्था करवाई जो निर्वाचन-सूचियों की तैयारी, संसद, राज्य विधानमण्डलों, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों तथा चुनाव ट्रिब्यूनलों की स्थापना से सम्बन्धित सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा। अत: संविधान की धारा 324 के अनुसार एक निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है और निर्वाचन सम्बन्धी सभी अधिकार उसे दिए गए हैं।

प्र.7. निर्वाचन आयोग की संरचना का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर निर्वाचन आयोग की संरचना—संविधान की धारा 324 (2), (3) और (4) में निर्वाचन आयोग की संरचना का वर्णन किया गया है जोकि इस प्रकार है—

1. निर्वाचन आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त (Chief Election Commissioner) तथा कुछ अन्य निर्वाचन आयुक्त (Other Election Comissioners) होंगे, जिनकी संख्या राष्ट्रपति समय-समय पर निर्धारित करेगा। चुनाव आयोग के समस्त सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति संसद द्वारा इस सम्बन्ध में निर्मित कानून की धाराओं के अनुसार करेगा। अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति होने की अवस्था में मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सभापति होगा। वर्तमान में एक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा दो अन्य चुनाव आयुक्त हैं।
2. चुनाव आयोग को सहायता देने के लिए लोकसभा व राज्य विधानमण्डलों के चुनाव से पूर्व राष्ट्रपति को प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त (Regional Election Commissioners) नियुक्त करने का अधिकार होगा।
3. राष्ट्रपति संसद द्वारा इस सम्बन्ध में निर्मित कानून के अनुसार निर्वाचन आयुक्तों तथा प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल तथा सेवाकाल सम्बन्धी शर्तें भी निश्चित करेगा।

प्र.8. चुनाव/निर्वाचन आयोग की स्वतन्त्रता के लिए क्या संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं?

उत्तर भारत में निर्वाचन आयोग एक स्वतन्त्र सांविधानिक निकाय है और संविधान इस बात को सुनिश्चित करता है कि यह उच्चतम और उच्च न्यायालयों की भाँति कार्यपालिका के बिना किसी हस्तक्षेप के स्वतन्त्र और निष्पक्ष रूप से अपने कार्यों को सम्पादित कर सके। इसकी स्वतन्त्रता को बनाए रखने की दृष्टि से निम्नलिखित प्रावधान बड़े महत्वपूर्ण हैं—

1. निर्वाचन आयोग एक संवैधानिक संस्था है अर्थात् इसका निर्माण संविधान ने किया है न कि कार्यपालिका या संसद ने।
2. मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं।
3. मुख्य चुनाव आयुक्त को महाभियोग जैसी प्रक्रिया से ही हटाया जा सकता है।
4. मुख्य चुनाव आयुक्त का दर्जा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर है।
5. नियुक्ति के पश्चात् मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों की सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

6. मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य आयुक्तों का वेतन भारत की संचित निधि में से दिया जाता है।

संक्षेप में, संविधान निर्वाचन आयोग के पदाधिकारियों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करता है जिससे वे अपने कार्यों को निडरता, निष्पक्षता तथा बिना किसी हस्तक्षेप के सम्पादित कर सकें।

'चुनाव आयोग एक स्वतन्त्र संवैधानिक संस्था है' इस बात पर बल देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने **28 अक्टूबर, 2002 ई०** को दी गयी अपनी राय में कहा है कि **अनुच्छेद 324** के अन्तर्गत चुनाव कार्यक्रम निर्धारित करने का अधिकार केवल चुनाव आयोग को है। चुनाव आयोग का यह अधिकार संविधान के अन्य किसी अनुच्छेद से सीमित नहीं होता तथा संसद भी चुनाव आयोग के इस अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यवहार में चुनाव आयोग ने 1991 से लेकर 2016 ई० के मध्य तक सदैव ही स्वतन्त्र और निष्पक्ष तथा संवैधानिक दायित्वों को सम्पन्न करने में सक्षम संस्था और सत्ता होने का परिचय दिया है।

प्र.9. मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले किन्हीं तीन तत्त्वों की समीक्षा कीजिए।

उत्तर मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले तीन तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **आर्थिक स्थिति**—व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है। एक प्रमुख तथ्य यह है कि यदि व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो तो मतदाता शासक दल के पक्ष में मतदान करते हैं, अन्यथा शासक दल के विरुद्ध। इसी कारण शासक दल की यह इच्छा रहती है कि चुनाव 'अच्छी कृषि के वर्ष' में हों। 1980 के लोकसभा चुनाव में जनता पार्टी की पराजय का एक प्रमुख कारण जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ थीं, जिसके लिए उन्होंने जनता पार्टी और जनता 'एस' को उत्तरदायी माना। नवम्बर '98 में सम्पन्न राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली विधानसभा चुनावों में भाजपा की पराजय का एक बड़ा कारण बढ़ती हुई महँगाई से उत्पन्न जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ थीं। 16वीं लोकसभा के चुनावों (2014) में भी यूपीए की हार का एक प्रमुख कारण जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ थीं। लगातार बढ़ती महँगाई से निजात पाने के लिए मतदाताओं ने भाजपा को वोट दिया।
2. **दलों की विचारधारा, कार्यक्रम और नीति**—भारतीय मतदाता यद्यपि बहुत अधिक नहीं, लेकिन कुछ सीमा तक दलों की विचारधारा, कार्यक्रम और नीति से भी प्रभावित होते हैं। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा निषेधात्मक विचारधारा और कार्यक्रम के स्थान पर सकारात्मक विचारधारा और कार्यक्रम को पसन्द किया जाता है। 1971 के लोकसभा चुनावों में जनता ने 'गरीबी हटाओ' के कार्यक्रम को अपना मत दिया था। और 1977 के चुनावों में जनता ने जनता पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम '**लोकतन्त्र की रक्षा**' को अपना मत दिया था। 2014 के लोकसभा चुनावों में जनता ने भारतीय जनता पार्टी के 'सुशासन व विकास' के पक्ष में अपना मत दिया। जनता ने इस बात को समझ लिया है कि राजनीतिक दलों की विचारधारा, नीति और कार्यक्रम केवल दिखावे के लिए हैं, इस कारण भी यह तत्व मतदान व्यवहार को कम ही प्रभावित कर पाता है।
3. **जातिवाद**—जातिवाद मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाला एक तत्व रहा है जो कई बार और अनेक क्षेत्रों में एक प्रमुख तत्व बन जाता है। वैसे तो इस तत्व का प्रभाव भारतीय संघ के सभी राज्यों में है लेकिन फिर भी बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और केरल में इस तत्व का प्रभाव अधिक है। इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण और आशावर्धक तथ्य ये हैं—**प्रथम**, विधानसभा चुनावों की तुलना में लोक सभा चुनावों में जाति के तत्व का प्रभाव कम होता है। **द्वितीय**, यदि चुनाव के अन्तर्गत कोई महत्वपूर्ण प्रश्न या विशेष समस्या सामने हो अथवा राजनीति में कोई '**करिश्माती व्यक्तित्व**' (Charismatic Personality) हो, तो फिर जाति के तत्व का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। 2014 के लोकसभा चुनावों में मतदाताओं ने जातिवाद को बड़े पैमाने पर नकार दिया। इन चुनावों में जाति के तत्व की तुलना में 'सुशासन और विकास' के तत्व ने अधिक प्रमुख भूमिका निभाई।

प्र.10. 'नोटा' (NOTA) का क्या प्रावधान है? समझाइए।

उत्तर सर्वोच्च न्यायालय ने सितम्बर, 2013 में अपने निर्णय में मतदाताओं को 'नकारात्मक मतदान' का अधिकार प्रदान किया है तथा निर्वाचन आयोग को निर्देश दिया कि वह इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीनों में सभी उम्मीदवारों के नामों के नीचे अन्त में NOTA (उपर्युक्त में से कोई नहीं) के लिए आवश्यक प्रावधान करें तथा ऐसे मतों की विधिवत गणना करें। यद्यपि उनसे चुनाव परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

निर्वाचन आयोग ने नवम्बर-दिसम्बर, 2013 के विधानसभा चुनावों तथा 2014 के लोकसभा चुनावों में NOTA (उपर्युक्त में से कोई नहीं) का विकल्प प्रदान किया तथा लोकसभा चुनावों में 1.1 प्रतिशत मतदाताओं ने चुनाव लड़ रहे सभी उम्मीदवारों को नापसन्द करते हुए 'नोटा' वाला बटन दबाया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय संघात्मक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संघ-राज्य सम्बन्धों की विशेषताएँ
(Features of Centre-State Relations)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 (1) के अनुसार, भारत राज्यों का संघ है। भारतीय संविधान मूलत: संघात्मक है। संघात्मक प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है—

1. **दोहरी शासन प्रणाली**—संघात्मक राज्य में दो सरकारें होती हैं-एक राष्ट्रीय तथा दूसरी राज्य सरकार, जबकि एकात्मक राज्य में एक ही राष्ट्रीय सरकार होती है। हमारे भारत में एक केंद्र तथा दूसरी अन्य राज्य सरकारें होती हैं। अन्य शब्दों में भारतीय संविधान ने दोहरी शासन प्रणाली की स्थापना की है।
2. **शक्तियों का विभाजन**—संघ सरकार की मुख्य विशेषता 'केंद्र तथा राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन' है। स्थानीय महत्त्व वाले विषय राज्य सरकारों को तथा राष्ट्रीय महत्त्व वाले विषय, केंद्र को प्रदान किए गए हैं। अत: भारतीय संविधान में तीन सूचियाँ वर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं-संघ-सूची, राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची।
3. **संविधान की सर्वोच्चता**—देश का सर्वोच्च कानून भारतीय संविधान को माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए संविधान के अनुसार निर्मित कानूनों का पालन करना अनिवार्य है। कोई भी संविधान के विरुद्ध चाहे वह सरकारी अधिकारी अथवा देश का शासक हो, कोई कार्य नहीं कर सकता है। संविधान के किसी अनुच्छेद के विरुद्ध संसद या राज्य विधानमंडल किसी भी कानून का निर्माण नहीं कर सकता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्समीक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके अनुसार न्यायालय, संसद के ऐसे कानून को अथवा कार्यपालिका के ऐसे आदेश को संवैधानिक नही मान सकता है, जो संविधान में लिखित किसी प्रावधान का उल्लंघन करते हों।
4. **द्वि-सदनात्मक विधायिका**—एक संघीय सरकार में विधानपालिका का द्वि-सदनात्मक होना अनिवार्य है। प्राय: उच्च सदन संघ के राज्यों का तथा निम्न सदन जनता का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च सदन को राज्य सभा तथा निम्न सदन को लोक सभा कहते हैं।
5. **स्वतंत्र न्यायपालिका**—संघात्मक प्रणाली में संविधान की पुनर्व्याख्या करने की अंतिम शक्ति न्यायालयों को प्राप्त है, जिससे संवैधानिक प्रावधानों का संघ तथा राज्य सरकारों द्वारा उल्लंघन न हो सके। भारत में सर्वोच्च न्यायालय कों शक्तियों के वितरण तथा संवैधानिक प्रावधानों को संरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है।
6. **कठोर संविधान**—कठोर संविधान से तात्पर्य, संशोधन करने की एक विशेष निश्चित विधि से है। विशेष संशोधन विधि का वर्णन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 368 में किया गया है। संशोधन हेतु भारतीय संविधान को तीन खण्डो में बाँटा जा सकता है—
   (i) प्रथम खण्ड, जिसकी संसद केवल साधारण बहुमत से बदल सकती है, यह भारतीय संविधान के लचीलेपन का साक्ष्य है।
   (ii) द्वितीय खण्ड, जिसमें परिवर्तन हेतु संसद के दोनों सदनों के स्वयं के सदस्यों की कुल संख्या का स्पष्ट बहुमत, उपस्थित तथा मत देने वालों का दो-तिहाई बहुमत अनिवार्य है, यह खण्ड भारतीय संविधान के कठोर होने का प्रत्यक्ष साक्ष्य है।
   (iii) तृतीय खण्ड, जिसको परिवर्तित करने के लिए संसद के सदस्यों की कुल संख्या का स्पष्ट बहुमत, उपस्थित होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मत देने वाले सदस्यों के लिए दो-तिहाई बहुमत के अतिरिक्त कम-से-कम आधे राज्यों के विधान मंडलों का सहयोग भी आवश्यक है। भारतीय संविधान का यह खण्ड इसके अधिक कठोर होने का साक्ष्य है।
7. **न्यायपालिका की सर्वोच्चता**—संघात्मक प्रणाली में केंद्र तथा राज्य सरकारों में एक-दूसरे के मध्य विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार के विवादों का समाधान सर्वोच्च न्यायपालिका द्वारा ही किया जा सकता है। इसीलिए भारतीय संविधान में स्वतंत्र व सर्वोच्च न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को संविधान की व्याख्या और संविधान की रक्षा करने का अधिकार है। इन न्यायालयों के द्वारा की गई संविधान की व्याख्या अंतिम मानी जाती है। यह न्यायपालिका की सर्वोच्चता का प्रत्यक्ष साक्ष्य है। इस प्रकार संविधान के संघात्मक होने के उपर्युक्त लक्षण परिचायक हैं।

8. **एकात्मक लक्षण**—भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के लक्षणों के होते हुए भी इसे पूर्ण संघीय संविधान नहीं माना गया है जिसका कारण भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधानों का होना हैं, जो एकात्मक होने के साक्षात् प्रमाण हैं। भारतीय संविधान को एकात्मक रूप देने वाली मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **एक संविधान**—भारत में केन्द्र एवं राज्यों के लिए एक ही संविधान है जिसमें केंद्र तथा राज्यों के शासन की व्यवस्था के संबंध में प्रावधान है, जबकि अमेरिका तथा स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में संघात्मक प्रणाली है और वहाँ राज्यों के स्वयं के प्रथक संविधान हैं।

(ii) **अवशिष्ट शक्ति**—भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 248 के अनुसार अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र सरकार को प्रदान की हैं। अवशिष्ट शक्ति से आशय उस विषय से है जो तीनों में से किसी भी सूची में अंकित नहीं है। इस व्यवस्था का कनाडा के संविधान में प्रावधान है।

(iii) **संविधान संशोधन**—इस दृष्टिकोण में राज्यों की अपेक्षा केंद्र को अधिक अधिकार प्राप्त हैं। संसद साधारण बहुमत से संविधान के अधिकांश भाग को निश्चित विधि द्वारा परिवर्तित कर सकती है। संविधान में संशोधन के लिए बहुत कम भाग ऐसा है, जिसमें कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों का सहयोग आवश्यक हो। इस प्रकार संविधान संशोधन में भी केंद्र सरकार को अधिक अधिकार प्राप्त होना, एकात्मक प्रणाली का मुख्य लक्षण है।

(iv) **शक्तियों का विभाजन**—संविधान में शक्तियों का विभाजन केंद्र के पक्ष में है। राज्य-सूची की तुलना में संघ-सूची में अत्यन्त विशेष विषय अंकित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त राज्य-सूची में कम महत्त्व वाले 61 विषय जब कि संघ-सूची के विषयों की कुल संख्या 100 अंकित की गयी है। इसके अतिरिक्त समवर्ती-सूची के अन्तर्गत कुल 52 विषय ही अंकित किए गए है। केंद्र अथवा संसद, संघ-सूची में अंकित विषयों पर कानून का निर्माण करती है और राज्य विधान मंडल, राज्य-सूची में अंकित विषयों पर कानून का निर्माण करती है, लेकिन कुछ विशेष अवस्थाओं में राज्य-सूची में अंकित विषयों पर संसद भी कानून निर्मित कर सकती है। समवर्ती सूची में अंकित विषयों पर दोनों अर्थात केंद्र व राज्य सरकारें कानून का निर्माण करती हैं किन्तु यदि केंद्रीय कानून का, राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानून विरोध करता है तो वह कानून उस सीमा तक रद्द कर दिया जाता है जिस सीमा तक वह केंद्र सरकार के कानून का विरोध करता है और तब केंद्र का कानून लागू कर दिया जाता है। इस प्रकार केंद्र को 'शक्तियों का यह विभाजन शक्तिशाली बनाता है जो कि एकात्मक सरकार का लक्षण है।

(v) **आपात शक्ति**—सामान्यत: संघात्मक संविधान को एकात्मक रूप प्रदान करने हेतु उसमें संशोधन करना अनिवार्य है किन्तु भारतीय संविधान को संशोधन किए बिना इसे एकात्मक रूप दिया जा सकता है। यह हमारे संविधान की विशेषता है। संविधान के **अनुच्छेद 352, 356 तथा 360** के अनुसार राष्ट्रपति आपात स्थिति की घोषणा कर सकता है। **अनुच्छेद 352** के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाये कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत की सुरक्षा खतरे में है तो सम्पूर्ण देश में या देश के किसी एक भाग में वह आपात स्थिति की घोषणा कर सकता है। **अनुच्छेद 356** के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल या किसी अन्य साधन द्वारा सूचना मिलने पर विश्वास हो जाये कि उस राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा कर सकता है। **अनुच्छेद 360** के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसके कारण भारत या इसके किसी भाग की वित्तीय स्थिरता संकट में है तो वह उस समय वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है।

(vi) **राज्यसभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व**—संघीय प्रणाली में प्राय: दूसरा सदन, राज्यों का प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर करता है। जिस प्रकार अमेरिका के द्वितीय सदन सीनेट में प्रत्येक राज्य दो-दो प्रतिनिधि भेजता है लेकिन भारत की राज्यसभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर किया गया है, न कि समानता के आधार पर। यह प्रणाली संघात्मक सिद्धांतों के विपरीत है।

प्र.2. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी, प्रशासकीय तथा वित्तीय सम्बन्धों का परीक्षण कीजिए।

उत्तर

केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध
(Centre and States Relations)

संघात्मक शासन व्यवस्था की यह विशेषता होती है कि इसमें केन्द्र और इकाई राज्य सरकारों के मध्य शक्तियों, अधिकारों एवं कार्यों का संविधान द्वारा स्पष्ट विभाजन कर दिया जाता है, जिससे केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य किसी भी प्रकार का विवाद

उत्पन्न न हो, दोनों सरकारें अपने-अपने कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का समुचित रूप से पालन कर सकें और सम्पूर्ण देश में शान्ति एवं सुरक्षा का वातावरण बना रहे। भारतीय संविधान के अनुसार संघ व उसके राज्यों के सम्बन्धों का अध्ययन निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

I. प्रशासकीय सम्बन्ध

प्रशासकीय दृष्टि से संघ व राज्यों के सम्बन्धों का अध्ययन निम्नलिखित आधारों पर किया जा सकता है—

1. **संघ सरकार का राज्यों की सरकारों को निर्देश**—राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेंगे, जिससे कि राज्यों में संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन हो सके। संघ सरकार इस सन्दर्भ में राज्य सरकारों को आवश्यक निर्देश दे सकती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय व सैनिक महत्त्व के प्रतिष्ठानों तथा आवागमन के राष्ट्रीय स्तर के महत्त्व के साधनों की सुरक्षा करना राज्य का दायित्व होता है परन्तु इन साधनों की सुरक्षा कैसे की जाए, इसके लिए भी केन्द्र द्वारा राज्यों को आवश्यक निर्देश दिए जाते हैं। इन सभी निर्देशों का पालन करने के लिए राज्य सरकारें बाध्य होती हैं क्योंकि सुरक्षा सम्बन्धी विषयों के कुशल क्रियान्वयन की अपेक्षा राज्यों की तुलना में केन्द्र से अधिक रहती है।
2. **राज्यपाल की नियुक्ति**—राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और राज्यपाल ही राज्य की कार्यपालिका का प्रधान होता है। इस दृष्टि से भी केन्द्र राज्यों पर नियन्त्रण रखता है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से राज्यपाल संघ सरकार के एजेण्ट के रूप में ही कार्य करता है।
3. **जनजातियों के उद्धार का दायित्व**—देश की अनुसूचित जातियों (दलितों) तथा अनुसूचित जनजातियों (आदिवासियों) की दशा में सुधार करने के दायित्व का निर्वाह भी केन्द्र के द्वारा किया जाता है। इसके लिए केन्द्र राज्यों में आयोग की स्थापना करता है। ये आयोग पिछड़े वर्गों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर केन्द्र सरकार को सूचनाएँ देते हैं।
4. **आर्थिक सहायता**—केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को आवश्यकता पड़ने पर धन सम्बन्धी सहायता भी देती है तथा उनको आवश्यक शर्तें मानने के लिए बाध्य कर उनके व्यय को भी नियन्त्रित करने का अधिकार रखती है।
5. **अखिल भारतीय सेवाएँ**—यद्यपि अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों का चयन संघ लोक सेवा आयोग करता है; किन्तु ये अधिकारी राज्यों के उच्च पदों पर भी कार्य करते हैं। इस प्रकार केन्द्र सरकार अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से चयनित अधिकारियों को राज्य सेवाओं के लिए भी नियुक्त कर सकती है।
6. **जल-विवाद**—केन्द्र सरकार, दो या दो से अधिक राज्यों के बीच बहने वाली नदियों और घाटियों के सम्बन्ध में उत्पन्न विवादों के समाधान करने का अधिकार रखती है तथा उस विवाद को तय करने के लिए संसद संविधान के **अनुच्छेद 262** के अन्तर्गत विधेयक पारित कर स्थायी या अस्थायी रूप से प्रभावी कानून बना सकती है।
7. **राज्य सरकारों को संघीय कार्य सौंपना**—संघ सरकार अपनी ओर से राज्यों की सरकार व उनके अधिकारियों को संघ के कार्य-क्षेत्र से सम्बन्धित कोई भी कार्य सौंप सकती है।
8. **संचार साधनों की सुरक्षा**—संचार साधनों की सुरक्षा के सम्बन्ध में संघ सरकार राज्य सरकारों को आवश्यक निर्देश दे सकती है।
9. **राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर**—संविधान के **अनुच्छेद 356** के अनुसार राष्ट्रपति शासन लागू होने पर उस राज्य का सम्पूर्ण प्रशासन केन्द्र सरकार के अधीन हो जाता है। इस स्थिति में राज्य की मन्त्रिपरिषद् भंग हो जाती है तथा राज्यपाल अपने सलाहकारों सहित केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुरूप शासन का संचालन करता है।
10. **मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध आरोपों की जाँच**—संघ सरकार राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जाँच कर सकती है।
11. **अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना**—राष्ट्रपति दो या दो से अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न विवादों की जाँच करने के उद्देश्य से तथा लोकहित की दृष्टि से अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना कर सकता है।

प्रशासनिक क्षेत्र में केन्द्र व राज्यों के सम्बन्ध पर आधारित उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर विदित होता है कि सामान्य स्थितियों में राज्य सरकारें केन्द्र सरकार से प्रशासन के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र होती हैं, परन्तु फिर भी यह स्पष्ट है कि केन्द्र का राज्यों पर पर्याप्त नियन्त्रण रहता है।

II. विधायी सम्बन्ध

संविधान ने विधि या कानून निर्माण करने से सम्बन्धित विषयों की तीन सूचियाँ बनाई हैं। इन सूचियों को बनाने का उद्देश्य केन्द्र और राज्यों की सरकारों के मध्य विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार क्षेत्रों को विभक्त करना है। ये सूचियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **संघ सूची**—संघ सूची (Union List) के अन्तर्गत उन विषयों को रखा गया है जिन पर केवल केन्द्र सरकार ही कानूनों का निर्माण कर सकती है। ये विषय बहुत महत्त्वपूर्ण एवं राष्ट्रीय स्तर के हैं। इस संघ सूची में 97 विषय हैं। इस सूची के प्रमुख विषय रक्षा, वैदेशिक मामले, युद्ध व सन्धि तथा बैंकिंग आदि हैं।
2. **राज्य सूची**—मूल संविधान में राज्य सूची (State List) में 66 विषय हैं। इन सब विषयों से सम्बन्धित कानूनों का निर्माण करने का अधिकार राज्य सरकारों को होता है। वैसे तो इन विषयों पर केवल राज्य सरकारें ही कानून बना सकती हैं किन्तु कुछ विशेष स्थितियों में केन्द्र सरकार भी इन विषयों पर कानून बना सकती है। इस सूची के प्रमुख विषय पुलिस, न्याय, कृषि, स्थानीय स्वशासन आदि हैं।
3. **समवर्ती सूची**—मूल संविधान में समवर्ती सूची (Concurrent List) में 47 विषय हैं। इन विषयों पर राज्य एवं केन्द्र दोनों सरकारों को कानून बनाने का समान अधिकार है, परन्तु मतभेद की स्थिति में संघ सरकार के कानून को प्राथमिकता दी जाती है। इस सूची के प्रमुख विषय फौजदारी, विधि-प्रक्रिया, शिक्षा, विवाह, न्यास (ट्रस्ट), वन आदि हैं।

अत: इन सूचियों के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के विधि निर्माण से सम्बन्धित अधिकार-क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं। इस विभाजन के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि केन्द्र सरकार राज्य सरकार की तुलना में अधिक शक्ति-सम्पन्न है। यद्यपि समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दोनों सरकारों को प्राप्त होता है; किन्तु सामान्यतया इन विषयों पर संसद ही कानूनों का निर्माण करती है तथा मतभेद होने की स्थिति में संघ सरकार का कानून मान्य होता है।

[**नोट**—42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा राज्य सूची के चार विषय (शिक्षा, वन, वन्य जीव-जन्तुओं और पक्षियों का रक्षण तथा नाप-तौल) समवर्ती सूची में सम्मिलित कर दिए गए तथा समवर्ती सूची में एक नया विषय 'जनसंख्या नियन्त्रण और परिवार नियोजन' जोड़ा गया।]

राज्य सूची के विषयों पर कानून-निर्माण की संसद की शक्ति—संविधान ने संसद को विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार दिया है। ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **संकटकाल की घोषणा के समय**—आपातकाल में राज्य सूची के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर संसद को विधि-निर्माण का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है।
2. **राज्य सूची का कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व का होने पर**—यदि राज्यसभा अपने दो-तिहाई बहुमत से अपने एक प्रस्ताव के माध्यम से राज्य सूची के किसी विषय के सम्बन्ध में यह घोषणा कर दे कि राष्ट्रीय हित में उस विषय पर केन्द्र सरकार को कानून-निर्माण करना चाहिए तो केन्द्र सरकार (संसद) उस विषय पर कानून बना सकती है। यह कानून एक वर्ष तक लागू रह सकता है। राज्यसभा इसी आशय का दोबारा प्रस्ताव पारित करके इसकी अवधि में वृद्धि कर सकती है।
3. **राज्यों के विधानमण्डलों की प्रार्थना पर**—यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल यह प्रस्ताव पारित करें या याचना करें कि राज्य सूची के अधीन किसी विषय विशेष पर संसद कानून बनाए तो संसद उस विषय पर भी कानून बनाती है।
4. **विदेशी राज्यों से सन्धि के पालन करने के लिए**—संविधान के अनुसार संसद को ही किसी सन्धि, समझौते या अन्य देशों के साथ होने वाले सभी प्रकार के समझौतों का पालन करवाने हेतु कानून बनाने का अधिकार है, भले ही वे विषय राज्य सूची के अन्तर्गत आते हों।
5. **राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर**—यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या इस राज्य का संवैधानिक तन्त्र विफल हो जाए तो **अनुच्छेद 356** के अन्तर्गत लगाए गए राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार संसद को प्रदान कर सकता है।
6. **राज्यपाल द्वारा विधेयक को सुरक्षित रखना**—राज्य के राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह राज्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के अनुमोदन के लिए सुरक्षित कर सकता है। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उस विधेयक को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन होने पर भी विशेष स्थितियों में केन्द्र को राज्यों के विषयों पर कानून-निर्माण के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं।

III. वित्तीय सम्बन्ध

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य आय के साधनों का विभाजन कर दिया गया है किन्तु कुछ ऐसे साधन भी हैं जो राज्य सरकार के अन्तर्गत हैं, परन्तु उनसे प्राप्त आय का उपयोग केन्द्र सरकार करती है तथा कुछ साधनों के सम्बन्ध में स्थिति इसके विपरीत है। वित्तीय क्षेत्र में दोनों के सम्बन्धों का अध्ययन निम्न आधारों पर किया जा सकता है—

1. **करों की वसूली**—प्रथम, कुछ कर ऐसे होते हैं जिन्हें केन्द्र सरकार लगाती है तथा केन्द्र सरकार द्वारा ही वे वसूल भी किए जाते हैं परन्तु उनकी सम्पूर्ण धनराशि राज्यों में विभाजित कर दी जाती है। इस प्रकार के करों में **उत्तराधिकार कर, सम्पत्ति कर तथा समाचार-पत्र कर** आदि आते हैं। द्वितीय, इन करों को केन्द्र निर्धारित करता है, किन्तु राज्य एकत्रित करते हैं और उनका उपभोग भी स्वयं करते हैं। स्टाम्प शुल्क इसी प्रकार का कर है। इन दोनों प्रकार के करों के अतिरिक्त कुछ कर ऐसे भी होते हैं, जिन्हें केन्द्र सरकार राज्यों में लगाती व वसूल करती है। परन्तु इन्हें संघ और राज्यों में विभाजित कर दिया जाता है। इस प्रकार के कर हैं—क्रय-विक्रय कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति कर आदि।
2. **संघ द्वारा राज्यों को सहायता अनुदान**—करों के अतिरिक्त केन्द्र सरकार राज्यों को सहायता अनुदान भी देती है। संविधान के **अनुच्छेद 275** के अनुसार, संघीय सरकार प्रतिवर्ष राज्यों को अनुदान देती है। आर्थिक अनुदान की व्यवस्था का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के क्षेत्र में उत्पन्न असन्तुलन को दूर करना तथा लोक-कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने में सहायता देना है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान देने के लिए भी वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई है—
   (i) असम को उसके राज्य-क्षेत्र में स्थित जनजातियों की उन्नति तथा उनके प्रशासनिक स्तर को ऊँचा उठाने में खर्च की गई धनराशि को केन्द्र अनुदान के रूप में प्रदान करता है।
   (ii) पीड़ितों की सहायतार्थ भी केन्द्र सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है।
   (iii) संसद (केन्द्र) राज्यों को आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए अनुदान दे सकती है तथा वित्तीय संकटकाल की घोषणा होने पर राज्य के समस्त वित्त सम्बन्धी अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्र वित्तीय मामलों में राज्यों को आदेश दे सकता है तथा राज्यों के अधिकारियों के वेतन कम कर सकता है।

वित्त आयोग की व्यवस्था—केन्द्र तथा राज्यों के बीच आय के विभाजन को निश्चित करने के लिए साधारणत: प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात् एक वित्त आयोग (Finance Commission) की नियुक्ति की जाती है।

योजना आयोग—एक संविधानेतर आर्थिक संस्था के रूप में योजना आयोग की स्थापना की गई है जो राज्यों के मुख्यमन्त्रियों से विचार-विमर्श के उपरान्त उनको आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराता है। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है।
[**नोट**—1 जनवरी, 2015 को योजना आयोग का नाम बदलकर 'नीति आयोग' कर दिया गया है।]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक क्षेत्र में भी राज्य सरकारों को केन्द्र सरकार पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है, परन्तु दोनों सरकारें वास्तव में प्रत्येक क्षेत्र में एक सीमा तक एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। **अमरनन्दी** के शब्दों में—"संघीय सरकार तथा राज्य सरकारें दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में सम्प्रभु हैं।" इसके विपरीत **डॉ० एम०पी० शर्मा** का कथन है—"राज्यों के सिर पर डिमाक्लीज की तलवार लटक रही है। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे आत्मविश्वास के साथ संघ शासन के विरुद्ध अपने अधिकारों पर आरूढ़ रह सकें।" वस्तुत: हमारे संविधान द्वारा विधायी, प्रशासकीय तथा वित्तीय क्षेत्रों में संघ सरकार को इकाई राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। केन्द्र को अधिक सशक्त बनाकर हम राष्ट्र की एकता व अखण्डता के समक्ष आने वाली चुनौतियों का डटकर सामना कर सकते हैं।

प्र.3. संघ-राज्य सम्बन्धों में समन्वय हेतु स्थापित संस्थागत निकायों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर केंद्र-राज्य संबंधों में समन्वय हेतु अनेक संस्थागत निकाय बनाए गए हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **योजना आयोग**—योजना आयोग एक गैर संवैधानिक संस्था थी। संघ ने बिना विधि के 1950 में एक योजना आयोग का गठन किया। इसका उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु एक समेकित पंचवर्षीय योजना बनाना और इस निमित्त संघ की सरकार हेतु सलाहकारी निकाय के रूप में कार्य करना है। इसके कार्यकलाप में प्रतिरक्षा तथा विदेश कार्य के अतिरिक्त धीरे-धीरे प्रशासन के सभी क्षेत्र आ गए हैं। इसीलिए एक आलोचक ने इसे सम्पूर्ण देश का आर्थिक मंत्रिमंडल कहा है। आलोचकों के मतानुसार, योजना आयोग राज्यों की स्वायत्तता पर भी आघात करता है। किन्तु योजना आयोग की भूमिका को इन तर्कों के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। देश के संसाधनों के सर्वाधिक एवं संतुलित विकास

के लिए योजना को तैयार करना इस आयोग का प्रमुख कार्य था। इस प्रकार विकास की ऐसी प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिसने जीवन स्तर को उच्च बनाने के लिए लोगों को नए अवसर प्रदान किए। अत: आयोग का कार्य मात्र योजना बनाना था, इन योजनाओं को कार्यान्वयन करना राज्यों के हाथ में था, वह इसलिए कि अधिकांश विकास योजनाएँ राज्यों के लिए होती हैं। इसके अतिरिक्त आयोग का महत्त्व संघ के स्तर पर महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसका अध्यक्ष स्वयं प्रधानमंत्री होता है लेकिन राज्यों का जहाँ तक संबंध है आयोग की भूमिका सलाहकार की ही है। योजना आयोग तथा वित्त आयोग के कार्यों तथा दायित्वों के मध्य समन्वय स्थापित होना अति आवश्यक है जिससे कार्यों का सम्पादन उचित रूप में हो सके। योजना आयोग का वर्तमान नाम 'नीति आयोग' है।

2. **राष्ट्रीय विकास परिषद**—द्वितीय संविधानेतर संस्था राष्ट्रीय विकास परिषद है। यह परिषद 1952 में योजना आयोग के सहायक के रूप में गठित की गई थी जिससे राज्यों की योजनाओं के निर्माण में सहभागी बनाया जा सके। यह परिषद संघ के प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों से मिलकर बनी है, इसके निम्नलिखित उददेश्य हैं—
   (i) योजना के समर्थन में प्रयासों को गति देना और उन्हें मजबूत बनाना,
   (ii) संसाधनों का उपयोग करना,
   (iii) सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सामान्य आर्थिक नीतियों को लागू करना एवं देश के सभी भागों का संतुलित विकास सुनिश्चित करना।

   इसके अतिरिक्त यह अन्य विशिष्ट उद्देश्यों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है; जैसे—समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्यान्वयन की समीक्षा करना तथा राष्ट्रीय योजना के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उपायों की सिफारिश करना। इस परिषद के अन्तर्गत संघीय मंत्रिमंडल के सभी सदस्य, राज्यों के मुख्यमंत्री, संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासक एवं योजना आयोग के सदस्य शामिल होते हैं।
3. **राष्ट्रीय एकता परिषद**—यह भी एक गैर-संवैधानिक संस्था है। इसकी स्थापना 1986 में की गई थी। इसका उद्देश्य अखिल भारतीय स्तर पर एकीकरण हेतु कार्य करना है। इस परिषद में संघ के मंत्रियों एवं राज्य के मुख्यमंत्रियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि, श्रमिकों तथा महिलाओं के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं।
4. **क्षेत्रीय परिषद**—क्षेत्रीय परिषद वह संस्था है जिसमें उस क्षेत्र के राज्य और राज्य क्षेत्रों के समान हित के विषयों पर विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए—आर्थिक और सामाजिक योजना, सीमा विवाद, अंतर्राज्यीय परिवहन, राज्य पुनर्गठन आदि में उत्पन्न होने वाले विषय इत्यादि । क्षेत्रीय परिषदों का विकास संविधान से न होकर संसद के अधिनियम से हुआ है। भारत के राज्यक्षेत्र को, 'राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956' द्वारा पाँच क्षेत्रों में बाँटा गया है तथा प्रत्येक क्षेत्र के सामान्य हित के विषयों पर सलाह देने के लिए क्षेत्रीय परिषदें गठित की गई हैं।
   (i) केंद्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्य हैं।
   (ii) उत्तरी क्षेत्र के अन्तर्गत हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर राज्य तथा दिल्ली और चण्डीगढ़ संघ शासित राज्य हैं।
   (iii) पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत बिहार, पश्चिम बंगाल और ओडिशा हैं।
   (iv) पश्चिमी क्षेत्र के अन्तर्गत गुजरात, महाराष्ट्र और गोवा राज्य तथा दादर और नगर हवेली तथा दमन और दीव के संघ राज्य क्षेत्र हैं।
   (v) दक्षिणी क्षेत्र के अन्तर्गत आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल राज्य तथा पुडुचेरी संघ राज्य क्षेत्र हैं।

   प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद के अन्तर्गत उस क्षेत्र के राज्यों के मुख्यमंत्री एवं दो मंत्री तथा संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक होता है। सभी क्षेत्रीय परिषदों का अध्यक्ष संघ के गृह मंत्री को नियुक्त किया गया है। उपर्युक्त क्षेत्रीय परिषदों के अतिरिक्त एक पूर्वोत्तर परिषद का भी गठन, **पूर्वोत्तर परिषद अधिनियम, 1971** के प्रावधानों के अनुसार किया गया है। यह परिषद-असम, मेघालय, मणिपुर, नागालैण्ड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम की सम्मिलित समस्याओं पर विचार करती है। इसके अतिरिक्त सिक्किम को भी इस परिषद के अन्तर्गत 14 जुलाई, 2000 को शामिल कर लिया गया। हालाँकि भाषा और प्रांत के आधार पर पृथकतावादी भावनाओं को रोककर एक संघीय भावना का उदय हो सकता है परन्तु यह तभी हो सकता जब इन परिषदों का कार्य ठीक से किया जाए।

क्षेत्रीय परिषद के उद्देश्य—क्षेत्रीय परिषद् के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

1. राष्ट्रीय अखण्डता बनाए रखना।
2. पूर्णरूप से प्रादेशिक संचेतना, क्षेत्रीयता, भाषिकता और विशिष्टीकृत प्रवृत्ति को रोकना।
3. केंद्र एवं राज्यों के मध्य सहयोग को मजबूत करना तथा विचारों एवं अनुभवों के आदान-प्रदान को बढ़ावा देना।
4. विकासपरक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के तीव्र एवं सफल कार्यकरण हेतु राज्यों के मध्य आपसी सहयोग का वातावरण तैयार करना।

प्र.4. अनुसूचित जनजाति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर अनुसूचित जनजातियों की विशेषताओं को जनजातियों की सामान्य विशेषताओं से अलग करना एक कठिन कार्य है। फिर भी, अनुसूचित जनजातियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. अनुसूचित जनजातियाँ आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई हैं तथा उनकी अर्थव्यवस्था अत्यन्त सरल तथा अविकसित होती है।
2. अनूसूचित जनजातियों की साक्षरता दर बेहद कम है। 2001 ई० की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की अखिल भारतीय साक्षरता दर 47.1 प्रतिशत है, जबकि साक्षरता का राष्ट्रीय औसत 64.8 प्रतिशत है। जनजातीय महिलाओं तथा सामान्य महिलाओं में साक्षरता के प्रतिशत में और अधिक अन्तर है। जनजातीय महिलाओं की साक्षरता का औसत केवल 34.8 प्रतिशत है, जबकि देश की सामान्य महिलाओं का साक्षरता का औसत लगभग 53.7 प्रतिशत है। हालाँकि वर्तमान में इनके शैक्षिक उत्थान हेतु अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं।
3. अनुसूचित जनजातियों की आधे से अधिक (55 प्रतिशत) जनसंख्या पूर्वी तथा मध्य जनजातीय क्षेत्रों (पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश का कुछ भाग) तथा एक-चौथाई से थोड़ा अधिक (28 प्रतिशत) भाग पश्चिमी जनजातीय क्षेत्र (गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, गोवा, दादरा व नगर हवेली, दमन तथा दीव) में निवास करता है।
4. अनुसूचित जनजातियों को केन्द्र तथा राज्य सरकारों की सेवाओं में आरक्षण सुविधाएँ; जैसे—नौकरियों में आयु सीमा में छूट, उपयुक्तता के मापदण्डों में छूट तथा अनुभव सम्बन्धी योग्यताओं में छूट प्रदान की गई है, ताकि नौकरियों में इनका समुचित प्रतिनिधित्व हो सके।
5. नीति निर्माण में अनुसूचित जनजातियों की समुचित सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु पंचायतों तथा स्थानीय निकायों से लेकर राज्य विधानसभाओं तथा लोकसभा तक आरक्षित स्थानों की व्यवस्था की गई है।
6. आधुनिक चिकित्सा सुविधों उपलब्ध न हो पाने के कारण अनुसूचित जनजातियाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से भी पिछड़ी हुई हैं।
7. अनुसूचित जनजातियों के बिकास एवं कल्याण हेतु राज्यों में कल्याण विभागों की स्थापना की गई है, जो कि जनजातीय कल्याण कार्यों की देख-रेख करते हैं। इनके विकास हेतु इनके बीच कार्य कर रहे गैर-सरकारी स्वैच्छिक संगठनों को भी अनुदान प्रदान किए जाते हैं। इसके साथ ही केन्द्रीय कल्याण राज्यमन्त्री की अध्यक्षता में सलाहकार बोर्ड की भी स्थापना की गई जिसका उद्देश्य अनुसूचित जनजाति के बच्चों और महिलाओं के हित सुरक्षित करने के लिए है।
8. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातियों (आदिवासियों) के विकास तथा कल्याण से सम्बन्धित अनेक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को स्थान दिया गया है। जैसे—जनजातीय उपयोजना कार्यक्रम, जिसका लक्ष्य गरीबी को हटाना है। बीस सूत्रीय कार्यक्रमों में सर्वोच्च स्थान 'गरीबी के विरुद्ध संघर्ष' को दिया गया था।
9. अनुसूचित जनजातियों की एक प्रमुख समस्या आर्थिक शोषण है। इसी समस्या के समाधान हेतु 'भारतीय जनजातीय विपणन विकास संघ' की स्थापना की गई है। वन से प्राप्त सामग्रियों के विपणन के सम्बन्ध में सहकारी समितियों की स्थापना की गई है। क्रियान्वयन की दृष्टि से सरकार के द्वारा समन्वित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम आदि कार्यक्रमों को जनजातीय (आदिवासी) क्षेत्रों में लागू किया गया है।
10. केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक तथा कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू करने एवं प्रभावशाली क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
11. अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं के अध्ययन एवं उनके समाधान के उपायों की खोज करने के उद्देश्य से विभिन्न स्थानों पर आदिवासी शोध संस्थानों एवं प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई है। देश में छठी पंचवर्षीय योजना के पूर्व भुवनेश्वर (1953 ई०), कोलकाता (1955 ई०), पटना (1959 ई०), पुणे, अहमदाबाद, शिलांग (1962 ई०),

हैदराबाद (1963 ई०), उदयपुर (1968 ई०), कालीकट, लखनऊ (1971 ई०), तथा गुवाहाटी (1977 ई०) में ऐसे अनेक शोध केन्द्रों की स्थापना की गई है। इन विभिन्न शोध केन्द्रों ने आदिवासियों की समस्याओं के सन्दर्भ में 168 विविध शोधपूर्ण एवं सर्वेक्षणात्मक अध्ययन किए हैं।

भारतीय संविधान में सम्पूर्ण देश के लिए एक समान शासन व्यवस्था का प्रावधान है परन्तु देश के कुछ क्षेत्र विशेष प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं। ये प्रावधान इन क्षेत्रों के मूल निवासियों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान, रीति-रिवाजों तथा आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। इन क्षेत्रों में उत्तर-पूर्वी राज्यों की आदिवासी पहाड़ियाँ जिनमें असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, नागालैंड, मिजोरम, मेघालय एवं त्रिपुरा, जम्मू और कश्मीर राज्य और 'अनुसूचित क्षेत्र' के रूप में चिन्हित क्षेत्र शामिल हैं, संविधान निर्माण के समय संविधान निर्माताओं ने यह बात नोट की, कि देश में कुछ क्षेत्र एवं समुदाय ऐसे हैं जो कि पिछड़े हुए हैं, उनका जीवनयापन करने का तरीका समाज से अलग है तथा पौराणिक है।

इसलिए इनके लिए विशेष ध्यान देने और उनके हितों को सुरक्षित रखने की जरूरत है तथा इनके सामाजिक और आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने की जरूरत है। संविधान के **अनुच्छेद 244 में भाग 10 के** अंतर्गत एक विशेष प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधान है एवं **अनुच्छेद 244 (1)** के अनुसार पाँचवीं अनुसूची के प्रावधान अनुसचित क्षेत्रों एवं जनजातीय (आदिवासी) क्षेत्रों में लागू होंगे। इसमें उत्तर-पूर्व के राज्यों में अनुच्छेद लागू नहीं होगा, विशेषकर असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम। जबकि इन चार राज्यों में अलग से संविधान की छठी सूची लागू करने का प्रावधान है। यह छठी सूची संविधान के **अनुच्छेद 244 (2)** में सम्मिलित है। यह पाँचवीं अनुसूची से भिन्न है, इसमें अलग से "आदिवासी क्षेत्रों" को अधिसूचित किया गया है। इस प्रकार संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूची इन विशेष क्षेत्रों के प्रशासन और विशेष अधिकारों से सम्बन्धित है।

प्र.5. छठी अनुसूची के उत्तरी-पूर्वी राज्यों एवं अनुसूचित क्षेत्रों का परिचय देते हुए पाँचवीं एवं छठी अनुसूची का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

उत्तर

छठी अनुसूची
(Sixth Article)

उत्तरी-पूर्वी राज्यों एवं अनुसूचित क्षेत्रों जैसे कि असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा राज्य के आदिवासी लोगों के अलग-अलग रहन-सहन और दृष्टिकोण को देखते हुए संविधान सभा ने अलग प्रशासनिक नियमों की आवश्यकता को समझते हुए संविधान के **अनुच्छेद 244 (2)** में छठी अनुसूची के अंतर्गत विशेष प्रावधान जोड़े हैं। छठी अनुसूची का प्रमुख प्रावधान था कि आदिवासी क्षेत्रों का प्रशासन पूर्णरूप से स्वायत्त क्षेत्र एवं जिले होंगे। इसके अंतर्गत राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि वे स्वायत्त क्षेत्र या स्वायत्त जिले की इकाई वाले क्षेत्रों को निर्धारित करे, साथ ही नये स्वायत्त क्षेत्र या स्वायत्त जिले सृजित कर सके या जो वर्तमान क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र एवं उनके नामों में परिवर्तन कर सकते हैं। इनका वर्णन छठी **अनुसूची के खंड 20 के भाग ए और बी** के अंतर्गत है। वर्तमान में 10 स्वायत्त क्षेत्र हैं जो निम्नलिखित चार खण्डों में विभाजित हैं—

खंड 12 (असम)

1. उत्तरी-कचार पहाड़ी जिला (दीमा होलांग)
2. बोडोलैंड क्षेत्रीय जिला
3. काबरी-ऐंगलोंग जिला

खंड 12 ए (मेघालय)

1. खासी पहाड़ी जिला
2. गारो पहाड़ी जिला
3. जैन्तिया पहाड़ी जिला

खंड 12 ए ए (त्रिपुरा)

त्रिपुरा आदिवासी क्षेत्रीय जिला

खंड 12 बी (मिजोरम)

1. चकमा जिला
2. लाई जिला
3. मारा जिला

छठी अनुसूची के अंतर्गत स्वायत्त जिला परिषद और क्षेत्रीय परिषद बनाने का प्रावधान है। इन परिषदों को कुछ विधायी, कार्यपालिका, न्यायिक एवं वित्तीय अधिकार भी दिये गये हैं। छठी अनुसूची के अंतर्गत जिला परिषद एवं क्षेत्रीय परिषद के विभिन्न प्रशासनिक प्रावधान प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग राज्यों में वर्णित हैं जिसमें **खंड 12 असम** के लिए, **खंड 12 ए मेघालय** के लिए, **खंड 12 एए त्रिपुरा** के लिए एवं **खंड 12 बी मिजोरम** के लिए है। छठी अनुसूची के **खण्ड 2 (1)** के अनुसार, सभी स्वायत्त जिलों में 30 सदस्यों की एक जिला परिषद होगी, जिसमें चार सदस्य राज्यपाल द्वारा तथा बाकी सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुन कर नामांकित किये जाएँगे। वहीं नवीन बोड़ोलैण्ड क्षेत्रीय परिषद भी इसी का एक अलग उदाहरण है क्योंकि इसमें 46 सदस्यों का प्रावधान है। छठी अनुसूची के अंतर्गत इन्हें अपनी भूमि पर कानून बनाने तथा जंगलों की देख-रेख करने के लिए कार्यपालिका, विधायी और न्यायिक अधिकार दिए गए हैं। इसके अलावा इन्हें परम्परागत संपत्ति पर अधिकार, सामाजिक रीति-रिवाज, मुखिया की नियुक्ति, विवाह एवं करों पर भी कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। इसके साथ ही छठी अनुसूची में जिला एवं क्षेत्रीय परिषद के कार्य एवं अधिकार वर्णित हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1. **विधायी कार्य**—छठी अनुसूची की महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें जिला परिषद को कानून बनाने का अधिकार दिया है। छठी अनुसूची के खण्ड 3 में जिला परिषद एवं क्षेत्रीय परिषद को यह प्रावधान दिया गया है कि वह भूमि, कृषि, जंगल या नहर हेतु जल संसाधन, खेती सम्बन्धी कानून, ग्राम या शहरी समितियाँ इत्यादि कार्य करने एवं कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। अनुसूची के खण्ड 10 में जिला परिषद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह व्यापार या उससे संबंधित कोई भी नियम बना सके ताकि अनुसूचित जनजाति के अलावा कोई भी व्यक्ति उस जिले में अपना कारोबार कर सके। हालाँकि ये सभी कानून राज्य के राज्यपाल की सहमति के बाद ही प्रभावी होंगे।
2. **कार्यपालिका शक्तियाँ**—छठी अनुसूची के अंतर्गत जिला परिषद और क्षेत्रीय परिषद को व्यापक कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हैं। इन परिषदों को प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण करने, बाजारों, मवेशियों का तालाब बनाने, डिस्पेंसरी का निर्माण, सड़क बनाने एवं अन्य सम्बन्धित कार्यों को करने की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। इनमें परिषदों को प्राथमिक विद्यालय में भाषा निर्धारित करने एवं अनुदेश देने के तरीकों का भी अधिकार दिया गया है।
3. **न्यायिक शक्तियाँ**—जिला परिषद और क्षेत्रीय परिषदों को ग्रामीण एवं जिला न्यायालय बनाने का अधिकार भी दिया गया है। जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के वाद-विवादों या झगड़ों को निपटाया जाता है तथा अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित सभी मामलों की सुनवायी इन्हीं न्यायालयों में की जाती है। इन समस्याओं को सुलझाने का अधिकार केवल उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय को ही है। हालाँकि इन परिषद न्यायालयों को किसी जुर्म में मृत्युदण्ड की सजा या पाँच वर्ष से अधिक जेल की सजा सुनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है।
4. **वित्तीय शक्तियाँ**—छठी अनुसूची जिला परिषद एवं क्षेत्रीय परिषदों को कुछ वित्तीय अधिकार भी प्रदान करती है। ये स्वयं अपनी परिषद का बजट तैयार करने का अधिकार रखती हैं। छठी अनुसूची के खण्ड 8 में इन परिषदों को भूमि कर एवं राजस्व को एकत्र करने एवं आयकर दान करने का अधिकार तथा व्यापारियों, मवेशियों, वाहनों, एवं व्यवसायों पर कर लगाने तथा माल का बाजार में प्रवेश पर भी कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। इसके साथ ही विद्यालयों, अस्पतालों एवं सड़कों के रखरखाव पर भी कर लगा सकती हैं। इस अनुसूची के खण्ड 9 के अंतर्गत परिषदों को यह अधिकार भी दिया गया है कि वे खदानों की खुदाई के लाइसेंस दे सकें।

पाँचवीं एवं छठी अनुसूची का तुलनात्मक अध्ययन

पाँचवीं एवं छठी अनुसूची का तुलनात्मक अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

क्र०सं०	पाँचवीं अनुसूची	छठी अनुसूची
1.	संविधान में पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्र का वर्णन है।	छठी अनुसूची के अंतर्गत उत्तर पूर्व के चार आदिवासी क्षेत्रों का वर्णन है।
2.	पाँचवीं अनुसूची में आदिवासी सलाह परिषद का प्रावधान है।	छठी अनुसूची में स्वायत्त जिला परिषद या क्षेत्रीय परिषद का प्रावधान वर्णित है। ये अपने निर्धारित क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्यों का संस्थागत उपाय है।

3.	पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आदिवासी सलाह परिषद राज्य की विधान सभा द्वारा बनाई जाती है।	जिला परिषद या क्षेत्रीय परिषद छठी अनुसूची के अंतर्गत संविधान की उपज है और इन्हें संविधान द्वारा ही कार्य एवं शक्तियाँ प्राप्त हैं।
4.	पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आदिवासी सलाह परिषद को सीमित शक्तियाँ ही प्राप्त हैं क्योंकि इसका गठन विधान सभा द्वारा किया गया है जिसमें इन्हें केवल कार्यपालिका शक्तियाँ ही प्राप्त हैं।	छठी अनुसूची के अन्तर्गत जिला परिषद को संविधान द्वारा कार्यपालिका विधायी एवं न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।
5.	वित्तीय, विधायी एवं न्यायिक शक्तियाँ पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों को देने का प्रावधान नहीं है, साथ ही अनुसूचित क्षेत्रों को कार्यपालिका शक्तियाँ राज्य ही प्रदान करता है।	छठी अनुसूची को वित्तीय, विधायी एवं न्यायिक शक्तियाँ पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों को देने का प्रावधान हैं।
6.	पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत आदिवासी सलाह परिषदों को वित्तीय शक्तियाँ नहीं प्रदान की गयी हैं तथा अपना बजट भी स्वयं नहीं तैयार कर सकती हैं।	छठी अनुसूची वित्तीय मामलों में भी, जिला और क्षेत्रीय परिषदों को संसाधन जुटाने को अधिकृत करती है। वे अपने अधिकार क्षेत्र में राजस्व एवं कर एकत्र करने का अधिकार रखती हैं।
7.	पाँचवीं सूची के अंतर्गत आदिवासी सलाह परिषदों को महज कुछ शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं जिन पर निर्णय राज्य मंत्रिमण्डल द्वारा लिया जाता है।	छठी अनुसूची शक्तियों को प्रदान करने के लिए जिला और क्षेत्रीय परिषदों को एक लंबी सूची प्रदान करता है जिसमें ऐसे विषय सम्मिलित हैं जिन पर ये परिषदें अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकती हैं।
8.	पाँचवीं अनुसूची के प्रावधानों में आय के स्रोतों या सहायक अनुदानों का कहीं कोई जिक्र नहीं है। हालाँकि आदिवासी सलाह परिषद या जिला परिषद राज्य सरकार द्वारा निर्मित है इसलिए राज्य सरकार का यह नैतिक कर्तव्य है कि उन्हें वित्तीय सहायता दी जाए।	छठी अनुसूची के अन्तर्गत स्थापित स्वायत्त जिला परिषदों को पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत दी गयी आदिवासी सलाह परिषदों की तुलना में ज्यादा शक्तियाँ प्राप्त हैं। कभी-कभी छठी सूची को लघु संविधान की तरह भी देखा जाता है क्योंकि इन्हें बहुत अधिक विधायी, कार्यपालिका, वित्तीय एवं न्यायिक शक्तियाँ मिली हुई हैं।

प्र.6. निर्वाचन/चुनाव का संगठन किस प्रकार हुआ? निर्वाचन/चुनाव आयोग के कार्य एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

निर्वाचन आयोग का संगठन
(Composition of Election Commission)

भारत का निर्वाचन आयोग एक स्थायी संवैधानिक निकाय है। 25 जनवरी 1950 को संविधान के उपबंधों के अनुरूप इसकी स्थापना की गयी, अनुच्छेद 324 में प्रावधान किया गया है कि—

1. निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन आयुक्तों से, यदि कोई हों, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करें, मिलाकर बनेगा तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्तों और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।
2. संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें एवं पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करें। परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जाएगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है अन्यथा नहीं तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए लाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा। किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जाएगा, अन्यथा नहीं हटाया जाएगा।
3. जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा।
4. लोक सभा और प्रत्येक राज्य की विधान सभा के प्रमुख साधारण निर्वाचन से पूर्व तथा विधान परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान परिषद् के लिए प्रथम साधारण निर्वाचन से पहले और उसके पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पहले,

राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्श करने के पश्चात्, खंड (1) द्वारा निर्वाचित आयोग को सौंपे गए कृत्यों के पालन में आयोग के सहयोग के लिए उतने प्रादेशिक आयुक्तों की भी नियुक्ति कर सकेगा जितने वह आवश्यक समझे।

5. संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचन हेतु तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का एवं उन सभी निर्वाचनों के संचालन का निर्देशन, अधीक्षण और नियंत्रण, एक आयोग में निहित होगा जिसे संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है।
6. जब निर्वाचन आयोग ऐसा अनुरोध करें, तब राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग के प्रादेशिक आयुक्त को उतने कर्मचारी उपलब्ध कराएगा जितने खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को सौंपे गए कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक हों। अत: निम्न लोगों को मिलाकर चुनाव आयोग का गठन होगा—
   (a) **मुख्य निर्वाचन आयुक्त**—एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त अनु० 324 के खण्ड (2) के अनुसार होगा जिसे उपखण्ड (3) के अनुसार अध्यक्ष के रूप में जाना जाएगा।
   (b) **अन्य निर्वाचन आयुक्त**—अनु० 324 के खण्ड (2) के अनुसार उतने ही अन्य निर्वाचन आयुक्त होंगे जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे। खण्ड (2) के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गयी विधि के अधीन करेगा।
   (c) **प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त**—अनु. 324 के खण्ड (4) के अनुसार लोकसभा, राज्य की विधानसभा एवं विधान परिषद के निर्वाचन से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से सलाह लेकर उतने प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर सकेगा जितने वह उचित समझता है।
   (d) **कर्मचारी**—निर्वाचन आयोग के अनुरोध पर राष्ट्रपति या राज्य का राज्यपाल अनु. 324 के खण्ड (5) के अनुसार निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्तों को उतने कर्मचारी उपलब्ध कराएगा जितने आवश्यक हों।

निर्वाचन आयोग के कार्य तथा शक्तियाँ
(Functions and Powers of Election Commission)

निर्वाचन आयोग का कार्य भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 (1) के अनुसार निर्वाचनों से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवस्था करना है। निर्वाचन आयोग का संवैधानिक दायित्व निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन से लेकर मतगणना एवं परिणामों की घोषणा तक की समस्त प्रक्रिया का विधि के अनुसार संचालन करना है। इसके अतिरिक्त निर्वाचन आयोग के अन्य कार्य भी हैं, जैसे-निर्वाचनों के लिए शान्तिपूर्ण तथा उपयुक्त व्यवस्था बनाना और प्रशासनिक तैयारियों का निरीक्षण करना। निम्न रूपों में निर्वाचन आयोग के प्रमुख कार्यों तथा शक्तियों का अध्ययन किया जा सकता है—

1. **चुनाव चिह्न प्रदान करना**—राजनीतिक दलों व निर्दलीय उम्मीदवारों को निर्वाचन आयोग चुनाव चिह्न आवंटित करता है। चुनाव आयोग चुनाव चिह्नों से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करता है।
2. **मतदाता सूची तैयार करना**—मतदाता सूची तैयार करना चुनाव आयोग का मुख्य कार्य है। जनगणना के बाद एवं आम चुनाव से पहले मतदाताओं की सूची में संशोधन किए जाते हैं। नए मतदाताओं के नाम इन सूचियों में लिखे जाते हैं तथा जिन व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है उनके नाम हटा दिए जाते हैं। निर्वाचन आयोग द्वारा मतदाता सूची तैयार होने पर निश्चित तिथि तक आपत्तियों पर विचार किया जाता है।
3. **निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करना**—निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन व सीमांकन करना निर्वाचन आयोग, का प्रमुख कार्य है। प्रत्येक जनगणना के पश्चात् परिसीमन आयोग निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करेगा, ऐसा संसद द्वारा पारित 'परिसीमन आयोग अधिनियम 1952' में प्रावधान है। परिसीमन आयोग का अध्यक्ष मुख्य निर्वाचन होता है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के अवकाश प्राप्त 2 न्यायधीश होते हैं। प्रत्येक राज्य में आयोग की सहायता के लिए 2 से लेकर 7 तक सहायक सदस्य हो सकते हैं।
4. **राजनीतिक दलों को मान्यता देना**—विभिन्न राजनीतिक दलों को मान्यता देना निर्वाचन आयोग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अनेक राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर के राजनीतिक दल भारत में हैं। निर्वाचन आयोग वर्तमान में कम से कम चार राज्यों में चार प्रतिशत मत प्राप्त कर लेने वाले दल को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान कर देता है एवं अलग-अलग राज्यों से प्राप्त एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर प्रादेशिक व क्षेत्रीय दलों के रूप में विभिन्न राज्यों में मान्यता प्रदान कर देता है।

5. **कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखना**—निर्वाचन कार्य के लिए केन्द्र व राज्यों द्वारा उपलब्ध कराए गए कर्मचारियों पर अपना नियन्त्रण निर्वाचन आयोग रखता है। निर्वाचन आयोग के आदेशों का पालन करने के लिए ये कर्मचारी बाध्य होते हैं।
6. **सांसदों व विधायकों की अयोग्यता के सम्बन्ध में परामर्श देना**—राष्ट्रपति को संसद के सदस्यों एवं सम्बन्धित राज्य के राज्यपालों को विधानमण्डलों के सदस्यों की अयोग्यता के सन्दर्भ में परामर्श देना निर्वाचन आयोग का प्रमुख कार्य है। इसके आधार पर राष्ट्रपति सांसदों तथा राज्यपाल विधायकों की अयोग्यता को कम कर सकते हैं।

प्र.7. निर्वाचन प्रणाली के गुण एवं दोषों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उत्तर

निर्वाचन प्रणाली के गुण
(Properties of Election System)

चुनाव का सीधा-सा अर्थ है, अपने मताधिकार का उपयोग करके अपने प्रतिनिधि चुनना और उन्हें सत्ता सौंपना है। आज की सभी लोकतांत्रिक सरकारें, चुनाव के माध्यम से जनता द्वारा चुनी जाती हैं। मत देने और जनता को अपने कानून बनाने वाले प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार ही मताधिकार कहलाता है और यह मताधिकार चुनावों द्वारा ही प्राप्त होता है। इस प्रकार मताधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूल आधार है। **हर्नशा के अनुसार** "राजनैतिक अर्थ में लोकतंत्र केवल सरकार को नियुक्त करने, नियंत्रित करने और पदच्युत करने की एक प्रणाली है।"

निर्वाचन प्रणाली के गुण निम्नलिखित हैं—

1. वास्तव में मताधिकार संप्रभुता की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति है। मताधिकार, उस लोकतांत्रिक सिद्धान्त की अभिव्यक्ति और क्रियान्वयन का व्यावहारिक स्वरूप है जिसे लोकप्रिय संप्रभुता कहा जाता है। जो सभी को प्रभावित करता है उसका निर्णय सबके द्वारा ही किया जाना चाहिए।
2. लोकतंत्र की प्रतिनिधि मूलक संस्थाओं; जैसे—संसद, राज्य विधानमंडलों, नगर पालिकाओं और ग्राम पंचायतों आदि के गठन में जाति, धर्म, लिंग, निवास, शैक्षिक-स्तर और आर्थिक स्तर के आधार पर भेदभाव किए बगैर जनता का प्रतिनिधित्व, चुनाव तथा शासन व्यवस्था स्थापित करने में जनता की भागीदार सुनिश्चित करने में भी चुनाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. सुधार एवं परिवर्तन के लिए जनता की इच्छा और आकांक्षा की अभिव्यक्ति को भी दिशा, चुनाव ही देती है।
4. सामान्यतया लोकतंत्र की सफलता के लिए विभिन्न तत्व जिम्मेदार होते हैं और किसी एक कारक को ही लोकतंत्र की सफलता का आधार नहीं माना जा सकता परन्तु लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनावों का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है। किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए आवश्यक है कि समाज का चरित्र ऊँचा हो। यदि राष्ट्रीय चरित्र नैतिक है, कर्तव्य परायण और ईमानदार है तो निश्चित रूप से देश में एक ऐसा वातावरण बन जाएगा जिसमें लोकतंत्र फलता-फूलता रहेगा।
5. लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि जनता में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों के प्रति विश्वास पैदा हो। इसके अतिरिक्त जनता बौद्धिक रूप से जागरूक भी होनी चाहिए। जनता इतनी समझदार और शिक्षित होनी चाहिए कि वे सार्वजनिक समस्याओं पर खुल कर अपने विचारों को प्रकट कर सकें और समय आने पर समस्याओं का समाधान भी तलाश सकें। यह सब चुनाव द्वारा ही है।
6. एक सफल लोकतंत्र वहीं पाया जाता है जहाँ जनसाधारण में राजनैतिक जागरूकता होती है, सार्वजनिक प्रश्नों के प्रति अभिरुचि होती है और सच्चाई के साथ अपने राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है। यदि ऐसे जागरूक और सच्चे लोग चुनावों में अपने मताधिकार का उपयोग करें तो कोई कारण नहीं कि लोकतंत्र सफल न हो सके। इससे लोगों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न होती है।
7. निर्वाचन प्रणाली से उत्तरदायी सरकार का जन्म होता है। जिससे भ्रष्टाचार के पनपने की सम्भावना कम होती है।
8. इस प्रणाली के अन्तर्गत योग्य तथा वांछनीय व्यक्तियों का निर्वाचन सम्भव है। क्योंकि इसमें चुने हुए व्यक्ति ही भाग लेते हैं, जिन्हें सुयोग्य व्यक्तियों की परख होती है।

TOUCH 'n' PASS

निर्वाचन प्रणाली के दोष
(Demerits of Election System)

भारतीय चुनाव प्रणाली की कार्यशैली में अनेक दोष हैं; जैसे—किसी पार्टी के लिए डाले गए वोटों और संसद में जीती गई सीटों के बीच विसंगति, दलीय व्यवस्था में व्यक्ति-पूजा, राजनीतिक दलों की बहुलता, जातीय व साम्प्रदायिक निष्ठाओं का शोषण, सरकारी तंत्र का दुरुपयोग, मतदान केन्द्र पर कब्जा, मतदाताओं को डराना-धमकाना व नकली मतदाता बनकर धोखा करना आदि कपटपूर्ण कार्य भारतीय चुनाव-प्रणाली के मुख्य दोष हैं। भारतीय चुनाव प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं—

1. चुनावी कुरीतियाँ मतदान-केन्द्रों पर बलात् कब्जा करने से लेकर उन पार्टियों के युवा उग्र दलों अथवा गुण्डा गुटों को चलाने तक देखी जाती हैं जो कुछ प्रमुख समुदायों को चुनाव से पूर्व निशाना बनाकर आतंकित करते हैं ताकि उन्हें मतदान से रोका जा सके।
2. चुनावों में मांसल शक्ति की बढ़ती आवश्यकता ने ज्यादा धन लगाए जाने को भी आवश्यक कर दिया। पहले मतदाताओं को व्यक्तिगत रूप से पैसे दिए जाते थे, बाद में मतदाताओं को अलग-अलग पैसा देने के बजाय कुछ ऐसे व्यक्तियों को खरीदते हैं जिससे वे मतदान केन्द्र पर कब्ज़ा करके या फिर मतदाताओं को डरा-धमकाकर जीत सुनिश्चित कर सकें।
3. निर्वाचन प्रणाली में राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण तथा राजनीतिज्ञ-अपराधजगत् सम्बन्ध के आविर्भाव की ओर प्रवृत्त किया है। धीरे-धीरे, अपराधियों ने दूसरों की सहायता करने के बजाय स्वयं ही चुनाव लड़ना प्रारम्भ कर दिया।
4. राजनीतिज्ञों ने नौकरशाही का भी राजनीतिकरण आवश्यक पाया है। इस बात का अनुमान उस पैमाने से लगाया जा सकता है जिस पर अधिकांश उच्च पदाधिकारीगण किसी सरकार के बदलने के साथ ही बदल जाते हैं। ऐसे नौकरशाही को अपने अनुकूल बनाने के लिए किया जाता है ताकि वह चुनावों के दौरान शासक दल के पक्ष में काम करे।
5. राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के विषय में जानकारी एकत्र करने के लिए सरकारी तंत्र का प्रयोग किया जाता है। पैसा देकर भीड़ जुटाने, मतदाताओं के अभिलक्षित वर्गों को डराने-धमकाने, स्थानीय तनावों को जन्म देने, चुनाव-ड्यूटी पर तैनात कर्मचारियों को इच्छानुकूल कर लेने, अतिरिक्त मतदाताओं के नाम मतदाता सूची में दर्ज करने अथवा उसमें से हटाने आदि में सरकारी तंत्र कारगर सिद्ध होता है।
6. इस प्रक्रिया में नौकरशाही के महत्त्वपूर्ण विभाग राजनीतिज्ञ अपराधजगत-नौकरशाही संबंध में एकीभूत हो जाते हैं। चुनाव-प्रक्रिया को साफ-सुथरा बनाने के अपने प्रयासों में चुनाव आयोग ने चुनावों की घोषणा हो जाने के बाद स्थानांतरणों व पदोन्नतियों पर रोक लगा दी है। महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इस कदम की उपयोगिता सीमित ही है क्योंकि नौकरशाही की अपरिवर्तनीय व्यूह-रचना साधारणतया बहुत पहले से ही तैयार कर ली जाती है।
7. वर्तमान में चुनावों का इतना खर्चीला हो जाने का एक कारण है- राजनीतिक दलों की आम आदमी से बढ़ती दूरी। परिवहन, प्रचार व अभियान संचालकों के भरण-पोषण में ढेरों धनराशि लगती है। किसी भी कीमत पर चुनाव जीतने की इच्छा और चुनावों में मांसल शक्ति पर बढ़ते विश्वास ने राजनीतिक दलों व उनके प्रत्याशियों द्वारा संदिग्ध साधनों से जुटाए जाने वाले संशयात्मक रूप से बेहिसाब खर्चों को आवश्यक बना दिया है।

❑

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।

मॉडल पेपर

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान

B.A.-I (SEM-I) [पूर्णांक : 75

निर्देश—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

1. 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना कब की गई थी?

2. भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम कब स्वीकृत किया गया।

3. संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षा का अधिकार जोड़ा गया है?

4. राज्यसभा की किन्हीं ऐसी दो विशिष्ट शक्तियों का उल्लेख कीजिए जो लोकसभा को प्राप्त नहीं हैं?

5. राज्य के विधानमण्डल को किन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है?

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

निर्देश—निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।

6. भारत छोड़ो आन्दोलन के कोई तीन प्रमुख कारण बताइए।

अथवा क्रिप्स के युद्ध के बाद लागू होने वाले सुझाव या दीर्घकालीन सुझाव लिखिए।

7. निवारक निरोध के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति की चर्चा कीजिए।

अथवा क्या मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक हैं? स्पष्ट कीजिए।

8. संसद के सदस्यों की योग्यता का वर्णन कीजिए।

अथवा विधानपरिषद् एवं विधानसभा में तुलनात्मक अन्तर प्रस्तुत कीजिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

निर्देश—निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।

9. कांग्रेस के उदारवादी युग की विचारधारा, कार्यपद्धति एवं संगठन तथा उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

अथवा भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की विस्तृत वर्णन कीजिए।

10. मूल अधिकार के अर्थ से क्या अभिप्राय है? मूल अधिकार की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

अथवा मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

11. भारत की लोकसभा की संरचना, शक्ति तथा कार्यों की विवेचना कीजिए।

अथवा राज्य विधानसभा व विधानपरिषद् के मध्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

12. जनहित याचिका को समझाइए तथा इसके महत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

अथवा निर्वाचन प्रणाली के गुण एवं दोषों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

13. भारतीय संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्त्वों से सम्बन्धित अनुच्छेदों की विस्तृत व्याख्या दीजिए।

अथवा 1858 ई० के अधिनियम के पारित होने के प्रमुख कारणों व उसकी प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिए।

❑

TOUCH 'n PASS